हाईस्कूल

हिन्दी व्याकरण और रचना

[हाईस्कूल कक्षाओं के लिए]

श्री ठाकुरचन्द्र, एम० ए०

तथा

पं० एन० आर० सूतल, विशारद

प्रधानाध्यापक, आगरा ।

❀ प्रकाशक ❀

पी० सी० द्वादशश्रेणी ऐण्ड कम्पनी, लिमिटेड,

अलीगढ़ ।

१९५१ [मूल्य २)

कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए है जो स्वीकृत पाठ्य-क्रम के संकेतों पर आदर्श स्वरूप है।

व्याकरण का बहुत कुछ अंश विद्यार्थी नीची कक्षाओं में सीख आते हैं। इसलिए प्रस्तुत पुस्तक में व्याकरण के समस्त अङ्गों पर ध्यान न देकर इसमें केवल वही अङ्ग लिये गये हैं, जो कि विस्तृत रूप से हाई-स्कूल के विद्यार्थियों को अत्यन्त आवश्यक हैं तथा जिनका रचना से विशेष सम्बन्ध है। पुस्तक में पाँच खण्ड और नौ अध्याय हैं। व्याकरण, रचना, अपठित, काव्य-विभाग और परिशिष्ट-विभाग में वाक्यों में शब्दों का क्रम, उनका पारस्परिक सम्बन्ध, पदान्वय, समास, संधि, वाक्य-विग्रह तथा काव्य-रचना आदि पर विशेष जोर दिया गया है। शब्द-ज्ञान की वृद्धि के लिए अनुलोम, विलोम-शब्द, मुहावरे आदि भी दे दिये गये हैं। उपसर्ग और प्रत्यय इस ढंग से दे दिये गये हैं कि विद्यार्थी न केवल उनके नाम जान लें, वरन् उनके द्वारा नये शब्दों को गढ़ने में भी समर्थ हो सकें। इस व्याकरण-विभाग से विद्यार्थियों को रचना सम्बन्धी सभी बातें मालूम हो जायँगी।

रचना-विभाग में लेखों के भेद, उनके नमूने और संकेत दिये गये हैं। अनेकों विषयों पर रूप-रेखाएँ भी दी गई हैं जिनके आधार पर लेख लिखने में सुविधा होगी। उनको जान लेने से विद्यार्थी स्वयं लेख लिखने में अभ्यस्त हो जायँगे।

लेखों के अतिरिक्त पुस्तक के अन्दर कहानी, वार्त्तालाप लिखना, व्याख्यान देना, पत्र-व्यवहार करना, अपठित पद्य या गद्य को समझना और अनुवाद करना भी सिखलाया गया है। काव्य-विभाग में रस, अलंकार, छन्द, समस्या-पूर्त्ति

दो शब्द

स्वतन्त्र भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी है, उसकी उन्नति करना प्रत्येक भारतीय का परमधर्म है। भाषा को उन्नतशील बनाने के लिए शिक्षा-विभाग ने हिन्दी को माध्यम बना दिया है। इसलिए हिन्दी भाषा की वर्तमान उन्नतशील और विकासोन्मुख प्रगति को देखते हुए रचना-विषय पर अच्छी पुस्तकों का होना अति आवश्यक है, क्योंकि रचना का महत्त्व भाषा और साहित्य दोनों के ज्ञान के लिए अनिवार्य है। उन्नतशील भाषाओं के लिए तो यह महत्त्व और भी बढ़कर है। प्रायः देखा गया है कि जो विद्यार्थी निबन्ध लिखने में कुशल और तेज़ होते हैं, वे ही भविष्य में योग्य विद्वान् या नेता होते हैं; पर हमारे विद्यार्थी साधारणतया निबन्ध लिखने से डरते और उससे दूर भागने की चेष्टा करते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि वे अपनी विचार-शक्ति से काम लेना नहीं जानते, उनका ज्ञान भी कम होता है, वे भाव-व्यक्त करने का ढंग नहीं जानते, उन्हें व्याकरण का पूर्ण ज्ञान नहीं और न भाषा पर उनका अधिकार ही है। इन्हीं त्रुटियों के कारण वे अच्छे निबन्ध नहीं लिख सकते। उत्तम निबन्ध वे तभी लिख सकते हैं हैं जब उन्हें व्याकरण का सम्पूर्ण ज्ञान तथा उनकी भाषा-वृद्धि हो जाय। इसी ध्येय को दृष्टिगत करते हुए पुस्तक का निर्माण किया गया है। यह पुस्तक हाई-स्कूल की नवीं, दसवीं

करना बतलाया गया है जिसका ज्ञान होना विद्यार्थियों को परमावश्यक है ।

पुस्तक में परिशिष्ट भाग पुस्तक की जान है। उसमें परीक्षा सम्बन्धी वे बातें बतलाई गई हैं जिनके ज्ञान करने के लिए छात्रों को कई पुस्तकों को पढ़ना पड़ता है और उसमें उनको अपने अमूल्य समय का एक बड़ा भाग व्यय करना पड़ता है। इस तरह यह पुस्तक और भी अधिक काम की बन गई है।

इस पुस्तक में कुछ लेख अन्य महानुभावों के लिये गये हैं, इसके लिए हम हृदय से उनके कृतज्ञ हैं।

आशा है प्रस्तुत पुस्तक छात्रों को अति उपयोगी सिद्ध होगी, इसका निर्णय छात्र स्वयं कर सकेंगे। यदि प्रेमी छात्रों ने इसे अधिक अपनाया, तो लेखक अपने परिश्रम को सफल समझेगा।

कूँचा साधूराम,
आगरा
रक्षाबन्धन
श्रावण शुक्ला पूर्णिमा,
संवत् २००७ वि०

विनीत—
एन० आर०, सूतल

विषय सूची

प्रथम खण्ड

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

विषय	पृष्ठ संख्या

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

द्वितीय खण्ड

पंचम अध्याय

विषय — पृष्ठ सं

तृतीय खण्ड

हिन्दी
व्याकरण और रचना

विषय-प्रवेश

संस्कृत शब्द 'भाषा' का अर्थ 'सार्थक' बोली है। सार्थक बोली केवल मनुष्य बोलता है। प्रत्येक प्राणी को अपने विचार दूसरे पर प्रकट करने की आवश्यकता पड़ती है और वह उसे भिन्न-भिन्न संकेतों द्वारा अपने उन विचारों से पूर्णतया अवगत कराने की चेष्टा करता है। इस प्रकार विचार प्रकट करने का प्रधान साधन ध्वनि है। ध्वनि पशु-पक्षी भी करते हैं पर उससे उनके आन्तरिक भावों का कोई पता नहीं चलता। मनुष्य की 'ध्वनि' ही बुद्धि और विचार के निर्णय के स्रोत और भाव स्पष्टीकरण के मार्ग हैं। यह कार्य्य भाषा के द्वारा ही सिद्ध होता है। अतः भाषा आन्तरिक विचारों तथा भावों को दूसरों पर स्पष्टतया प्रकट करने का सबसे सुगम साधम है। जगत् का व्यवहार बिना एक दूसरे पर अपने विचार प्रकट किये और बिना एक दूसरे के विचारों को जाने, नहीं चल सकता। अतः भाषा को जगत् के व्यवहार का मूल तत्त्व माना गया है। भिन्न-भिन्न देशों अथवा प्रान्तों की भिन्न-भिन्न भाषाएँ होती हैं। जैसे—इंगलिस्तान में अंग्रेजी, जापान में जापानी,

बंगाल में बंगाली आदि। ठीक इसी प्रकार से हिंद (भारतवर्ष) की प्रधान भाषा हिन्दी है।

विचारों तथा आन्तरिक भावों का प्रकटीकरण दो प्रकार से होता है। बोल कर और लिख कर। ये दोनों साधन 'भाषा' के अन्तर्गत हैं। बोलना ध्वनियों से होता है और लिखना अक्षरों व वर्णों से। अक्षर व वर्ण ध्वनियों के माने हुए चिह्न होते हैं। एक ही ध्वनि के भिन्न-भिन्न भाषाओं में पृथक्-पृथक् चिह्न होते हैं, जैसे 'ब' ध्वनि को हिन्दी में 'ब', उर्दू में 'ب' और अंगरेजी में 'B' लिखते हैं। ध्वनियाँ मुँह से कही और कान से सुनी जाती हैं, वर्ण हाथ से लिखे और आंखों से देखे जाते हैं।

एक या अधिक वर्ण एवं ध्वनियां मिलकर शब्द बनते हैं। जैसे—ब् + आ + ल् + अ + क् + अ = बालक, तथा म् + अ + न् + अ = मन आदि। शब्द दो प्रकार के होते हैं। सार्थक (Articu- late) और निरर्थक (Inarticulate)। राधे, गाय, पानी इत्यादि सार्थक शब्द हैं। किन्तु चिड़ियों की 'चैं' 'चैं' बकरी की 'मैं' 'मैं' निरर्थक शब्द हैं।

सार्थक शब्द भी अलग-अलग पूर्ण आशय को प्रकट नहीं कर सकते। जैसे—'अपना', 'काम', 'करो' इन शब्दों का अर्थ होते हुए भी ये अलग-अलग पूर्ण आशय प्रकट नहीं करते, किंतु जब ये आपस में जोड़ दिये जाते हैं तो आशय सिद्ध हो जाता है। जैसे—'अपना काम करो'। दो या दो से अधिक शब्दों को यदि इस प्रकार जोड़ दिया जाय कि पूरा-पूरा आशय समझ में आजाय तो उस शब्द-समुदाय को वाक्य (Sentence) कहते हैं।

हमें अपने भावों को इस प्रकार से प्रकट करने की आव-

श्यकता है जिससे सुनने तथा पढ़नेवाले हमारे कथन का सही अर्थ समझलें एवं लिखने में वर्णों का शुद्ध रूप लिखा जाय। इस कार्य्य के लिये यह आवश्यक है कि हमें शब्दों के रूप और क्रम तथा वर्णों के रूप-परिवर्तन एवं शब्दों के सही-सही रूप और वाक्य में प्रयोग होते समय, उनके वास्तविक रूप का ज्ञान हो। जिस विद्या के द्वारा यह ज्ञान होता है वह विद्या व्याकरण (Grammar) है। अथवा व्याकरण वह विद्या या शास्त्र है जो किसी भाषा के शब्दों के शुद्ध रूपों और वाक्यों में उनके प्रयोग के नियमों आदि का ज्ञान कराये।

किसी भाषा के शुद्ध बोलने अथवा लिखने के लिए उसके व्याकरण का ज्ञान आवश्यक होता है।

इसमें संदेह नहीं कि साधारण लोग बिना व्याकरण पढ़े प्रायः शुद्ध बोलते और लिखते हैं तथा किसी के अशुद्ध भाषा बोलने पर टोक भी देते हैं, पर 'क्या अशुद्धि हुई' 'क्यों यह अशुद्धि हुई, यह ज्ञान व्याकरण के ज्ञान के बिना नहीं हो सकता। व्याकरण (वि + आ + करण) शब्द का अर्थ है खोल कर अच्छी तरह समझाना, अर्थात् व्याकरण द्वारा किसी भाषा के नियमों का अच्छी तरह ज्ञान कराया जाता है।

अतः व्याकरण भाषा-सम्बन्धी शास्त्र है। भाषा का मुख्य अंग वाक्य शब्दों से बनता है और शब्द वर्णों से बनते हैं। अतएव व्याकरण के चार विभाग होते हैं:—

१—वर्ण-विचार-जिसमें वर्णों का रूप, उच्चारण और उनके मेल से शब्द बनाने के नियम दिये रहते हैं।

२—शब्द विचार या शब्द साधन-जिसमें शब्दों के भेद

रूपान्तर और व्युत्पत्ति का वर्णन रहता है।

३—वाक्य विचार—जिसमें वाक्य के अवयवों का परस्पर सम्बन्ध और शब्दों से वाक्य बनाने के नियम दिये रहते हैं।

४—काव्य विभाग—में छन्द निर्माण के ढंग तथा उनके लक्षण एवं अलंकार, रस और भाव आदि का भेद सहित वर्णन है।

अभ्यास

१—व्याकरण किसे कहते हैं ?

२—शब्द कितने प्रकार के होते हैं ? उदाहरण सहित समझाओ।

३—व्याकरण के कितने विभाग किये गये हैं ?

४—वर्ण-विभाग, शब्द-बिभाग, वाक्य-विभाग और काव्य-विभाग किसे कहते हैं ? स्पष्ट उत्तर दीजिए।

—:※※:—

वर्ण—विचार (Orthography)

वर्ण—भेद

वर्ण-विचार—व्याकरण का वह भाग है, जिसमें अक्षरों के भेद, उच्चारण, स्थान उनके लिखने तथा उनसे शब्द बनाने के नियमों का वर्णन हो।

वर्ण या अक्षर—(Letters)—उस मूल ध्वनि को एवं उसके संकेत को कहते हैं जिसके और कोई खण्ड न हो सकें और बिना किसी अन्य अक्षर की सहायता के ही बोला जा सकें। जैसे—इ, उ, क, च, इत्यादि।

जिस किसी भाषा में जितने वर्ण (अक्षर) विचार प्रकट करने के लिये इस प्रकार प्रयोग किये जाते हैं वे सब उस भाषा की वर्णमाला (Alphabet) कहलाते हैं। और जिस ढङ्ग से वे वर्ण लिखित रूप में प्रकट होते हैं उसे उस भाषा की लिपि कहते हैं। जिस लिपि में हिन्दी भाषा लिखी जाती है वह देवनागरी लिपि के नाम से प्रसिद्ध है।

हिन्दी वर्णमाला

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ						स्वर (११)
क	ख	ग	घ	ङ	(कवर्ग)	व्यंजन (३३)
च	छ	ज	झ	ञ	(चवर्ग)	
ट	ठ	ड	ढ	ण	(टवर्ग)	
त	थ	द	ध	न	(तवर्ग)	
प	फ	ब	भ	म	(पवर्ग)	
य	र	ल	व		(अंतस्थ)	
श	ष	स	ह		(ऊष्म)	

स्वर—(Vowels) वे अक्षर हैं, जो स्वयं बोले जाते हैं।

मूल स्वर—अ, इ, उ ऋ (ह्रस्व)

संधि स्वर—आ, ई, ऊ (दीर्घ)

ए, ऐ, ओ, औ (संयुक्त)

व्यञ्जन—(Consonants) वे अक्षर हैं, जो स्वरों के बिना न बोले जा सकें।

नोट-१. यदि व्यञ्जन के साथ और कोई स्वर न भी बोला जाय तो भी उच्चारणार्थ 'अ' का मेल तो कर ही दिया

जाता है। वास्तव में व्यञ्जनों का स्वतन्त्र रूप क्, च्, म् आदि हैं।

२. अनुस्वार (ं) चन्द्रबिन्दु (ँ) और विसर्ग (:) की गिनती कुछ लोग स्वरों में करते हैं और कुछ लोग व्यञ्जनों में। वास्तव में ये व्यंजन हैं क्योंकि इनका उच्चारण स्वरों की सहायता के बिना नहीं होता। अन्तर केवल इतना है कि स्वर इनके पहिले आता है और दूसरे व्यंजनों के पीछे।

३. क़, ख़, ग़, ज़, ड़, ढ़ और फ़ अवशिष्ट वर्ण कहलाते हैं।

वर्णों के उच्चारण के स्थान

स्थान—मुख के जिस भाग से वर्ण बोला जाता है, उसको उस वर्ण का स्थान कहते हैं।

१. अ, आ, क, ख, ग, घ, ङ, ह, और विसर्ग (:) के उच्चारण का स्थान कण्ठ है, अतएव इन अक्षरों को कण्ठ्य कहते हैं।

२. इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ, य, श, का उच्चारण तालु से होता है, अतएव इन अक्षरों को तालव्य कहते हैं।

३. ऋ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र, ष, के उच्चारण में मूर्द्धा अर्थात् शिर ठनकता है इसलिए इन अक्षरों को मूर्द्धन्य कहते हैं।

४. त, थ, द, ध, न, ल, स के कहने में जिह्वा दांतों का स्पर्श करती है अतः इन अक्षरों को दन्त्य कहते हैं।

५. उ, प, फ, ब, भ, म के कहने में होठों से सहायता लेनी पड़ती है। ओष्ठ बिना बन्द या संकुचित किये इनकी आवाज नहीं निकलती। अतएव इन अक्षरों को ओष्ठ्य कहते हैं।

६. ए, ऐ का स्थान कण्ठ-तालु है। अतएव इन अक्षरों को कंठ-तालव्य कहते हैं।

७. ओ, औ के बोलने में आवाज कण्ठ से निकलती है और होठों को बनाना पड़ता है अतएव इन अक्षरोंको कण्ठोष्ठ्यय कहते हैं।

८. अनुसार, चन्द्रबिन्दु तथा ङ, ञ, ण, न और म का उच्चारण मुख और नासिका से होता है, इसलिए इनको अक्षरों को अनुनासिक कहते हैं।

वर्णों के स्पष्ट उच्चारण के पूर्व और पीछे वाणी को कुछ प्रयत्न करना होता है। इस प्रकार के पूर्व प्रयत्न को 'अभ्यान्तर प्रयत्न' और 'अन्तिम प्रयत्न' को 'वाह्य प्रयत्न' कहते हैं।

अभ्यान्तर प्रयत्नों के विचार-भेद से वर्णों को निम्न श्रेणिओं में विभाजित किया जा सकता है:—

(१) विवृत—जिसके उच्चारण में वाक् इन्द्रिय बिलकुल खुली रहती हैं। जैसे:—सब स्वर।

(२) स्पृष्ट—जिसके उच्चारण में वाक् इन्द्रिय का द्वार बन्द रहता है। जैसे:— क से लेकर म तक के वर्ण।

(३) ईषत् विवृत–जिस के उच्चारण में वाक् इन्द्रिय थोड़ी-थोड़ी खुली रहती है। जैसे:—य, र, ल, व।

(४) ईषत् स्पृष्ट—जिसके उच्चारण में वाक् इन्द्रिय थोड़ी-थोड़ी बन्द रहती हैं। जैसे:—श, ष, स, ह।

वाह्य प्रयत्न अर्थात् श्वास के यत्न भेद से वर्णों के दो भेद हैं। घोष (Soft Letters) और अघोष (Hard Consonants) घोष वर्णों के बोलने में केवल नाद का उपयोग है अर्थात

प्रत्येक वर्ग का तीसरा, चौथा और पांचवां अक्षर सारे स्वर और य, र, ल, व, ह ये घोष हैं।

अघोष बोलने में केवल श्वास का उपयोग होता है। जैसे:—प्रत्येक वर्ग का पहला और दूसरा अक्षर अथवा श, ष, स, ये अघोष हैं।

वर्णों के दो भेद और हैं (१) अल्प प्राण (२) महाप्राण।

महाप्राण वे वर्ण हैं जिनके उच्चारण में अधिक श्रम करना पड़े और जिनमें कुछ-कुछ 'ह' का उच्चारण सम्मिलित हो। जैसे:—प्रत्येक वर्ग का दूसरा और चौथा अक्षर तथा श, ष, स, ह, ये महाप्राण हैं। इनके अतिरिक्त बाकी सब अल्प-प्राण हैं।

अभ्यास

१—स्वर किसे कहते हैं और वे कौन-कौन हैं?

२—अं और अः स्वर हैं या व्यंजन?

३—दन्त्य अक्षर कौन-कौन से हैं?

४—नीचे लिखे अक्षरों के उच्चारण का स्थान बताओ।

क, म, फ, र, त, ट, और श।

—

लिखने के नियम

पिछले पाठ में हम अक्षरों का परिचय दे चुके हैं। लिखने में उन्हीं का प्रयोग होता है।

१—जब स्वरों का व्यंजनों के साथ योग होता है तो उनके रूप का परिवर्तन हो जाता है और उन्हें हिन्दी भाषा में मात्रा कहते हैं।

२—स्वरों के स्वतन्त्र रूप—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ,

ओ, औ।

स्वरों की मात्राएँ— ा, ि, ी, ु, ू, ृ, े, ै, ो, ौ,

३–अ की कोई मात्रा नहीं है। वह जब व्यंजन में मिलता है, तब व्यंजन का चिह्न (्) नहीं रह जाता। जैसे:— म्+अ=म।

४–अनुस्वार स्वर के ऊपर, विसर्ग स्वर के पीछे और ऋ की मात्रा व्यंजन के नीचे लगती है।

५–र के साथ उ, और ऊ की मात्राओं का रूप क्रम से रु और रू होता है।

६–जब दो व्यंजनों के बीच में कोई स्वर नहीं होता तो वह मिल जाते हैं और संयुक्ताक्षर कहलाते हैं। वे जिस क्रम से मिलते हैं, उसी क्रम से उनका उच्चारण होता है। जैसे—ध्यान, पत्थर।

७–जब कोई व्यंजन उसी व्यञ्जन से मिलता है तब वह संयोग द्वित्व कहलाता है। जैसे:—पत्ता, मिट्टी = म्+इ+ट्+ट्+ई इसमें ट्ट द्वित्व है।

८–जब खड़ी पाई वाले अक्षर दूसरे अक्षरों से मिलते हैं तो उनकी खड़ी पाई का लोप हो जाता है। जैसे:— उल्लू, बच्ची, (आत्मा = आ+त्+म्+आ)।

९–क, ङ, छ, ट, ठ, ड, ढ, ह, द और र बिना पाई वाले अक्षर हैं, इनमें से पहिले के सात संयोग के आदि में पूरे लिखे जाते हैं। जैसे:—पक्का, पट्टी, आह्लाद, पङ्क, उच्छृङ्खल, हड्डी, ब्रह्म, गुड्डी, आढ्य आदि।

१०–कुछ संयुक्ताक्षर दो प्रकार से लिखे जाते हैं। जैसे–पक्का या पक्का, बच्चा या बच्चा, मिन्नत या मिन्नत, चल्ला

या चिल्ला।

११–र यदि किसी वर्ण के आदि म आता है, तो उसके ऊपर (ˆ) इस प्रकार लिखा जाता है; और यदि बाद में आता है, तो खड़ी पाई वाले अक्षरों से (्) इस प्रकार और बिना खड़ी पाईवाले अक्षरों के साथ (‸) इस प्रकार लिखा जाता है। जैसे—धर्म, गर्म, शक्र, पत्र, राष्ट्र।

१२–संयोग में कुछ व्यंजनों का रूप ही बदल जाता है। जसेः—क्+श=क्ष, त्+र=त्र, ज्+ज=ज्ञ, क्+त =क्त, त्+त=त्त।

१३–ह से मिलनेवाले व्यंजनों के लिखने में बहुधा लोग भूल करते हैं। वे चिह्न आदि न लिखकर चिह्न, ब्रह्म लिख देते हैं। विद्यार्थियों को इससे सचेत रहना चाहिये।

नोटः-१–क्ष, त्र, ज्ञ समुच्याक्षर कहलाते हैं क्योंकि क्ष, (क्+ष) से, त्र (त्+र)से ज्ञ (ज्+ञ) से बनते हैं।

२–ए, ऐ, ओ और औ की मात्राओं के साथ ँ (चन्द्रबिन्दु) ही लिखना चाहिये परन्तु छापे में और लिखनेवाले अधिकतर अनुस्वार ही लिखते हैं।

अभ्यास

१–संयुक्ताक्षर किसे कहते हैं? उदाहरण देकर समझाओ।

२–सत्य, तत्त्व, तल्लीन, पाण्डेय शब्दों के अक्षरों को अलग-अलग करो।

३–नीचे लिखे अक्षरों से शब्द बनाओः—

ज्+ञ+आ+न, प्+उ+स्+त्+अ+क, म्+ओ+ह्+अ +न और छ्+अं+ग्+ऊ।

४–नीचे लिखे शब्दों को शुद्ध करोः—

ब्रम्ह, ग्यानी, धनुश, और हिदय।

संधि

संधि—दो अक्षरों के मेल को कहते हैं। संधि और संयुक्ताक्षर में यह भेद है कि संधि में दोनों अक्षरों के मिलने से एक भिन्न अक्षर बन जाता है परन्तु संयोग में ऐसा नहीं होता। अक्षरों के भेदानुसार संधि के भी तीन भेद हैं:-

(१) स्वर संधि—स्वर के साथ स्वर के योग को कहते हैं, जैसे:-
रमा + ईश + = रम् + आ + ई + श = रमेश।

(२) व्यञ्जन संधि—व्यञ्जन के साथ स्वर अथवा व्यञ्जन के योग को कहते हैं, जैसे:-जगत् + ईश = जगदीश।

(३) विसर्ग संधि—विसर्ग के साथ स्वर अथवा व्यञ्जन के मेल को कहते हैं; जैसे:—निः + कपट = निष्कपट।

स्वर संधि

उदाहरण:—

राम + अधार = रामाधार अ + अ = आ
विद्या + आलय = विद्यालय आ + आ = आ
रत्न + आकर = रत्नाकर अ + आ = आ
गिरि + इन्द्र = गिरीन्द्र इ + इ = ई
नदी + ईश = नदीश ई + ई = ई
गिरि + ईश = गिरीश इ + ई = ई
मही + इन्द्र = महीन्द्र ई + इ = ई
भानु + उदय = भानूदय उ + उ = ऊ
भू + ऊर्ध्व = भूर्ध्व ऊ + ऊ = ऊ
वधू + उत्सव = वधूत्सव ऊ + उ = ऊ
लघु + ऊर्मि = लघूर्मि उ + ऊ = ऊ

१—नियम—यदि दो सजातीय स्वर पास-पास हों, तो वे दीर्घ हो जाते हैं। इसी प्रकार की संधि दीर्घ कहलाती है।

उदाहरण:—

गज + इन्द्र = गजेन्द्र   अ + इ = ए
सुर + ईश = सुरेश   अ + ई = ए
महा + इन्द्र = महेन्द्र   आ + इ = ए
रमा + ईश = रमेश   आ + ई = ए
सूर्य + उदय = सूर्योदय   अ + उ = ओ
आनंद + ऊर्मि = आनंदोर्मि   अ + ऊ = ओ
महा + उत्सव = महोत्सव   आ + उ = ओ
गंगा + ऊर्मि = गंगोर्मि   आ + ऊ = ओ
सप्त + ऋषि = सप्तर्षि   अ + ऋ = अर्
महा + ऋषि = महर्षि   आ + ऋ = अर्

२—नियम—यदि ह्रस्व या दीर्घ अ के आगे इ या ई हो तो ए, या ऊ हो तो ओ, और ऋ हो तो अर् हो जाता है। इस प्रकार की संधि को गुण कहते हैं।

उदाहरण:—

एक + एक = एकैक   अ + ए = ऐ
मत + ऐक्य = मतैक्य   अ + ऐ = ऐ
सदा + एव = सदैव   आ + ए = ऐ
महा + ऐश्वर्य = महैश्वर्य   आ + ऐ = ऐ
जल + ओघ = जलौघ   अ + ओ = औ
वन + औषध = वनौषध   अ + औ = औ
महा + ओज = महौज   आ + ओ = औ
महा + औदार्य = महौदार्य   आ + औ = औ

३—नियम—यदि अ या आ के आगे ए, ऐ हो तो ऐ, और ओ या औ हो तो दोनों मिलकर औ हो जाता है। इस संधि को वृद्धि कहते हैं।

उदाहरण:—

रीति + अनुसार = रीत्यनुसार	इ + अ = या
प्रति + आगम = प्रत्यागम	इ + आ = या
अभि + उदय = अभ्युदय	इ + उ = यु
देवी + आगम = देव्यागम	ई + आ = या
प्रति + एक = प्रत्येक	इ + ए = ये
मनु + अन्तर = मन्वन्तर	उ + अ = व
सु + आगत = स्वागत	उ + आ = वा
अनु + एषण = अन्वेषण	उ + ए = वे
पितृ + अनुमति = पित्रनुमति	ऋ + अ = र
मातृ + आनंद = मात्रानंद	ऋ + आ = रा

४—नियम—यदि ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ के परे कोई असमान स्वर आवे, तो उनके स्थान में क्रम से य् + व् + र् हो जाता है। इस को यण संधि कहते हैं।

उदाहरण:—

ने + अन = नयन	ए + अ = अय्
गै + अक = गायक	ऐ + अ = आय्
पो + अक = पावक	ओ + अ = अव्
नौ + इक = नाविक	औ + इ = आव्

५—नियम—ए, ऐ, ओ, औ के आगे यदि असवर्ण स्वर आवे तो इनके स्थान में क्रम से अय्, आय्, अव्, आव् हो जाता है। इस संधि को अयादि कहते हैं।

व्यंजन संधि

उदाहरण:—

दिक् + गज = दिग्गज, दिक् + अम्बर = दिगम्ब
अच् + अंत = अजंत, षट् + आनन = षडानन
अप् + ज = अब्ज, कृत् + अन्त = कृदन्त

१—नियम–क्, च्, ट्, त् और प् के आगे अनुनासिक
छोड़कर कोई घोष वर्ण आवे तो इनके स्थान में क्रम
उस वर्ग का तीसरा अक्षर हो जाता है।

उदाहरण:—

दिक् + मय = दिङ्मय षट् + मास = षण्मास
उत् + नत = उन्नत

२—नियम–यदि किसी वर्ग के प्रथम अक्षर के परे कोई अनु
सिक हो तो प्रथम वर्ण अपने वर्ग के पंचम अक्षर से ब
जाता है।

उदाहरण:—

उत् + चारण = उच्चारण, विपद् + जाल = विपज्ज
सत् + जन = सज्जन, तत् + लीन = तल्लीन
तत् + टीका = तट्टीका, उत् + डीयान = उड्डीयान

३—नियम–त् या द् के आगे यदि च, छ हो तो च्; ज, झ
तो ज्; ट, ठ, हो तो ट्; ड, ढ हो तो ड् और ल हो तो
हो जाता है।

उदाहरण:—

सत् + शास्त्र = सच्छास्त्र, उत् + शृंखल = उच्छृंखल
उत् + हार = उद्धार

४—नियम–त् या द् के आगे यदि श हो तो त् या द् के बदले च् और 'श' के बदले 'छ' होता है, और यदि ह हो तो त् या द् के स्थान में द् और ह के स्थान में 'ध्' हो जाता है।

उदाहरण:—

परि + छेद = परिच्छेद, आ + छादन = आच्छादन

५–नियम-छ के पूर्व यदि स्वर हो तो छ के स्थान में च्छ होता है।

उदाहरण:—

सम् + कल्प = संकल्प, सङ्कल्प
सम् + चय = संचय, सञ्चय
सम् + तोष = संतोष, सन्तोष
सम् + पूर्ण = संपूर्ण, सम्पूर्ण

६—नियम—म् के आगे यदि स्पर्श वर्ण हो तो म् के बदले विकल्प से अनुस्वार अथवा उसी वर्ग का पंचम वर्ण हो जाता है।

उदाहरण:—

किम् + वा = किंवा, सम् + हार = संहार
सम् + योग = संयोग, सम् + वाद = संवाद

७—नियम–म् के आगे अन्तस्थ या ऊष्म वर्ण हो तो न् अनुस्वार में बदल जाता है।

उदाहरण:—

अभि + सेक = अभिषेक, वि + सम = विषम
नि + सिद्ध = निषिद्ध सु + सुप्ति = सुषुप्ति

८—नियम–यदि किसी शब्द का पहिला अक्षर स हो और उसके पूर्व अ वा आ को छोड़कर कोई स्वर आवे तो स के स्थान में ष हो जाता है।

उदाहरणः—

भूष् + अन = भूषण, राम + अयन = रामायण
प्र + मान = प्रमाण, तृषा + ना = तृष्णा

६—नियम—ऋ, र, या, ष के आगे न हो और इनके बीच कोई स्वर, कवर्ग, पवर्ग, अनुस्वार, य, व, ह आवे तो का ण हो जाता है।

विसर्ग संधि

उदाहरणः—

मनः + हर = मनोहर, वयः + वृद्धि = वयोवृ
अधः + गति = अधोगति, तेजः + राशि = तेजोरा

१—नियम—यदि विसर्ग के पूर्व अ हो और आगे घोष व्यंज हो तो विसर्ग का ओ हो जाता है।

उदाहरणः—

निः + आशा = निराशा, दुः + गुण = दुर्गुण
दुः + उपयोग = दुरुपयोग

२—नियम—यदि विसर्ग के पूर्व अ वा आ को छोड़कर अ कोई स्वर हो और आगे घोष-वर्ण हो तो विसर्ग के स्थ में र हो जाता है।

उदाहरणः—

निः + रस = नीरस, निः + रोग = नीरोग

३—नियम—यदि विसर्ग के आगे र हो तो र का लोप हो जा है और उसके पूर्व का ह्रस्व स्वर दीर्घ होजाता है।

उदाहरणः—

निः + चल = निश्चल, निः + छल = निश्छल
धनुः + टङ्कार = धनुष्टङ्कार निः + ठुर = निष्ठुर
मनः + ताप = मनस्ताप

४—नियम—यदि विसर्ग के आगे च या छ हो तो विसर्ग का श्, ट या ठ हो तो ष् और त या थ हो तो स् हो जाता है।

उदाहरणः—

निः + कपट = निष्कपट, निः + फल = निष्फल
दुः + कर्म = दुष्कर्म, दुः + फल = दुष्फल

५—नियम—यदि विसर्ग के पूर्व इ या उ हो और आगे क, ख, या प, फ, हो तो विसर्ग का ष हो जाता है।

उदाहरणः—

अतः + एव = अतएव

६—नियम—यदि विसर्ग के पूर्व अ हो और उसके आगे अ को छोड़ अन्य कोई स्वर हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है।

उदाहरणः—

रजः + कण = रजःकण, पयः + पान = पयः पान

नोट—हिन्दी में रजःकण और पयःपान न लिखकर रजकण और पयपान लिखते हैं।

७—नियम—इकार उकार रहित विसर्ग के आगे क, ख या प, फ हो तो कोई परिवर्त्तन नहीं होता।

उदाहरणः—

दुः + शासन = दुःशासन, निः + सन्देह = निःसन्देह

८—नियम—यदि विसर्ग के आगे श, ष, स आवे तो कोई परिवर्त्तन नहीं होता है।

नोट—संधि—सम्बन्धी निम्नांकित अशुद्धियों पर ध्यान रखना चाहियेः—

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
अत्योक्ति	अत्युक्ति	जगबन्धु	जगद्बन्धु
उपरोक्त	उपर्युक्त	बारम्बार	बारबार

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
सन्मुख	सम्मुख	सन्मान	सम्मान
पुरष्कार	पुरस्कार	दुरावस्था	दुरवस्था
निरोग	नीरोग	मतन्तर	मतान्तर
रीत्यानुसार	रीत्यनुसार	निरस	नीरस

अभ्यास

१–सन्धि किसे कहते हैं तथा उसके कितने भेद हैं ?

२–संयुक्ताक्षर और संधि का भेद उदाहरण देकर समझाओ ।

३–निम्नलिखित में सन्धि-विच्छेद करो–सच्चिदानन्द, यशोभिलाषी, निश्चिन्त, अत्यावश्यक, वयोवृद्ध, विद्यालय, उज्ज्वल, सद्धम, राजेन्द्र, निर्बल, राजर्षि, परमात्मा, सज्जन, दुरुपयोग और गायक ।

४–उपरि + उक्त, अतः + एव, जगत् + बन्धु, निः + रव, तत् + हित, हरि + इच्छा, सम् + कल्प, रीति + अनुसार में सन्धि करो ।

५–विसर्ग का स, श, ष किन अवस्थाओं में होता है ?

द्वितीय अध्याय

शब्द–विचार (Etymology)

शब्द–विचार—व्याकरण का वह विभाग है जिसमें शब्दों के भेद, उनके भिन्न-भिन्न रूप और व्युत्पत्ति का वर्णन हो ।

शब्द-भेद (प्रयोग के अनुसार)

(१) संज्ञा—(Noun) किसी वस्तु के नाम को कहते हैं, जैसे सोहन, आगरा, लोटा ।

(२) सर्वनाम—(Pronoun) संज्ञा के बदले आने वाले शब्दों को कहते हैं, जैसे—मैं, तुम, वह आदि ।

(३) विशेषण-(Adjective) संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता प्रकट करने वाले शब्दों को कहते हैं, जैसे—लाल, पीला, बड़ा, छोटा आदि ।

(४) क्रिया—(Verb) जिन शब्दों से किसी काम का करना या होना पाया जाय, जैसे-भागना,आना, कहना आदि ।

(५) क्रिया विशेषण—(Adverb) क्रिया के अर्थ में विशेषता पैदा करने वाले शब्दों को कहते हैं, जैसे—धीरे, जल्दी, तुरन्त आदि ।

(६) सम्बन्धबोधक—(Preposition) संज्ञा या सर्वनाम शब्दों का क्रिया के साथ सम्बन्ध बताने वाले शब्दों को कहते हैं, जैसे–आगे, पीछे, तक आदि ।

सूचनाः—अंगरेजी में, जिसे Preposition कहते हैं हिन्दी में प्रयोग के अनुसार उसे Post-position कहना चाहिये ।

(७) समुच्चयबोधक—(Conjunction) दो शब्दों या वाक्यों के मिलानेवाले शब्दों को कहते हैं, जैसे—और, किन्तु, लेकिन आदि ।

(८) विस्मयादिबोधक—(Interjection) विस्मय आदि मनोविकार सूचित करने वाले शब्दों को कहते हैं, जैसे—आहो, हो, अहा, हा आदि ।

नाटः—कुछ लोग अन्तिम चार शब्द-भेदों को अव्यय के अन्तर्गत मानते हैं और इन्हें अविकारी शब्द कहते हैं ।

शब्द-भेद बनावट के विचार से (व्युत्पत्ति के अनुसार)

१. रूढ़ि—वे शब्द हैं, जो किसी दूसरे शब्द से नहीं बनते, जैसे-घोड़ा, गधा, नाक, कान आदि ।

२. यौगिक—जो शब्द दूसरे शब्दों के योग से बनते हैं, जैसे—पाठशाला, कुम्भक आदि।

३. योगरूढ़ि—वे यौगिक शब्द हैं, जिनका एक विशेष अर्थ होता है, जैसे—लम्बोदर (गणेश), पंकज (कमल), पीताम्बर (पीत+अम्बर) का सामान्य रूप से अर्थ है पीला वस्त्र, किन्तु प्रत्येक पीले वस्त्र को पीताम्बर नहीं कह सकते। केवल विष्णु भगवान् का वस्त्र ही पीताम्बर कहा जाता है। इसी प्रकार जलज (जल+ज) यौगिक का अर्थ हुआ जल से उत्पन्न; किन्तु विशेष अर्थ है, कमल।

सूचनाः—रूढ़ि, यौगिक तथा योगरूढ़ि आदि जितने सार्थक शब्द हैं वे सब तीन प्रकार के हैं—

(१) तत्सम (२) तद्भव (३) देशज।

तत्सम—वे शब्द हैं जो वास्तव में संस्कृत भाषा के हैं किन्तु हिन्दी में ज्यों के त्यों प्रयोग होते हैं। जैसे—अग्रगण्य, अक्षर, आर्य्य।

तद्भव—वे शब्द हैं जिनकी उत्पत्ति तो संस्कृत से हुई है किन्तु हिन्दी में प्रयोग होने पर उनके रूप में कुछ परिवर्त्तन होगया है, जैसे—अँगरखा, अनाड़ी, अमचूरादि।

देशज—वे शब्द हैं जो संस्कृत से नहीं लिये गये किन्तु आवश्यकतानुसार स्थानीय बोलियों से ही ले लिये गये हैं, जैसे—पेट, गाड़ी, ओखली आदि। उक्त शब्दों के अतिरिक्त कुछ विदेशी भाषाओं—अरबी, फारसी, अँग्रेजी आदि के शब्द भी हिन्दी भाषा में प्रचलित हैं और अब वे हिन्दी की शब्दावली में अच्छी तरह से खप गये हैं, जैसे—ईमानदार, बदबू, फेल, स्टेशन आदि।

अभ्यास

१—अर्थ के विचार से शब्दों के कितने भेद होते हैं और बनावट के विचार से कितने ?

२—रूढ़ि, यौगिक और योगरूढ़ि सार्थक शब्द कितने प्रकार के होते हैं ?

३—विशेषण और क्रिया-विशेषण किसे कहते हैं ?

४—यौगिक और योगरूढ़ि शब्दों में क्या भेद हैं ?

५—नीचे लिखे शब्द किन-किन भाषाओं के हैं :—

ख़ास, ट्रेन, फ़ेल, ईमनादार, बदबू ।

प्रत्यय और उपसर्ग

१-दुर्जन सदैव कुपथ पर चलते हैं ।

२-सोहन ने एक जंगली सुअर का शिकार किया ।

३-कमला घर के प्रकोष्ठ में बैठी हुई थी ।

४-फलित ज्योतिष पर लोग कम विश्वास करते हैं ।

दुर्जन, कुपथ, जंगली, प्रकोष्ठ और फलित शब्दों की बनावट पर विचार करने से मालूम होता है कि ये जन, पथ, जंगल, कोष्ठ और फल शब्दों से बने हैं । इन शब्दों के आदि अथवा अन्त में कुछ अक्षर जुड़े हैं । ये जुड़नेवाले न तो शब्द ही हैं और न अक्षर ही । इनको शब्दांश कहते हैं । जो शब्दांश शब्दों के पूर्व आते हैं, वे उपसर्ग (Prefix) और जो शब्दों के पश्चात् आते हैं, वे प्रत्यय (Suffix) कहलाते हैं ।

प्रत्यय—वे शब्दांश हैं, जो शब्दों के अन्त में जुड़कर उनके अर्थ में विशेषता पैदा करते हैं अथवा भाव बदल देते हैं । जैसे-जंगली और फलित में 'ई' और 'इत' प्रत्यय हैं ।

उपसर्ग—वे शब्दांश हैं, जो शब्दों के पूर्व जुड़कर उनके अर्थ को घटाते-बढ़ाते अथवा उलट देते हैं; जैसे-दुर्जन, कुपथ और

प्रकोष्ठ में दुर्, कु और प्र उपसर्ग हैं।

कुछ संस्कृत उपसर्ग (Prefixes)

अति—(अधिक, ऊपर) प्रतिदिन, अतिरिक्त, अतिशय, अतिकाल, अतिव्याप्ति।

अधि—(ऊपर, श्रेष्ठ)-अधिकतर, अध्यक्ष, अधिपति।

अनु—(पीछे, समान)-अनुज, अनुचर, अनुरूप, अनुकरण।

अप—(हीन, अभाव, बुरा, विरुद्ध)-अपमान, अपकर्ष, अपशब्द, अपकीर्त्ति, अपकार।

अभि—(ओर, पास, सामने, इच्छा)-अभिमुख, अभ्यागत, अभिप्राय, अभ्युदय।

अव—(नीचे, हीन)-अवगुण, अवनति, अवतार।

आ—(तक, समेत, चारों ओर, उलटा)-आजीवन, आकर्षण, आगमन, आमरण, आयोजन, आक्रान्त।

उत्—(ऊपर, श्रेष्ठ)-उत्कर्ष, उत्कण्ठा, उद्गम, उद्योग, उत्पत्ति, उत्तम।

उप—(समीप, गौण)-उपकूल, उपवन, उपनाम।

दुर्, दुस्—(बुरा, कठिन)-दुष्कर्म, दुर्जन, दुष्प्राप्य, दुर्गम, दुराचार, दुस्साहस।

नि, निस्, निर्-(नीचे, बाहर, निषेध)-निर्जीव, निष्कर्म, निधन, निष्पाप, निषिद्ध, निश्चय, निपात, निरोध, निदान।

परा—(पीछे, उलटा)-पराजय, पराभव, पराक्रम, परामर्श।

परि-(आस-पास, सब तरफ, पूर्ण)-परिजन, परिक्रमा, परितोष।

प्र—(अधिक, आगे, ऊपर)-प्रयत्न, प्रचार, प्रबल, प्रख्यात, प्रभाव।

प्रति—(विरुद्ध, सामने, हरएक)-प्रतिकूल, प्रत्यक्ष, प्रतिदिन।

वि—(विशेष, भिन्न, अभाव)-विदेश, विज्ञान, वियोग, विकल

विशेष, विचित्र, विख्यात ।

सम्—(अच्छा, साथ, पूर्ण)–संस्कार, संगम, सन्तोष, समागम, संग्रह, संयोग, सम्मिलन ।

सु—(अच्छा, सहज)–सुपुत्र, सुकर्म, सुगम, सुयश, सुपथ, सुजन, सुकाल ।

कुछ विशेषण और अव्यय जो उपसर्ग का काम करते हैं

स—(सहित)–सजल, सयत्न, सफल, सजीव, सबल, सगोत्र ।

सह—(साथ)–सहज, सहचर, सहोदर, सहगमन, सहवास ।

स्व—(अपना)–स्वकुल, स्वदेश, स्वरचित ।

सत्—(अच्छा)–सज्जन, सत्सङ्ग, सत्पात्र, सद्गुरु, सत्कार्य, सन्मित्र, सद्भाव ।

कु, का–(बुरा)–कुचाल, कुसुत, कुमार्ग, कुगति, कुकर्म, कापुरुष ।

चिर—(बहुत)–चिरायु, चिरकाल, चिरस्मरणीय, चिरजीवी ।

कुछ हिन्दी उपसर्ग

अ–(नहीं, अभाव, निषेध)–अधर्म, अज्ञान, अनीति, अजान, अयश, अकाल, अदिन, असमय । (स्वरादि शब्दों के पूर्व 'अ' का 'अन' हो जाता है । जैसे–अनेक, अनन्त ।

अध–(आधा)–अधपक्का, अधसेरा, अधजल ।

अधस्–(नीचे)–अधःपतन, अधोगति ।

अन्तर–(भीतर)–अन्तःपुर, अन्तःकरण, अन्तर्नाद ।

भर–(पूरा)–भरपेट, भरपूर, भरसक ।

पुरः–(सामने)–पुरोहित, पुरुष्कार, पुरश्चरण ।

पुरा–(पहले)–पुरातन, पुरातत्त्व, पुरावृत्त ।

पुनर्–(फिर)–पुनर्जन्म, पुनरुक्त, पुनर्विवाह ।

वहिर्–(बाहर)–वहिष्कार, वहिद्वार , वहिरागमन ।

कुछ उर्दू उपसर्ग

बे, ला-(बिना)–बेइज्जत, बेईमान, बेकार, बेहाल, बेचैन,लाचार ।

बा–(साथ)–बासबब, बाज़ाब्ता, बाक़ायदा, बातमीज़ ।
कम–(थोड़ा, हीन)–कमज़ोर, कमबख़्त ।
ग़ैर–(भिन्न)–ग़ैरमुल्क, ग़ैरहाज़िरी, ग़ैरवाजिब ।
ना–(न)–नालायक़, नापसंद, नाराज़ी, नाइत्तिफ़ाक़ी ।
हर–(प्रत्येक)–हररोज़, हरसाल, हरदिल, हरशख़्स, हरघड़ी, हरगिज़ ।
हम–(साथ)–हमसाया, हमजुल्फ़, हमनशीन ।
दर–(में)–दरसल, दरहक़ीक़त, दरम्यान ।

उपसर्गों की भाँति आनेवाले कुछ शब्द

कुल—कुलवधू, कुलधर्म, कुलदेवता, कुलाङ्गार, कुलश्रेष्ठ ।
जीवन— जीवनकाल, जीवनलीला, जीवनधन, जीवनचरित्र ।
यथा—यथायोग्य, यथाकाल, यथागति, यथाशक्ति ।

अभ्यास

१—उपसर्ग और प्रत्यय क्या हैं तथा उनमें क्या अन्तर है ? सप्रमाण प्रकट करो कि उपसर्ग के लगने से शब्दों के अर्थ में अन्तर हो जाता है ।

२—नीचे लिखे शब्दों में प्रत्यय और उपसर्ग बताओ :—
सुगम, सुजन, वचनीय, रमणीय, उपदेश, अभिनेता, कथित, फलित, योगी, अदिन, समता, अपमान, पराभव, सपूत, खुशबू, कुठौर ।

३—नीचे लिखे शब्द किन शब्दों से बने हैं और उनमें कौन से प्रत्यय तथा उपसर्ग लगे हैं:—
बाक़ायदा, जीवनलीला, यथाकाल, ग़ैरवाजिब, नापसंदगी, अधसेरा, चिरस्मरणीय, पराक्रमी, विचलित, वियोगी, संतोषी, समागम और स्वरचित ।

प्रत्यय

तद्धित और उनके भेद

उदाहरण:—

१—सुहागे से स्वर्ण की रंगत बदल जाती है।

२—पांचाली का चीर दुःशासन ने खींचा था।

उपर्युक्त वाक्यों में रेखांकित शब्दों पर विचार करने से प्रकट होता है कि ये रंग और पांचाल संज्ञा शब्दों के आगे त, और ई प्रत्यय लगाने से बने हैं। इनको तद्धित कहते हैं।

तद्धित—वे शब्द हैं, जो संज्ञाओं के आगे प्रत्यय लगाने से बनते हैं।

तद्धित के भेद

उदाहरण:—

सीता का नाम जानकी और वैदेही भी था।

पाण्डव और कौरव आपस में भाई-भाई थे।

जानकी, वैदेही, पाण्डव और कौरव शब्द जनक, विदेह, पाण्डु और कुरु शब्दों से बने हैं। इनमें संतान का भाव पाया जाता है। इस प्रकार की संज्ञाएँ अपत्यवाचक कहलाती हैं।

(१) अपत्यवाचक—पुत्र, धर्म अथवा सम्बन्ध बतानेवाली संज्ञाओं को कहते हैं, जैसे—

पांचाल	पांचाली	मिथिला	मैथिली
रामानन्द	रामानन्दी	पर्वत	पार्वती
शिव	शैव	वसुदेव	वासुदेव
पुत्र	पौत्र	दशरथ	दाशरथि
मनु	मानव	केकय	कैकेयी
दनु	दानव	विष्णु	वैष्णव

उदाहरण:—

पानवाला अभी गया है।

लकड़हारा जंगल को चला गया।

'पानवाला' और 'लकड़हारा' शब्द पान और लकड़ी शब्दों से बने हैं, जो उन वस्तुओं का व्यापार करते हैं। ऐसे शब्द कर्तृवाचक कहलाते हैं।

(२) कर्तृवाचक—वे शब्द हैं जो संज्ञाओं के आगे हारा, वाला आदि प्रत्यय लगाने से बनें तथा क्रिया के कर्त्ता के द्योतक हों। जैसे—

मोटर	मोटरवाला	प्रयाग	प्रयागवाला
चारा	चरवाहा	आढ़त	आढ़तिया
हल	हलवाहा	मक्खन	मखनिया

उदाहरण:—

बुढ़ापा बड़ा दुखदायी होता है।

इस दीवाल की ऊँचाई लगभग बारह फ़ीट है।

'बुढ़ापा' और 'ऊँचाई' संज्ञा शब्द 'बूढ़ा' और 'ऊँचा' विशेषण शब्दों से पा और आई प्रत्यय लगाने से बने हैं। ये अवस्था तथा गुण प्रकट करते हैं। इनको भाववाचक कहते हैं।

(३) भाववाचक—वे संज्ञा शब्द हैं, जिनसे किसी पदार्थ का धर्म या स्वभाव जाना जाय। भाववाचक (तद्धित) शब्द, विशेषण और जातिवाचक संज्ञा शब्दों के अंत में आई, ता, त्व, पन, पा, हट, वट, स, औती आदि प्रत्यय लगाने से बनते हैं। जैसे—

लम्बा	लम्बाई	पंडित	पंडिताई
मित्र	मित्रता	शत्रु	शत्रुता

चिकना	चिकनाहट	कड़ुवा	कड़ुवाहट
बाप	बपौती	चूना	चुनौती
गुरु	गुरुत्व	लघु	लघुत्व
लड़का	लड़कपन	राँड़	रँड़ापा
छोटा	छुटपन	मीठा	मिठास
बूढ़ा	बुढ़ापा	माघ	महावट

उदाहरण:—

राजा बड़ा दयालु है।

ठण्ढा दूध पियो।

'दयालु' और 'ठण्ढा' विशेषण दया और ठंढ संज्ञाओं से लु और आ प्रत्ययों के लगाने से बने हैं। इनको गुणवाचक कहते हैं।

(४) गुणवाचक—वे विशेषण हैं जो संज्ञाओं के आगे आ, इक, इत, इया, एला, आलु, मन्त, वान आदि प्रत्ययों के लगाने से बनते हैं।

भूख	भूखा	छल	छलिया
प्यास	प्यासा	बन	बनैला
देव	दैविक	गोबर	गोबरैला
देह	दैहिक	श्रम	श्रमित
दुख	दुखित	कुल	कुलीन
धन	धनवन्त	मल	मलीन
गुण	गुणवन्त	झगड़ा	झगड़ालू
गाड़ी	गाड़ीवान	रथ	रथवान

उदाहरण:—

उसकी खटिया टूट गई।

उमेश की लुटिया फूटी है।

'खटिया' और 'लुटिया' शब्द खाट और लोटा संज्ञा शब्दों से बने हैं और लघुता सूचित करते हैं, इनको लघु या ऊनवाचक कहते हैं।

(५) लघुवाचक या ऊनवाचक–वे तद्धित हैं, जो लघुता सूचित करते हैं। ये ई, इया, अक, टा, टी, ओड़ा, ओला, री, और ड़ी प्रत्यय लगाने से बनते हैं; जैसे—

रस्सा	रस्सी	डाल	डाली
खाट	खटिया	फल	फली
लोटा	लुटिया	चमड़ा	चमड़ी
टोकरा	टोकरी	टीला	टेकरी
साँप	साँपोला	बहू	बहूटी
रोआँ	रोंगटा	कोठा	कोठरी

उदाहरण:—

राजपूताना वीरांगनाओं के लिए प्रसिद्ध है

वह अपनी ससुराल से कल आया है।

'राजपूताना' और 'ससुराल' शब्द राजपूत और ससुर शब्दों से आना और आल प्रत्यय जोड़ने से बने हैं तथा उनसे अपना सम्बन्ध सूचित करते हैं। इनको सम्बन्धवाचक या स्थानवाचक कहते हैं।

(६) सम्बन्धवाचक—वे तद्धित हैं जो उनके साथ अपना सम्बन्ध स्थिर करते हैं। ये आल, ल, एरा, ठी, ऐला, आदि प्रत्यय लगाने से बनते हैं; जैसे—

ससुर	ससुराल	नानी	ननिहाल
चाचा	चचेरा	आग	अँगीठी
काठ	कठौती	विष	विषैला

कृदन्त और उनके भेद

उदाहरण:—

समझदार का ही सदा मरना है।

मरता क्या न करता।

बापूजी बड़े मिलनसार थे।

समझदार, मरता और मिलनसार शब्दों की बनावट पर ध्यान देने से मालूम होता है कि ये समझना, मरना और मिलना क्रियाओं की धातुओं के आगे दार, ता और सार प्रत्ययों के लगाने से बने हैं, इनको कृदन्त कहते हैं। ये संज्ञा, विशेषण और क्रियाविशेषण का काम करते हैं।

कृदन्त—वे शब्द हैं, जो क्रियाओं से प्रत्यय लगा कर बनाये जाते हैं।

कृदन्त संज्ञा

उदाहरण:—

जड़िया ने अँगूठी में नग जड़ दिया।

सोना लोहार रेती से आरा पैना कर रहा है।

जड़िया और रेती संज्ञा शब्द जड़ और रेत धातु के आगे इया और ई प्रत्यय लगाने से बने हैं और कर्त्ता का काम करते हैं। इस प्रकार के कृदन्त कर्त्तृवाचक कहलाते हैं।

(१) कर्त्तृवाचक—वे कृदन्त हैं, जो कर्त्तृत्व सूचित करते हैं, जैसे—

भूंजना	भुजवा	रेतना	रेती
काटना	कटारी	उचकना	उचक्का
धुनना	धुनिया	जड़ना	जड़िया

उदाहरण:—

शीला की ओढ़नी साफ़ है।

मुन्ना भूला भूल रहा है।

ओढ़नी और भूला संज्ञायें ओढ़ और भूल धातुओं के आगे नी और आ प्रत्यय लगाने से बनी हैं। ओढ़नी का अर्थ है वह वस्त्र जिसके द्वारा ओढ़ने का काम हो और भूला वह वस्तु है जिससे भूलने का काम लिया जाय। इसलिए ये कृदन्त करण-वाचक कहलाते हैं।

(२) करण वाचक—वे कृदन्त हैं, जिनसे क्रिया का सम्पादित होना प्रकट हो। ये धातुओं के आगे ना, नी आदि प्रत्ययों के लगाने से बनते हैं; जैसे—

कतरना	कतरनी	बेलना	बेलनी, बेलन
सुमिरना	सुमिरनी	भूलना	भूला
धौंकना	धौंकनी	छानना	छन्ना
झाड़ना	झाड़ू, झाड़न	कसना	कसौटी

उदाहरण:—

राम और श्याम में मारपीट हो गई।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का चुनाव हो गया।

मारपीट और चुनाव शब्द मारना-पीटना और चुनना क्रियाओं से बने हैं, जो भाववाचक संज्ञाओं का काम करते हैं।

(३) भाववाचक—वे कृदन्त हैं, जो भाववाचक संज्ञा का काम करते हैं और धातुओं के आगे आ, आई, आन, आप, आव, ई, त, ती, न, नी, र, वट, हट आदि प्रत्ययों के लगाने से बनते हैं। जैसे—

दौड़-धूप	खेल-कूद	मार-पीट	चढ़ाव-उतार
डाँट-डपट	सोच-विचार	लड़ाई-भिड़ाई	मेल-मिलाप
मिलावट	खपत	बोली	ठोकर
हँसी	चढ़ती	कटनी	दिखावट
वचन	घटती	मड़नी	बनावट
घबड़ाहट	चिल्लाहट	उठान	
प्यास	धमकी	घुड़की	उड़ान

नोट—कभी-कभी धातु के मूल रूप भी भाववाचक का काम करते हैं। जैसे—मार-पीट।

कृदन्त विशेषण

उदाहरण:—

१—बहता पानी निर्मल होता है।

२—चढ़ती नदी और उठती जवानी का सम्हालना कठिन होता है।

बहता, चढ़ती और उठती शब्द कृदन्त हैं जो बहना, चढ़ना और उठना क्रियाओं की धातुओं के आगे ता और ती प्रत्ययों के लगाने से बने हैं और विशेषणों का काम करते हैं। इनको कृदन्त विशेषण कहते हैं।

कृदन्त-विशेषण—वे कृदन्त हैं, जो विशेषण का काम करते हैं। इसके तीन भेद होते हैं। (१) कर्त्तृवाचक विशेषण (२) भूत कालिक (३) वर्त्तमान कालिक।

(१) कर्त्तृबाचक—वे कृदन्त हैं, जिनका रूप कर्त्तृवाचक संज्ञा के समान होता है, परन्तु विशेषण का काम करते हैं। ये आऊ, आका, आक, आड़ी, आलू, एरा, ऐया, ओड़ा, क, क्कड़, वाला, सार, हारा आदि प्रत्ययों के लगाने से बनते हैं; जैसे—

घराऊ	खेलाड़ी	हँसोड़ा	मारनहारा
टिकाऊ	झगड़ालू	भगोड़ा	मिलनसार
लड़ाका	चालू	पालक	जानेवाला-आदि।
उड़ाका	लुटेरा	बाचक	
तैराक	चढ़ैया	पियक्कड़	
पैराक	बटैया	भुलक्कड़	

(२) भूतकालिक कृदन्त—वे कृदन्त हैं, जो विशेषण का काम करते हैं और जिनका रूप भूतकालिक होता है। ये आ प्रत्यय लगाने से बनते हैं। कभी-कभी उसके आगे हुआ भी लगा देते हैं; जैसे—

पढ़ा	नहाया	सुना हुआ
धोया	खाया	देखा हुआ-आदि।

(३) वर्त्तमानकालिक कृदन्त—वे कृदन्त हैं, जो वर्त्तमानकाल के रूप में होते हैं और विशेषण का काम करते हैं; जैसे—

पढ़ता	चलता	चलते हुए
बहता	दौड़ते हुए	

नोट:—संस्कृत शब्दों में इत और ई प्रत्यय भी लगते हैं; जैसे—

कथित	विहित	कथनीय	दर्शनीय

कुछ अन्य संस्कृत प्रत्ययों से शब्द—अण, विष्णुसे वैष्णव, मनु से मानव, इञ; सुमित्रा से सौमित्र, दशरथ से दाशरथि। आलु से दयालु, इक से मासिक, इत से दुःखित, इष्ठ से कनिष्ठ, इन्, गुणी, मान् से बुद्धिमान्, ईय से स्वर्गीय आदि।

प्रत्ययों की भाँति आनेवाले कुछ शब्द

आगार—धनागार, कारागार, शयनागार, स्नानागार।

अर्थी—विद्यार्थी, लाभार्थी, परीक्षार्थी, परमार्थी।

सम्पन्न—गुणसम्पन्न, शक्तिसम्पन्न, धनसम्पन्न।

शील–धर्मशील, गुणशील, न्यायशील, कर्मशील ।
कर–हितकर, सुखकर, रुचिकर, शीतकर ।
हर–सन्तापहर, पापहर, मनोहर ।
हीन–बुद्धिहीन, बलहीन, ज्ञानहीन, धनहीन ।
धि–जलधि, वारिधि, उदधि, नीरधि ।
धर–हलधर, देवधर, विद्याधर, परशुधर ।
द–धनद, जलद, वारिद, नीरद, सुखद ।
प्रद–दुःखप्रद, सुखप्रद, संतोषप्रद, लाभप्रद ।
ज–जलज, नीरज, पंकज, मलयज, अण्डज ।

उर्दू के कुछ प्रत्यय

गर–कारीगर, सितमगर, सौदागर, कीमियागर, बाजीगर, कलईगर ।
दार–किलेदार, मज़ेदार, ज़मीदार, मौरूसीदार, तहसीलदार, ताल्लुकदार ।
मंद–अक़्लमंद, दौलतमंद, दानिशमंद, फ़ायदेमंद ।
बीन–तमाशबीन, खुर्दबीन ।
ची–तेलची, खज़ानची, एलची, मशालची ।
वार–दस्तावर, उम्मीदवार, पैदावार ।
सार–जानिसार, मिलनसार, ख़ाकसार ।
गार–मददगार ।
नाक–ख़ौफ़नाक, दर्दनाक ।
गी–ख़ानिगी, ज़िन्दगी, मरदानिगी, सादगी ।
वर–ज़ोरावर, ताकतवर ।

नोटः—प्रत्यय सम्बन्धी निम्नांकित अशुद्धियों पर विशेष ध्यान देना चाहिए ।

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
आवश्यकीय	आवश्यक	भिज्ञ	अभिज्ञ
महानता	महत्ता	धैर्यता	धैर्य
त्रिवार्षिक	त्रैवार्षिक	सप्ताहिक	साप्ताहिक
सौजन्यता	सौजन्य	व्यवहारित	व्यवहृत

अभ्यास

१—प्रत्यय और उपसर्ग किसे कहते हैं ?

२—तद्धित और कृदन्त का भेद उदारहण देकर बताओ।

३—तद्धित के कौन-कौन से भेद हैं ?

४—भाव वाचक शब्द किन शब्दों से बनते हैं ?

५—अपत्यवाचक और लघुवाचक के क्या अर्थ हैं ? सोदाहरण समझाओ।

६—कृदन्त विशेषण कितने प्रकार का होता है ? प्रत्येक को उदाहरण देकर समझाओ।

७—उपसर्ग बताओः–पराभव, सपूत, खुशबू और कुठौर।

८—प्रत्यय बताओः–खिलाड़ी, लम्बाई, लुटिया, गवैया, झगड़ालू और झाड़ू।

९—नीचे दिए हुए शब्दों में कृदन्त और तद्धित छाँटकर लिखोः—
मिठाई, कड़ुवाहट, हँसी, चलनी, तम्बोली, पनिहारिन, कैकेयी, लुटेरा, मखनिया, ठेला, श्रमित, चढ़ाव।

———

तीसरा अध्याय

विकारी तथा अविकारी शब्दों के पदान्वय

संज्ञा (Noun) की कुछ मुख्य बातें

१. जिस संज्ञा से एक जाति के सभी वस्तुओं का बोध होता है उसे जातिवाचक संज्ञा (Common Noun) कहते हैं। यथा—नदी, नगर, लड़की, विद्यार्थी आदि।

जातिवाचक संज्ञाएँ अर्थवान होती हैं।

२. जिस संज्ञा से केवल एक ही पदार्थ का बोध होता है उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा (Proper Noun) कहते हैं। यथा—काशी, गंगा, श्रीकृष्णचन्द्र जी आदि।

व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ बहुधा अर्थहीन होती हैं। इनके प्रयोग से जिस व्यक्ति का बोध होता है उसका प्रायः कोई धर्म इनसे सूचित नहीं होता। गंगा नाम से एक ही नदी का अथवा एक ही स्त्री का या और किसी एक ही व्यक्ति का बोध हो सकता है; पर इस नाम के व्यक्ति का प्रायः वह धर्म इस शब्द से सूचित नहीं होता। व्यक्तिवाचक संज्ञा किसी व्यक्ति की पहचान या सूचना के लिये केवल एक संकेत है; और यह संकेत इच्छानुसार लगाया जासकता है। एक ही नाम के कई मनुष्यों की एक दूसरे से भिन्नता सूचित करने के लिये प्रत्येक शब्द के साथ बहुधा कोई संज्ञा या विशेषण लगा देते हैं; जैसे—पंडित महादत्त, बाबू मदनगोपाल। यदि एक ही मनुष्य के दो नाम हैं, तो व्यवहारी या नए काग़ज़ पत्रों में उसे दोनों लिखने पड़ते हैं; जिसमें उसे अपने किसी नाम की आड़ मेंधोखा देने का अवसर न मिले; जैसे रामा उर्फ़ सन्नू। कई

संज्ञाएँ व्यक्तिवाचक होने पर भी अर्थवान् हैं; जैसे–ईश्वर, परमात्मा, ब्रह्मांड, प्रकृति, परब्रह्म।

(क) कभी-कभी व्यक्तिवाचक संज्ञा जातिवाचक और जातिवाचक संज्ञा व्यक्तिवाचक हो जाती हैं। यथा–इस कक्षा में दो देवदत्त हैं (जातिवाचक); हमको वर्म्मा जी पढ़ाएँगे। (व्यक्तिवाचक)

(ख) कोई-कोई जातिवाचक संज्ञा बहुत समय के प्रयोग के अनन्तर केवल एक ही व्यक्ति का बोध कराने लगती है; उस दशा में वह जातिवाचक नहीं रहती; व्यक्तिवाचक हो जाती है; जैसे—'महादेव' का अर्थ 'बड़ा देवता' होने के कारण यह जातिवाचक संज्ञा होनी चाहिये क्योंकि बड़े देवता अनेक हो सकते हैं। परन्तु यह जातिवाचक नहीं है–व्यक्तिवाचक ही और एक ही व्यक्ति का बोध कराती है। ऐसे ही पुरी, जगन्नाथ, देवी=दुर्गा आदि।

३. जिस संज्ञा से किसी पदार्थ के गुण, स्वभाव, दशा या व्यापार का बोध होता है उसे भाववाचक संज्ञा (Abstract Noun) कहते हैं। जैसे:—भलाई, मनुष्यत्व, बुढ़ापा आदि।

भाववाचक संज्ञाएँ अर्थवान होती हैं।

(क) कभी-कभी भाववाचक संज्ञा का प्रयोग जातिवाचक संज्ञा के समान होता है। यथा—'उसके आगे सब रूपवती स्त्रियाँ निरादर हैं'। इस वाक्य में 'निरादर' शब्द से 'निरादर योग्य स्त्री' का बोध होता है। 'ये सब कैसे अच्छे पहिरावे हैं'; यहाँ 'पहिरावे' का अर्थ बहुत करके 'पहिनने के वस्त्र' हैं। इसी प्रकार 'कठिनाई' संज्ञा भाववाचक है परन्तु 'कठिनाइयां' जातिवाचक है।

(ख) भाववाचक संज्ञाएँ निम्नलिखित शब्दों से बनती हैं:—

१. जातिवाचक संज्ञा—जैसे—लड़का से लड़कपन।

२. सर्वनाम—जैसे— मेरा से मेरापन।

३. विशेषण—जैसे—सुन्दर से सुन्दरता।

४. क्रिया—जैसे—हँसना से हँसी।

५. अव्यय—जैसे—समान से समानता।

६—क्रिया का सामान्य रूप भी भाववाचक होता है।

संज्ञा के पदान्वय में कुछ मुख्य बातें

१—कहीं सर्वनाम का उपयोग संज्ञा के स्थान में होता है; जैसे:-

(क) मैं (सारथी) रास खींचता हूँ।

(ख) यह (शकुन्तला) बन में पड़ी मिली थी।

उपर्युक्त (क) और (ख) वाक्यों में 'मैं' और 'यह' शब्द सर्वनाम हैं; लेकिन यह शब्द संज्ञा की जगह प्रयुक्त हुये हैं। इसलिये इनका पदान्वय सर्वनाम की तरह न होकर संज्ञा की तरह किया जायगा।

२—विशेषण कभी-कभी संज्ञा के स्थान में आता है; जैसे:—

(क) इनके बड़ों का यह कहना है।

(ख) छोटे बड़े न ह्वै सकैं।

उपर्युक्त (क) और (ख) वाक्योंमें 'बड़ों' और 'छोटे' शब्द विशेषण हैं; परन्तु यह शब्द संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त हुये हैं। इसलिये इनका पदान्वय इनको विशेषण न लिखकर संज्ञा बताकर करना पड़ेगा।

३—कोई-कोई क्रिया विशेषण संज्ञाओं के समान उपयोग में आते हैं; जैसे:—

(क) जिसका भीतर-बाहर एकसा हो।

(ख) यहाँ की भूमि उपजाऊ है।।

(ग) हाँ में हाँ मिलाना।

उपर्युक्त तीनों वाक्यों में 'भीतर-बाहर', 'यहाँ' तथा 'हाँ में हाँ' शब्द क्रियाविशेषण हैं; लेकिन यहाँ ये शब्द संज्ञा की जगह उपयोग हुये हैं। इनका पदान्वय भी संज्ञा की तरह ही होगा।

४—कभी-कभी विस्मयादि-बोधक शब्द संज्ञा के समान प्रयुक्त होते हैं; जसेः—

(क) वहाँ हाय-हाय मची है।

(ख) उनकी बड़ी वाह-वाह हुई।

उपर्युक्त दोनों वाक्यों में 'हाय-हाय' और 'वाह-वाह' विस्मयादि-बोधक अव्यय हैं; परन्तु यह संज्ञा के स्थान में आये हैं। इसलिए इनका पदान्वय संज्ञा की ही भाँति होगा।

५—कोई भी शब्द या अक्षर केवल उसी शब्द या अक्षर में संज्ञा के समान उपयोग में आ सकता है। जैसेः—

(क) 'मैं' सर्वनाम है।

(ख) तुम्हारे लेख में कई बार 'फिर' आया है।

(ग) 'का' में 'आ' की मात्रा लगी है।

(घ) 'क्ष' संयुक्त अक्षर है।

उपर्युक्त चारों वाक्यों में 'मैं', 'फिर', 'का' में 'आ' और 'क्ष' का पदान्वय संज्ञा की भाँति होगा।

संज्ञा शब्दों का पदान्वय-(Parsing of Nouns)

पदान्वय—वाक्यों में शब्दों का पारस्परिक सम्बन्ध बताने

की रीति को पदान्वय कहते हैं। इसी को शब्द-निरुक्ति, पद-परिचय, पद-व्याख्या तथा व्याकरण-व्याख्या कहते हैं।

संज्ञा शब्दों के पदान्वय में नीचे लिखी बातें दिखलाओः—

(१) संज्ञा के भेद (जातिवाचक, व्यक्तिवाचक, भाववाचक।

(२) लिङ्ग (पुल्लिङ्ग या स्त्रीलिंग)।

(३) वचन (एकवचन या बहुवचन)।

(४) कारक (कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण, सम्बोधन)।

(५) क्रिया या अन्य शब्दों के साथ सम्बन्ध।

वाक्य—हे राम! तेरे पिता को इससे अधिक दुःख क्या होगा कि यौवन में वे प्राणों को त्याग कर संसार से चल बसे।

राम—संज्ञा व्यक्तिवाचक, पुल्लिङ्ग, एकवचन, सम्बोधन।

पिता को—संज्ञा जातिवाचक, पुल्लिङ्ग, एकवचन, सम्प्रदान 'को' दुःख होना पाया जाता है।

दुःख—संज्ञा भाववाचक, पुल्लिङ्ग,, एकवचन, अधिकरण कारक।

प्राणों को—संज्ञा जातिवाचक, पुल्लिङ्ग, बहुवचन, कर्म, 'त्याग कर चल बसे' क्रिया का।

संसार से—संज्ञा जातिवाचक, पुल्लिङ्ग, एकवचन, अपादान-कारक।

अभ्यास

१—संज्ञा शब्दों के पदान्वय में किन-किन बातों के बताने की आवश्यकता होती है?

२—नीचे लिखे हुए गद्य-खण्ड में आई हुई संज्ञाओं के कारक बताओ—

(अ) मोहन ने राधे को एक कापी दी ।

(ब) नम्रता सब गुणों की मूल है ।

(स) सत्यता ही मनुष्य का भूषण है ।

(द) वह ससुराल से विदा होकर चला गया ।

(य) श्याम से कह दो कि वह चला गया ।

(र) कहानियों में बे सिर पैर की बातें बहुत होती हैं ।

(ल) स्त्रियों से पुरुषों का दर्जा कहीं अधिक ऊँचा है ।

३—नीचे लिखे गद्य-खण्ड में आई हुई संज्ञाओं की शब्द निरुक्ति करो:—

यदि मनुष्य अपने को अशक्त समझ अपराधी को दण्ड न देकर दया दिखाता और उसे क्षमा करता है, तो उसे हम क्षमा और दया के नाम से कभी न पुकारेंगे ।

————

सर्वनामों के पदान्वय करने की कुछ मुख्य बात

१. सांकेतिक निश्चय और अनिश्चयवाचक सर्वनामों के बाद यदि संज्ञा हो तो ये विशेषण कहलायेंगे । यथा—यह लड़का, कुछ लोग, कोई चीज़ आदि ।

२. 'आप' निजवाचक सर्वनाम है और दोनों वचनों और तीनों पुरुषों में प्रयोग होता है । यथा—मैं आप गया, वे आप आये । निश्चय के अर्थ में 'आप' के साथ 'ही' जोड़ा जाता है । यथा—तुम आप ही रह गये ।

३. निश्चयवाचक सर्वनाम के साथ संज्ञा का प्रयोग करने से वह विशेषण हो जाता है । यथा—उसको लाओ (सर्वनाम) उस टोपी को लाओ (विशेषण) ।

४. 'कोई' अनिश्चयवाचक सर्वनाम है इसका प्रयोग क्रिया-विशेषण के समान भी होता है। यथा-कोई दस दिन लगेंगे। 'कुछ' अनिश्चयवाचक है इसका प्रयोग क्रियाविशेषण और समुच्चयबोधक के समान भी होता है। यथा-टोपी कुछ बड़ी है (क्रियाविशेषण)। कुछ तुमने कहा कुछ उसने कहा (समुच्चय बोधक)।

५. 'जो' सम्बन्धवाचक सर्वनाम है। इसके साथ कभी-कभी संज्ञा का भी प्रयोग होता है। यथा-जो लड़का। 'जो' का प्रयोग समुच्चय-बोधक के समान भी होता है। यथा-जो अब गिरे तो गये।

'जो' के साथ कभी-कभी अनिश्चयवाचक सर्वनाम भी आता है। यथा-जो कोई।

६. 'कौन' प्रश्नवाचक सर्वनाम है। 'कौन' क्रियाविशेषण भी हो जाता है। यथा-वह बात कौन भारी है।

'क्या' प्रश्नवाचक सर्वनाम है। जब 'क्या' आश्चर्य या धमकी अथवा असमर्थता या निश्चय प्रकट करता है तब 'क्या' क्रियाविशेषण हो जाता है। यथा—क्या हँसा (आश्चर्य), क्या हँसते हो; सब बता दूँगा (धमकी), तुम मेरे साथ क्या दौड़ोगे (असमर्थता)। पुस्तक यह क्या धरी है। (निश्चय)

'क्या' का प्रयोग जब कुछ अन्तर से दो बार होता है तो वह समुच्चयबोधक हो जाता है। यथा-क्या लड़का और क्या लड़की, सब ही को परमेश्वर ने बनाया है।

जब 'क्या' का अर्थ कौन वस्तु न रहकर केवल प्रश्न रह

जाता है तब विस्मयादि-बोधक रह जाता है। यथा-क्या तुम सो गये ?

सर्वनाम शब्दों का पदान्वय

संज्ञा की भाँति सर्वनाम शब्दों का पदान्वय करने में नीचे लिखी बातें दिखलाना चाहिये:—

(१) सर्वनाम के भेद (पुरुषवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, सम्बन्धवाचक, प्रश्नवाचक)।

(२) लिङ्ग
(३) वचन
(४) कारक
} संज्ञा की भाँति

(५) क्रिया या अन्य शब्द के सम्बन्ध।

वाक्य—जगदीश ने 'कहा—जाइये, मैं बहस नहीं करता। हाँ, इतना अवश्य है कि आपने जो कहा है उसे भूल न जाइयेगा क्योंकि यहाँ मेरा कोई नहीं है, जिससे कुछ कह सकूँ।'

मैं—उत्तम पुरुष सर्वनाम, एक वचन, स्त्रीलिंग, कर्त्ताकारक की अवस्था में 'बहस करता' क्रिया का कर्त्ता है।

आपने—आदरसूचक सर्वनाम, पुल्लिङ्ग, बहुवचन, कर्त्ता कारक की अवस्था में 'कहा है' क्रिया का कर्त्ता।

जो—सम्बन्धकारक सर्वनाम, एकवचन, पुल्लिङ्ग, कर्मकारक की अवस्था में 'कहा है' क्रिया का कर्म।

उसे—निश्चयवाचक सर्वनाम, एकवचन, पुल्लिङ्ग, कर्मकारक की अवस्था में, 'भूल न जाइयेगा' क्रिया का कर्म है।

मेरा—उकत्तम पुरुष, एकवचन, पुल्लिङ्ग, सम्बन्ध कारक की अवस्था में, इसका सम्बन्ध 'कोई' से है।

कोई—अनिश्चयवाचक सर्वनाम, एकवचन, पुल्लिङ्ग, कर्त्ता-कारक की अवस्था में, 'है' क्रिया का कर्त्ता।

जिससे—सम्बन्धवाचक सर्वनाम, एकवचन, पुल्लिङ्ग, कर्म-कारक की अवस्था में, 'कह सकूँ' क्रिया का गौण कर्म है।

नोट:—गौण कर्म के साथ बहुधा चतुर्थी विभक्ति लगती है। परन्तु कहना, पूछना, जांचना आदि क्रियाओं के साथ पञ्चमी रहती है।

अभ्यास

(१) नीचे लिखे वाक्यों में रिक्त स्थानों में यथा योग्य सर्वनाम लिखो:—
······यहाँ आया था। उसने······कहा······ काम में होशियार रहो; संसार में देखा गया है······परिश्रम करता है······ उत्तम फल प्राप्त करता है। जाने दो······बात को······काम की नहीं। राम और ············स्त्री वहाँ पहुँचे।

(२) निम्नलिखित वाक्यों में सर्वनाम शब्दों का पद-परिचय करो:—
आप कहाँ से आये हैं? क्या कर रहे हैं? कुछ अपनी दशा विचारो। उनसे किसने कहा मैं तुम्हारा हितैषी हूँ। जो गरजते हैं वे बरसते नहीं। सभी एक दूसरे से लड़ते हैं। मैंने तुमसे कहा था वह बड़ा दुष्ट है।

विशेषणों की विशेष बातें

१. पुरुषवाचक और निजवाचक सर्वनामों को छोड़कर शेष सर्वनामों का प्रयोग विशेषण के समान होता है। जब ये शब्द अकेले में आते हैं, तब सर्वनाम होते हैं; और जब इनके साथ संज्ञा आती है, तब ये विशेषण होते हैं। यथा–-लड़का आया है, वह बाहर खड़ा है'। इस वाक्य में 'वह' सर्वनाम है, क्योंकि वह 'लड़का' संज्ञा के बदले आया है। 'वह लड़का नहीं आया'–यहाँ 'वह' विशेषण है।

२. पुरुष वाचक और निजवाचक सर्वनाम (मैं, तू, आप) संज्ञा के साथ आते हैं तो वे विशेषण नहीं होते बल्कि वे संज्ञा शब्दों के समानाधिकरण शब्द होते हैं। यथा–'लड़का आप आया था'। इस वाक्य में 'आप' शब्द विशेषण नहीं है, किंतु 'लड़का' का समानाधिकरण शब्द है।

३. यौगिक सार्वनामिक विशेषणों के साथ जब विशेष्य नहीं रहता, तब उनका प्रयोग बहुधा संज्ञाओं के समान होता है, यथा–'जैसा करोगे वसा पाओगे'। 'जैसे को तैसा मिले' आदि।

४. अनिश्चत संख्याबोधक और अनिश्चत परिमाणबोधक शब्द प्रायः एक ही हैं। इनकी पहिचान विशेष्य के साथ हो सकती है, तब संख्या का बोध हो, यथा–'सब लड़के' तब अनिश्चत संख्यावाचक समझना चाहिये और जब परिमाण का बोध हो, यथा–'सब भोजन' तब अनिश्चित परिमाणवाचक समझना चाहिये।

५. पृथकता या अधिकता दिखाने के लिए कहीं-कहीं विशेषणों

को दुहरा दिया जाता है। यथा—छोटे-छोटे फूल, लाल-लाल आँखें, बड़े-बड़े कोट।

६ विशेषण का भी विशेषण होता है। यथा—थोड़ी फटी धोती, बड़ा सुन्दर फूल।

७. गुणवाचक और परिमाणवाचक विशेषण जब क्रिया की विशेषता दिखाते हैं तब क्रियाविशेषण हो जाते हैं। यथा—बहुत खा गया, घी थोड़ा है।

८. विशेषण शब्दों के साथ जब विशेष्य नहीं आता और वे स्वयं विशेष्य बन जाते हैं तब उनके साथ विभक्तियाँ भी लगती हैं; यथा—'दोनों को दान दो'।

विशेषण शब्दों की शब्द निरुक्ति

विशेषणों का पदान्वय करने में विशेषण के भेद (गुणवाचक, संख्यावाचक, परिमाणवाचक, संकेत वाचक) और विशेष्य (विशेषण किस शब्द की विशेषता बतलाता है) बताने की आवश्यकता होती है। शेष बातें संज्ञा के समान हीं कहनी पड़ती हैं। जैसे:—

इस कठिन अवस्था में हम दोनों दूसरी मंजिल पर चढ़ गए; वहाँ जाते ही थोड़ा पानी पिया।

इस—विशेषण सार्वनामिक, एकवचन, 'कठिन' विशेषण का विशेषण।

कठिन—विशेषण, गुणवाचक, स्त्रीलिंग, एकवचन, 'अवस्था' विशेष्य का विशेषण।

दोनों—विशेषण, संख्यावाचक, पुल्लिङ्ग, बहुवचन, 'हम' विशेष्य का विशेषण।

दूसरी—विशेषण, निश्चित संख्यावाचक, स्त्रीलिंग, एकवचन, 'मंजिल' विशेष्य का विशेषण।

थोड़ा—विशेषण, परिमाणवाचक, पुल्लिङ्ग, एकवचन, 'पानी' विशेष्य का विशेषण।

अभ्यास

१—नीचे लिखे गद्य-खण्ड में आये हुए विशेषण शब्दों की निरुक्ति करोः—

नारंगी के रस में जाफ़रानी बसंती बूटी छानकर शिव शम्भु शर्मा खटिया पर पड़े मौजों का आनन्द ले रहे थे। ख़याली घोड़े की बागें ढीली करदी थीं। वह मनमानी जकंदें भर रहा था।

क्रिया के पदान्वय करने की मुख्य बातें

१. क्रिया का साधारण रूप बहुधा संज्ञा के समान प्रयुक्त होता है; यथा—'उसका हँसना देख मैं बड़ा प्रसन्न हुआ'। 'ऐसे जीने से मरना ही भला है'। इन वाक्यों में 'हँसना', 'जीना' और 'मरना' संज्ञा हैं।

२. कई एक धातुओं का भाववाचक संज्ञा के समान प्रयोग होता है। यथा—घुड़-दौड़ में कौन जीता? खेल शीघ्र ही समाप्त हो गया।

३. कोई-कोई क्रियायें प्रयोग के अनुसार सकर्मक और अकर्मक दोनों होती हैं। यथा—खुजलाना, ललचाना, भरना, भूलना, घिसना आदि। यथा—

(क) राम श्याम का सिर खुजलाता है, (सकर्मक)
राम का सिर खुजलाता है (अकर्मक)

(ख) राम अपने गुण के लिये श्याम को ललचाता है (सकर्मक)
गरीबों का जी भोग विलास की चीजों को देखकर ललचाता है (अकर्मक)

(ग) मैं ने घड़ा भरा है (सकर्मक)
एक-एक बूँद से घड़ा भरता है (अकर्मक)

४. कभी साधारण क्रिया तो अकर्मक होती है किन्तु 'देना' शब्द जोड़ देने से सकर्मक हो जाती है। यथा—मैं हँसा, उसने मुझे हँसने दिया।

५. अकर्मक क्रियाओं के साथ उन क्रियाओं से बनी भाववाचक संज्ञाएँ जोड़ दी जाती हैं तब वे सकर्मक हो जाती हैं। यथा—'लड़की ने अच्छा नाच नाचा', 'मैं ऐसी चाल चला कि वे देखते ही रह गये'।

६. आना, जाना, होना, सकना आदि अकर्मक धातुओं से प्रेरणार्थक धातु नहीं बन सकती, शेष सब धातुओं से प्रेरणार्थक क्रियायें बनती हैं। सब प्रेरणार्थक क्रियायें सकर्मक होती हैं और समझना, देना, पढ़ना, पाना आदि क्रियाओं के प्रेरणार्थक रूप द्विकर्मक क्रिया के समान होते हैं।

७. संयुक्त क्रियाएँ कभी-कभी तीन या चार शब्दों की भी प्रयोग होती हैं। यथा—'चला जाना चाहिये', बहा लेजाना चाहिये।

८. जिस क्रिया से आज्ञा आदि का पालन आगे को (परोक्ष में) हो उसे परोक्षविधि क्रिया कहते हैं। यथा—बड़े आनन्द से रहना, तुम्हें पढ़ने में मन लगाना चाहिये। परोक्षविधि की क्रिया भविष्यत् काल की होती है।

९. धातु के अन्त में 'कर', 'के' अथवा 'करके' लगाने से पूर्वकालिक क्रिया हो जाती है। यथा—'हाथ में पुस्तक लेकर

यहाँ आओ', 'हाथ-मुँह धोके खाना खालो', 'स्नान करके तुम्हारे साथ चलूँगा'।

१०. जिस क्रिया की धातु के साथ 'ते' प्रत्यय मिलाकर उसके आगे 'ही' लगी हो तो उसे तात्कालिक क्रिया समझना चाहिये। यथा—यहाँ से जाते ही मैं उससे मिला'। 'खाना खाते ही स्कूल को चल पड़ो।

११. जिस क्रिया का रूप तात्कालिक क्रिया का-सा हो परन्तु साथ में 'ही' न हो तो उसे अपूर्णक्रियाद्योतक समझना चाहिये। यथा—मैंने उसे यहाँ आते देखा था। तुम्हें झूँठ बोलते शर्म नहीं आती।

१२. जिस धातु के सामान्यभूत रूप के अन्तिम 'आ' को 'ए' किया गया हो तो उसे पूर्णक्रियाद्योतक जानना चाहिये। यथा—भूख के मारे जान निकली जाती है। इस लड़ाई में हम अपनी जान देने को कमर कसे बैठे हैं।

१३. (क) कर्तृवाच्य में कर्त्ता प्रधान होता है। क्रिया का सीधा सम्बन्ध कर्त्ता से होता है, अतएव क्रिया के लिंग और वचन मुख्यतया कर्त्ता के अनुसार होते हैं। इसमें सकर्मक और अकर्मक दोनों तरह की क्रियाओं का प्रयोग होता है और कर्त्ता बिना विभक्ति के होता है अर्थात् उसके साथ 'ने' चिह्न नहीं लगता। यथा—'गोबिन्द दूध पीता है; लड़के गेंद खेलते हैं; स्त्रियाँ पानी भरती हैं। अपूर्णभूत और हेतुहेतु मद् भूत को छोड़कर शेष भूतकाल की सकर्मक क्रियाओं में जहाँ कर्म बिना विभक्ति के आता है, क्रिया के लिंग और वचन कर्म के अनुसार होते हैं और जहाँ कर्मविभक्ति

सहित होता है वहाँ क्रिया सदा एकवचन पुल्लिङ्ग और अन्य पुरुष में रहती है तथा कर्त्ता के साथ 'ने' चिह्न लगता है। यथा—मोहन ने आम तोड़े। मोहन ने नासपातियाँ तोड़ीं। मोहन ने राम को हराया। कर्त्ता के साथ क्रिया के लिंग, वचन के न मिलने पर भी यदि बाक्य में कर्त्ता का प्रधान हो तो कर्तृवाच्य ही होगा।

(ख) कर्मवाच्य में कर्म की प्रधानता होती है और क्रिया का सम्बन्ध कर्म से होता है। अतएव उसके लिंग और वचन कर्म के अनुसार होते हैं। और कर्म बिना विभक्ति के कर्त्ताकारक के रूप में आता है तथा 'कर्त्ता' करणकारक में रक्खा जाता है या कर्त्ता के साथ 'द्वारा' शब्द जोड़ दिया जाता है। यथा—'बच्चे से दूध पीया जाता है', स्त्रियों द्वारा कपड़े सिए जाते हैं। परन्तु जब कर्म के साथ 'को' विभक्ति हो तो क्रिया पुल्लिङ्ग एकवचन और अन्य पुरुष में रहती है। यथा—हमको आज-कल में बुलाया जायगा। कर्मवाच्य केवल सकर्मक क्रियाओं में होता है, अर्थात् इसमें कर्म का होना आवश्यक है। जानना, भूलना, खोना आदि कुछ सकर्मक क्रियाएँ बहुधा कर्मवाच्य में नहीं आतीं।

द्विकर्मक क्रियाओं के कर्मवाच्य में प्रधान कर्म ही क्रिया के विधान का मुख्य विषय बनता है, गौणकर्म ज्यों का त्यों रहता है। यथा—'मैंने तुम्हें हार दिया' का कर्मवाच्य होगा 'तुम्हें मुझ से हार दिया गया'।

(ग) भाववाच्य में भाव (धातु का अर्थ) की प्रधानता होती है, कर्त्ता या कर्म की नहीं। यह अकर्मक क्रियाओं से ही बनता है। इसका प्रयोग अधिकतर निषेधार्थक वाक्यों में होता है। यथा—सोया नहीं जाता, बैठा नहीं जाता।

(घ) कर्त्तृवाच्य क्रिया का सामान्यभूत बनाकर उसके आगे काल, पुरुष, वचन, लिंग के अनुसार बनाया हुआ 'जाना' क्रिया का रूप जोड़ देने से सकर्मक क्रिया का कर्मवाच्य और अकर्मक का भाववाच्य बन जाता है। कर्मवाच्य में कर्त्तृवाच्य क्रिया के कर्म को कर्त्ताकारक में और उसके कर्त्ता को करणकारक में रख देते हैं और भाववाच्य में कोई शब्द कर्त्ताकारक में नहीं होता; कर्त्तृवाच्य के कर्त्ता को करणकारक में रख देते हैं। यथा—

१. चौकीदार ने चोर पकड़ा है (सकर्मक कर्त्तृवाच्य)
चौकीदार से चोर पकड़ा गया (कर्मवाच्य)

२. गाय नहीं चलती (अकर्मक कर्त्तृवाच्य)
गाय से चला नहीं जाता (भाववाच्य)

(च) हिन्दी में कर्मवाच्य क्रिया का उपयोग सर्वत्र नहीं होता; उसका प्रयोग बहुधा नीचे लिखे स्थानों में ही होता है। यथा—

१. जब क्रिया का कर्त्ता अज्ञात हो अथवा उसके व्यक्त करने की आवश्यकता न हो; यथा—चोर पकड़ा गया है; आज हुक्म सुनाया जायगा।

२. कानूनी भाषा और सरकारी काग़ज़-पत्रों में प्रभुता

जानने के लिए; यथा—आम जनता को सूचित किया जाता है। नियम भंग करनेवालों को कड़ा दण्ड दिया जायगा।

३. अशक्यता के अर्थ में, यथा—रोगी से अन्न नहीं खाया जाता। हमसे तुम्हारी दुर्दशा न देखी जायगी।

(छ) कर्मवाच्य के बदले हिन्दी में बहुधा नीचे लिखी रचनाएँ आती हैं। यथा—

१. कभी-कभी सामान्य वर्त्तमानकाल के अन्य पुरुष बहुवचन क्रिया का उपयोग कर कर्त्ता का अध्याहार करते हैं; यथा—ऐसा कहते हैं (ऐसा कहा जाता है)। ऐसा सुनते हैं (ऐसा सुना जाता है)।

२. कभी-कभी कर्मवाच्य की समानार्थिनी अकर्मक क्रिया का प्रयोग होता है; यथा—घर बनता है (बनाया जाता है)। वह लड़ाई में मरा (मारा गया)। क्यारी सिंच रही है (सींची जा रही है)।

३. कुछ सकर्मक क्रियार्थक संज्ञाओं के अधिकरण के साथ 'आना' क्रिया के विवक्षित काल का उपयोग किया जाता है; यथा—सुनने में आया है (सुना गया है)। देखने में आता है (देखा जाता है)।

१४. क्रियाओं के काल जानने में नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना चाहिये:—

(क) काल तीन हैं (१) वर्त्तमानकाल (२) भूतकाल (३) भविष्यत्काल।

१. वर्त्तमानकाल के सामान्य वर्त्तमान की क्रियाएँ धातु के आगे 'ता', 'तो', 'ते' जोड़कर है, हैं, हूँ, हो, लगा देने से बन जाती हैं। यथा–मैं पीता हूँ, वह पीता है, वे पीते हैं, तू पीती है, तुम पीती हो, वे पीती हैं।

२. संदिग्ध वर्त्तमान की क्रियाएँ धातु के आगे 'होंगे, होगे, होंगी, लगाने से बनती हैं। यथा–मैं पढ़ता हूँगा, तू पढ़ता होगा, हम पढ़ते होंगे, तुम पढ़ते होगे, वह पढ़ती होगी, वे पढ़ती होंगी।

३. अपूर्ण वर्त्तमान की क्रियाएँ धातु के आगे 'रहा है' 'रहा हूँ' 'रहे हो' 'रहे हैं' 'रही हूँ' 'रही है' 'रही हैं' 'रही हो' लगा देने से बनती हैं। यथा–मैं खारहा हूँ, तू खारहा है, हम खारहे हैं, तुम खारहे हो, मैं खारही हूँ, तू खारही है, तुम खारही हो, वे खारही हैं।

(ख) भूतकाल के छः भेद हैं–

(१) सामान्यभूत (२) आसन्नभूत (३) पूर्णभूत (४) संदिग्धभूत (५) हेतुहेतुमद्भूत (६) अपूर्णभूत।

(१) सामान्यभूत की क्रियाएँ—

(अ) अकारान्त धातु को पुल्लिंग एकवचन में आकारान्त और बहुवचन में एकारान्त कर देते हैं। यथा—पढ़ा, पढ़े।

(ब) स्त्रीलिंग एकवचन में ईकारान्त और बहुवचन में ईकारान्त कर देते हैं। यथा—पढ़ी, पढ़ीं।

(२) यदि धातु के अंत में 'आ' अथवा 'ओ' हो तो 'आ' अथवा 'ओ' के आगे 'या' बढ़ा देते हैं। यथा—गा से गाया। धो से धोया।

(३) ईकारान्त, एकारान्त धातु को पुल्लिंग एकवचन में ई का इ करके 'या' बढ़ा देते हैं। यथा—सी से सिया। दे से दिया।

(४) ऊकारान्त धातु को उकारान्त करके आ, ए, ई, इ, बढ़ा देते हैं। यथा—छू से छुआ, छुए, छुई, छुईं।

(५) कुछ धातुओं से अनियम भी सामान्यभूत बनता है। यथा—जा से गया, हो से हुआ, कर से किया।

(ब) आसन्नभूत की क्रियाएँ धातु के आगे 'है' जोड़ देने से बनती हैं। यथा—उसने खाया है।

(स) पूर्णभूत की क्रियाएँ धातु के आगे 'था' जोड़ देने से बनती हैं। यथा—उसने खाया था।

(द) संदिग्धभूत की क्रियाएँ आसन्नभूत के आगे हूँगा, होगा, होंगे, हूँगी, होंगी बढ़ा देने से बनती हैं। यथा—मैं आया हूँगा, मैं आई हूँगी, तू आया होगा, तू आई होगी, वह आया होगा, वह आई होंगी आदि।

(ध) हेतुहेतुमद्भूत की क्रियाएँ धातु के आगे

पुल्लिंग एकवचन में 'ता' बहुवचन में 'ते' स्त्रीलिंग एकवचन में 'ती' और बहुवचन में 'तीं' बढ़ा देते हैं। यथा-वह खाता, वे खाते, वह खाती, वे खातीं।

(न) अपूर्णभूत की क्रियाएँ धातु के आगे था, थे, थी, थीं, जोड़ देने से बनती हैं। यथा-वह खाता था, वे खाते थे, वह खाती थी, वे खाती थीं।

(ग) भविष्यत्काल के दो भेद हैं—

(१) सामान्य भविष्यत्काल (२) सम्भाव्य भविष्यत्काल।

(१) सामान्य भविष्यत्काल की क्रियाएँ धातु के अंतिम स्वर को ओ, ए, ये, ऐं, यें, ऊँ से बदल कर गा, गे, गी, बढ़ा देते हैं। यथा—मैं खाऊँगा, तू खायगा, तुम खाओगे आदि।

(२) सम्भाव्य भविष्यत्काल की क्रियाएँ धातु के अंतिम स्वर को ओ, ए, ये, ऐं, यें, ऊँ से बदल देने से बनती हैं। यथा-खाओ, खाया, खाऊँ आदि।

१५. क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष जानने के लिए नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना आवश्यक है:—

१. जब कर्त्ता का चिह्न 'ने' नहीं रहता तो क्रिया का लिंग, वचन और पुरुष कर्त्ता के अनुसार आता है। यथा-रमेश चला गया, रामवती चली गई।

२. जब कर्त्ता और कर्म दोनों के चिह्न क्रमशः 'ने' और

'को' नहीं होते तो क्रिया का लिंग, वचन, कर्त्ता के अनुसार आता है। यथा—श्याम पुस्तक पढ़ता है।

३. जब कर्त्ता का चिह्न 'ने' मौजूद होता है और कर्म का चिह्न 'को' नहीं होता तो क्रिया का लिंग, वचन और पुरुष कर्म के अनुसार होगा। यथा—लीलाधर ने किताब पढ़ी।

४. जब कर्त्ता और कर्म दोनों के चिह्न 'ने' और 'का' होते हैं वह क्रिया सर्वदा एकवचन पुल्लिंग रहती है। यथा—लड़के ने घर को मैला कर दिया। लड़कों ने घरों को मैला कर दिया।

५. भाव प्रधान क्रिया भी सर्वदा एकवचन पुल्लिंग ही रहती है। यथा—घोड़ों से खाया नहीं जाता।

क्रिया के पुरुष, लिंग और वचन कहीं तो कर्त्ता के अनुसार होते हैं, कहीं कर्म के अनुसार और कहीं इन दोनों में से किसी के अनुसार भी नहीं होते हैं।

१६. क्रियाओं का तीन प्रकार से प्रयोग होता है—
(१) कर्त्तरिप्रयोग (२) कर्मणिप्रयोग (३) भावे-प्रयोग।

(१) कर्त्तरिप्रयोग में क्रिया के पुरुष, लिंग और वचन कर्त्ता के अनुसार होते हैं। समस्त कर्तृवाच्य क्रियाओं में कर्त्तरि प्रयोग नहीं होता। अकर्मक क्रियाओं के सम्पूर्ण कालों में तथा सकर्मक क्रियाओं के अपूर्ण-भूत और हेतुहेतुमद्भूत—भूतकाल के इन दो भेदों—और वर्त्तमान तथा भविष्यत्काल के सब रूपों में कर्तृवाच्य में कर्त्तरि प्रयोग ही होता है। इसमें कर्त्ता बिना विभक्ति के होता है। यथा—राधे हँसा। शीला

हँसी। बालक बैठा है। लड़के बैठे हैं। लड़कियाँ पढ़ रही थीं। वह सोया होगा। यदि वह आ जाता तो काम अवश्य हो जाता। लड़के प्रार्थना करते हैं। लड़कियाँ पाठ पढ़ती हैं। मैं पाठ पढ़ूँगा। तुम पाठ पढ़ोगे। वह पाठ पढ़ेगा।

(२) कर्मणि-प्रयोग में क्रिया के लिंग, वचन तथा पुरुष कर्म के अनुसार होते हैं। कर्मणि-प्रयोग दो प्रकार के होते हैं। (क) कर्तृवाच्य कर्मणि-प्रयोग और (ख) कर्मवाच्य कर्मणि-प्रयोग। साधारणतया कर्तृवाच्य की अपूर्णभूत और हेतुहेतुमद्भूत को छोड़ शेष समस्त भूतकालिक क्रियाएँ तथा कर्मवाच्य की सारी क्रियाएँ कर्मणि-प्रयोग में आती हैं। कर्मणि-प्रयोग में कर्म बिना विभक्ति के होता है, परन्तु कर्तृवाच्य कर्मणि-प्रयोग में कर्त्ता के साथ 'ने' विभक्ति जुड़ती है तथा कर्मवाच्य कर्मणि-प्रयोग में कर्त्ता करण में होता है पर उसके साथ 'द्वारा' शब्द जुड़ता है। यथा–(कर्तृ-वाच्य) राम ने भोजन खाया, मोहन ने पुस्तकें पढ़ीं, ताजमहल शाहजहाँ ने बनवाया था, ये कमरे आपने बनवाये हैं, लड़कों ने पुस्तकें पढ़ी होंगी। (कर्मवाच्य) यह पत्र राम द्वारा लिखा गया है। ये चिट्ठियाँ राम द्वारा भेजी गई थीं।

(३) भावे-प्रयोग में क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्त्ता या कर्म के अनुसार नहीं होते; अर्थात् जो सदा अन्य पुरुष तथा एकवचन में रहती है। यह तीन तरह का होता है–(१) कर्तृवाच्य भावे-प्रयोग (२) कर्मवाच्य भावे-प्रयोग (३) भाववाच्य भावे-प्रयोग।

कर्त्तृवाच्य भावे-प्रयोग के सकर्मक धातुओं में कर्त्ता और कर्म दोनों विभक्तियों सहित होते हैं, तथा अकर्मक क्रियाओं में केवल कर्त्ता ही विभक्ति सहित रहता है, और कर्ता प्रायः छिपा रहता है। भाववाच्य की समस्त क्रियाएँ भावे-प्रयोग में आती हैं। यदि कर्त्ता की आवश्यकता हो तो उसे करणकारक में रखते हैं। (कर्त्तृवाच्य) राम ने रावण को मारा, राम ने राक्षसों को मारा। इन वृक्षों को दुष्यन्त ने बोया है। इन वृक्षों को बालकों ने बोया है। (कर्मवाच्य) आँखें दिखलाने के लिए श्याम को मथुरा भेजा जायगा। (भाववाच्य) यहाँ बैठा नहीं जाता।

१७. संयुक्त क्रियाओं में पहली क्रिया प्रायः मुख्य होती है और दूसरी उसके अर्थ में विशेषता उत्पन्न कर देती है। यथा–'मैं गेंद खेलता हूँ', से पता लगता है कि मैं खेलने का काम करता हूँ। 'मैं गेंद खेल सकता हूँ' यह प्रकट करता है कि मुझ में गेंद खेलने की शक्ति है, मुझे गेंद खेलना आता है। इस प्रकार 'सकना' क्रिया ने 'खेलना' क्रिया के अर्थ में विशेषता पैदा करदी है।

भिन्न-भिन्न अर्थों में आनेवाली कुछ संयुक्त क्रियाएँ तथा उनके बनाने की रीति नीचे दी जाती है:—

१–आरम्भबोधक और अवकाशबोधक—क्रिया के सामान्य रूप के 'ना' को 'ने' करके आगे 'लगना' और 'देना' या 'पाना' क्रिया लगाने से क्रमशः आरम्भबोधक और अवकाशबोधक क्रियाएँ बन जाती हैं। (आरम्भबोधक) यथा–पानी बरसने लगा। मैं खाने लगा हूँ। (अवकाशबोधक) यथा–मुझे जाने दो। नहीं तुम जाने न पाओगे।

२–समाप्तिबोधक और शक्तिबोधक–धातु के आगे 'चुकना' और 'सकना' क्रिया जोड़ने से क्रमशः समाप्तिबोधक और शक्तिबोधक संयुक्त क्रियाएँ बनती हैं। (समाप्ति बोधक) यथा–भोजन कर चुका। (शक्तिबोधक)यथा–चल सकता हूँ, पढ़ सकता हूँ।

३–विवशताबोधक–क्रिया के सामान्य रूप के आगे 'पड़ना' या 'होना' क्रिया जोड़ने से विवशता प्रकट होती है। यथा–उसके बचाव के लिए झूठ बोलना होगा या बोलना पड़ेगा ; कर्मों का फल भोगना पड़ता है।

४–नित्यबोधक–सामान्यभूत कालिक क्रिया के आगे 'करना' जोड़ने से नित्यता प्रकट होती है। यथा—'कल से मैं आया करूँगा, वे घूमने जाया करते हैं।

५–इच्छाबोधक–क्रिया के साधारण रूप या सामान्यभूत के आगे 'चाहना' क्रिया जोड़ने से इच्छाबोधक संयुक्त क्रिया बनती है। यथा–मैं आज ही यह काम 'करना चाहता हूँ' या 'किया चाहता हूँ'। क्रिया के सामान्य-भूत रूप के आगे 'चाहना' जोड़ने से व्यापार का तत्काल होना भी प्रकट होता है। यथा—गाड़ी आया चाहती है। मकान गिरा चाहता है। बादल बरसना चाहते हैं।

६–तत्कालबोधक और अनुमतिबोधक–सामान्यभूतकालिक क्रिया के अंतिम स्वर को 'ए' में बदलकर आगे 'देना' या 'डालना' क्रिया लगाने से 'तत्कालबोधक' संयुक्त–क्रिया बनती है। यथा—अभी लिखे देता हूँ या लिखे डालता हूँ। 'देना' क्रिया के जोड़ने से अनुमतिबोधक-क्रिया भी बनती है, यथा—मुझे जाने दीजिये।

धातु के साथ 'डालना' जोड़ने से धातु का अर्थ जोरदार हो जाता है। यथा–खा डालना, तोड़ डालना, मार डालना।

७–सातत्य (लगातार रहना) बोधक–हेतुहेतुमद्भूत कालिक क्रिया के आगे, और सामान्यभूत कालिक क्रिया के अन्तिम स्वर को 'ए' में बदलकर उसके आगे 'चलना', 'जाना' और 'रहना' लगाने से सातत्यबोधक संयुक्त क्रियाएँ बनती हैं। यथा–आगे बढ़ते (बढ़े) चलो। काम करते (किये) चलो। मैं उससे डरता रहता हूँ। बकते रहो (बके जाओ), मुझे कुछ परवाह नहीं।

८–जब दो समान अर्थवाली या समान ध्वनिवाली क्रियाओं का मेल होता है, तब उन्हें पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएँ कहते हैं, यथा–पढ़ना-लिखना, करना-धरना, समझना-बूझना।

जो क्रिया केवल यमक (ध्वनि) मिलाने के लिए आती है वह निरर्थक होती है। यथा—पूछना-ताछना, होना-हवाना।

पुनरुक्त क्रियाओं में दोनों क्रियाओं का रूपान्तर होता है परन्तु सहायक क्रिया केवल पिछली क्रिया के साथ आती है। यथा—अपना काम देखो भालो। यह वहाँ आया-जाया करता है। मिल-जुलकर काम करो।

९–संयुक्त क्रियाओं में कभी-कभी सहकारी क्रिया के कृदन्त के आगे दूसरी सहकारी क्रिया आती है, जिससे तीन अथवा चार शब्दों की भी संयुक्त क्रिया बन जाती है। यथा–इसकी तत्काल सफ़ाई कर लेनी चाहिये। उन्हें वह काम करना पड़ता है। हम यह बोझ उठाले जासकते हैं।

क्रिया शब्दों की शब्द निरुक्ति

क्रियाओं का पदान्वय करने में नीचे लिखी बातें दिखलाना चाहिए:—

१. भेद–(सकर्मक, अकर्मक, संयुक्त)
२. लिङ्ग–(पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिंग)
३. वचन–(एकवचन या बहुवचन)
४. पुरुष–(उत्तम, मध्यम, अन्य)
५. काल–(भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान आदि)
६. वाच्य–(कर्त्तृवाच्य, कर्मवाच्य, भाववाच्य)
७. कर्त्ता–कर्म या पूरक से सम्बन्ध।

वाक्य--जो गुण हम में नहीं है, हम चाहते हैं कि कोई ऐसा मित्र मिले जिसमें वह गुण हो।

है—अपूर्ण अकर्मक क्रिया, कर्त्तृवाच्य, वर्त्तमान काल, इसके लिङ्ग और वचन इसके कर्त्ता 'जो' के अनुसार और इसका पूरक 'गुण' है।

चाहते हैं–क्रिया सकर्मक, कर्त्तृवाच्य, सामान्य वर्त्तमानकाल इसके लिङ्ग और वचन इसके कर्त्ता 'हम' के अनुसार और कर्म 'कि कोई..........गुण हो' है।

मिले—अकर्मक क्रिया, सम्भाव्य भविष्यत्काल, कर्त्तृवाच्य, इसके लिङ्ग वचन इसके कर्त्ता 'मित्र' के अनुसार हैं।

हो–अपूर्ण अकर्मक क्रिया, कर्त्तृवाच्य, सम्भाव्य भविष्यत्काल, एकवचन, पुल्लिङ्ग, इसका कर्त्ता 'वह' और पूरक 'गुण' है।

अभ्यास

१—नीचे वाक्यों में आई हुई क्रियाओं के भेद और काल बताओः—

(क) चम्पा आई और चली गई।

(ख) खाना खाते ही मैंने पत्र लिख भेजा।

(ग) मेरा मन घबड़ाता है।

(घ) तुम जानकर भी अनजान बनते हो।

(ङ) कमला पास होगई और बिमला फेल।

२—नीचे लिखे गद्य-पद्य खण्डों में आई हुई क्रियाओं की शब्द निरुक्ति करोः—

(क) जिन दिन देखे कुसुम वे; गई सो बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब की, अपत कटीली डार॥

(ख) पृथ्वी अपने ही अक्ष पर दिन-रात घूमती है। यह पृथ्वी का स्वार्थ कहा जा सकता है परन्तु उसका यह घूमना सूर्य्य के इर्द-गिर्द घूमना तो है और सूर्य्य के चदुर्दिश परिभ्रमण करना सूर्य्य मण्डल के साथ आकाश में एक सीधी लकीर पर चलना है।

अविकारी शब्दों के पदान्वय

क्रियाविशेषण के सम्बन्ध में कुछ मुख्य बातें

१. जिस अव्यय से क्रिया का कोई विशेषण जाना जाय उसे क्रियाविशेषण कहते हैं। यथा—'जल्दी चलो', 'थोड़ा खाया'। इन वाक्यों में 'जल्दी' और 'थोड़ा' अपने साथ की क्रिया की विशेषता प्रकट करते हैं।

२. क्रियाविशेषणों की विशेषता प्रकट करने वाले शब्द भी क्रियाविशेषण कहलाते हैं। क्योंकि क्रियाविशेषण की विशेषता प्रकट करते हुए परम्परा सम्बन्ध से वे क्रिया की विशेषता ही प्रकट करते हैं। यथा—'बहुत थोड़ा खाया' में 'बहुत' और 'थोड़ा' दोनों क्रियाविशेषण हैं।

३. अर्थ को लक्ष्य में रखते हुए क्रियाविशेषण के चार भेद:—कालवाचक, स्थानवाचक, परिमाणवाचक और रीतिवाचक हैं।

(क) कालवाचक क्रिया विशेषण—अब, तब, जब, कब, आज, कल, परसों, तरसों, अभी, कभी, फिर, तुरन्त, पहले, पीछे, प्रथम, निदान, आजकल, नित्य, सदा, सबब, निरन्तर, अब तक, कभी-कभी, अबभी, दिनभर, कब का, बार-बार, बहुधा, प्रतिदिन आदि।

(ख) स्थानवाचक क्रिया विशेषण—वहाँ, कहाँ, जहाँ, यहाँ, आगे, पीछे, नीचे, ऊपर, बाहर, भीतर, सर्वत्र, साथ, पास, दूर, सामने, इधर, उधर, जिधर, चारों ओर, किधर, आर-पार आदि।

(ग) परिमाणवाचक क्रियाविशेषण—अत्यन्त, खूब, कुछ, बहुत,

अति, किंचित्, जरा, निपट, बिलकुल, सर्वथा, इतना, उतना, थोड़ा-थोड़ा, पर्याप्त, केवल आदि ।

(घ) रीतिवाचक क्रियाविशेषणों की संख्या बहुत । यह भिन्न-भिन्न अर्थों में आते हैं:—

प्रकार—धीरे धीरे, अनायास, अचानक, एकाएक, सहसा, सुखपूर्वक, शान्ति से, हँसता हुआ, मन से, धड़ाधड़, झटपट, आपही आप, शीघ्रता से, ध्यानपूर्वक आदि ।

निश्चय—ठीक, अवश्य, अलबत्ता, सचमुच, वास्तव में, बेशक ।

अनिश्चय—कदाचित्, शायद, सम्भव है, बहुत करके ।

स्वीकृति—हाँजी, ठीक, सच ।

हेतु—इसलिए, अवश्य, क्यों, किसलिए, काहे को ।

निषेध—नहीं, मत, न ।

४. दूर, अचानक, फिर, नहीं, आदि क्रियाविशेषण मूल क्रियाविशेषण हैं । ये किसी दूसरे शब्द में प्रत्यय लगाने से नहीं बने । पर बहुत से क्रियाविशेषण ऐसे हैं जो शब्दों में प्रत्यय लगाने से बनते हैं । इन्हें यौगिक क्रियाविशेषण कहते हैं । वे नीचे लिखे शब्द भेदों से बनते हैं:—

(क) संज्ञा से—रात को, प्रेमपूर्वक, दिन भर, महीने तक, सवेरे, मन से, क्रमशः आदि ।

(ख) सर्वनाम से—अब, तब, जब, यहाँ, वहाँ, इधर, उधर, जिधर, किधर, इतना, उतना, जितना, अभी, तभी, ज्यों, त्यों आदि ।

(ग) विशेषण से—चुपके, धीरे, पहले, ऐसे आदि।

(घ) क्रिया से—आते-जाते, बैठे हुए, करते हुए, चाहे, सर्दी के मारे आदि।

(च) अव्ययों के मेल से—यहाँ तक, झट से, ऊपर को।

(छ) शब्दों की द्विरुक्ति से—दिन-दिन, हाथों-हाथ, साफ़-साफ़, एकाएक, धीरे-धीरे, जहाँ-तहाँ आदि।

(ज) भिन्न-भिन्न शब्दों के मेल से—देश-विदेश, रात-दिन, जब-तब, कल-परसों, जब कभी।

(झ) अनुकरणवाचक शब्दों की द्विरुक्ति से—सरासर धड़ाधड़, तड़ातड़, कड़ाकड़।

(ट) संस्कृत के कुछ एक अव्ययीभाव समास, तृतीया विभक्त्यन्त और तः प्रत्ययान्त पद भी क्रियाविशेषण होते हैं। यथा—प्रतिदिन आया करो, कृपया पत्र भेजिये, वस्तुतः तुम सच्चे हो।

५. कभी-कभी संज्ञा, सर्वनाम विशेषण आदि भी बिना किसी विकार के क्रियाविशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं। (संज्ञा) सिर पढ़ेगा। खाक बतायेगा। (सर्वनाम) क्या हुआ? मैंने तब यह किया। (विशेषण) लड़की अच्छा पकाती है। सब लोग सोये पड़े थे। (पूर्वकालिक क्रिया) दौड़कर चलो।

६. क्रियाविशेषण से आगे निश्चयार्थ में 'ई' या 'ही' लगाया जाता है यथा—मैंने यों ही कहा, यही पढ़ो।

७. कुछ क्रियाविशेषणों के साथ को, से, के, की और पर विभक्तियाँ भी लगती हैं। आज किधर को मुँह मोड़ा है।

'कब को टेरत दीन ह्वै' आगे को ऐसा मत करना। कहाँ से आ रहे हैं ? यहाँ से कब चलोगे ? कब से आपकी बाट जोह रहा हूँ ? यहाँ की जलवायु अच्छी है। कहाँ की बात करता है ? वहाँ पर बड़ी भीड़ है।

८. 'मत' का प्रयोग विधि (प्रवर्तना-आज्ञा, प्रार्थना, अनुमति आदि) के अर्थ में ही होता है। यथा—वहाँ मत जाओ, ऐसा मत करो। 'न' का प्रयोग निषेध मात्र में होता है। यथा—मैं वहाँ न जाऊँगा।

इसके अतिरिक्त 'न' का प्रयोग निश्चय के अर्थ में प्रश्नार्थक भी होता है। यथा—तुम तो वहाँ जाओगे न ? कभी-कभी प्रवर्तना में भी इसका प्रयोग होता है। यथा—ज़रा देर बैठिये न। तुम चलो न।

दो क्रिया-विशेषणों के बीच में 'न' जोड़ने से अनिश्चय का बोध होता है। यथा—कहीं न कहीं।

निषेध में, निश्चय प्रकट करने के लिए और सामान्य तथा सातत्यबोधक वर्त्तमान, आसन्नभूत और किसी प्रश्न के उत्तर में 'नहीं' का प्रयोग होता है। यथा—वह खाना नहीं खाता। उसने खाना नहीं खाया।

९. कुछ संयुक्त और द्विरुक्त क्रिया-विशेषणों के अर्थों और प्रयोगों के सम्बन्ध में कुछ बातें नीचे लिखी जाती हैं:—

जब-तब—एक न एक दिन। यथा—'जब-तब वीर निवास'।
कब-कब—इनके प्रयोग से 'बहुत कम' की ध्वनि पाई जाती है। यथा—'आप मेरे यहाँ कब-कब आते हैं।'
जहाँ-तहाँ—सर्वत्र। यथा—'जहँ-तहँ मैं देखौं दोउ भाई।'

अब-तब–इनका प्रयोग बहुधा संज्ञा या विशेषण के समान होता है। यथा–अब-तब करना-टालना। अब-तब होना–मरनहार होना।

ज्यों का त्यों–पूर्व दशा में इस वाक्यांश का प्रयोग बहुधा विशेषण के समान होता है और 'का' प्रत्यय विशेष्य के लिंग, वचन के अनुसार बदलता है। यथा–'किला अभी तक ज्यों का त्यों खड़ा है।'

जहाँ की तहाँ–पूर्व स्थान में। यथा–'पुस्तक जहाँ की तहाँ रक्खी है।'

इसमें विशेष्य के अनुसार विकार होता है।

जैसे-तैसे—किसी न किसी प्रकार से। यथा–जैसे-तैसे यह काम पूरा हुआ।

ज्यों-त्यों करके–'ज्यों-त्यों करके रात काटी।'

नोट—इसी अर्थ में 'कैसा भी करके' और संस्कृत 'येन-केन प्रकारेण' आते हैं।

१०. 'इसलिये'–कभी क्रिया-विशेषण और कभी समुच्चयबोधक होता है। यथा–वह इसलिये नहाता है कि ग्रहण लगा है (क्रिया-विशेषण)। 'तू दीनावस्था में है, इसलिए मैं तुझे दान दिया चाहता हूँ।' (समुच्चयबोधक)

११. 'केवल' यह अर्थ के अनुसार कभी विशेषण, कभी क्रिया-विशेषण और कभी समुच्चयबोधक होता है। यथा–रामहिं केवल प्रेम पियारा।' 'लड़का केवल चिल्लाता है।' केवल एक तुम्हारी सहायता प्राणों को बचाती है।

क्रिया-विशेषण का पद-परिचय

क्रिया-विशेषण के पद-परिचय में उसका भेद और जिस क्रिया आदि की वह विशेषता प्रकट करता हो, बतलाना होता है। जैसेः—

मैं कल धीरे-धीरे यहाँ चल रहा था कि इतने में एक बड़ा साँप फुफकारता हुआ अपनी बाँबी से निकला, उसे देखते ही मैं बहुत डर गया।

कल—क्रिया-विशेषण, कालवाचक, 'चल रहा था' का विशेषण।
धीरे-धीरे—क्रिया-विशेषण, प्रकारवाचक, 'चल रहा था' का विशेषण।

यहाँ—क्रिया-विशेषण, स्थानवाचक, 'चल रहा था' का विशेषण।
इतने में—क्रिया-विशेषण, कालवाचक, 'निकला' का विशेषण।
फुफकारता हुआ—क्रिया-विशेषण, प्रकारवाचक, 'निकला' का विशेषण।

बहुत—क्रिया-विशेषण, परिमाणवाचक, 'डर गया' का विशेषण।

अभ्यास

१—क्रिया-विशेषण कैसे बनते हैं ? सोदाहरण समझाओ।

२—नीचे लिखे वाक्यों में क्रिया-विशेषणों का पद-परिचय करोः—

जल्दी से काम करना ठीक नहीं। जहाँ ऐसा होता है वहाँ काम खराब हो जाता है। आजकल इतना घोर आन्दोलन चल रहा है कि सच पूछिए तो कुछ सूझता ही नहीं।

सम्बन्धबोधक अव्यय (Post-positions)

१. जो अव्यय संज्ञा अथवा सर्वनाम का वाक्य के दूसरे शब्दों से सम्बन्ध सूचित करते हैं उन्हें सम्बन्धबोधक अव्यय कहते हैं। ये अव्यय प्रायः संज्ञा के बाद आते हैं, पर कभी-कभी संज्ञा से पूर्व भी प्रयुक्त होते हैं। यथा—'धन के बिना किसी का काम नहीं चलता, नौकर गाँव तक गया, मारे परिश्रम के वह व्याकुल था।' इन वाक्यों में बिना, तक, और मारे सम्बन्धबोधक अव्यय हैं। 'बिना' शब्द 'धन' संज्ञा का सम्बन्ध 'चलता' क्रिया से मिलाता है; 'तक', 'गाँव' का सम्बन्ध 'गया' से मिलता है, और 'मारे' 'परिश्रम' का सम्बन्ध 'व्याकुल था' क्रियार्थक संज्ञा के साथ जोड़ता है।

२. सम्बन्धबोधक अव्ययों के तीन भेद किये जासकते हैं:—

(क) जिनका प्रयोग नित्य विभक्तियों के साथ होता है—भीतर, समीप, पास, नज़दीक, बराबर, पीछे, पहले, आगे, परे, आदि। यथा—स्कूल के भीतर, स्कूल की ओर, स्कूल के निकट, स्कूल के विना, स्कूल के बराबर, स्कूल के आगे, स्कूल से परे।

इन अव्ययों से पहले प्रायः सम्बन्धकारक की विभक्तियाँ (का–के–की, रा–रे–री) आती हैं। कुछ अव्यय ऐसे भी हैं जिनके पहले नित्य ही अपादान की विभक्ति आती है और कुछ ऐसे हैं जिनमें सम्बन्ध-कारक तथा अपादान दोनों का प्रयोग होता है। यथा—मैं इनसे पहले गया हूँ, उनका स्कूल तुम्हारी दुकान से परे है। स्कूल से बाहर, स्कूल के बाहर, मुझ से

पीछे, घर के पीछे। तुम से पहले, उसके पहले।

(ख) कुछ अव्यय ऐसे हैं जिनसे पहले विभक्ति रहित संज्ञा ही आती है। यथा—पर्य्यन्त, सहित, समेत, तक, पर, रहित, हीन, सा, मात्र, भर, सरीखा–माह पर्य्यन्त तुम यहीं रहोगे। लक्ष्मण सरीखा भाई बड़ी कठिनता से मिलता है। दिनभर कुछ नहीं किया। स्कूल तक जाना कठिन हो गया।

(ग) कुछ अव्यय ऐसे हैं जिनके पहले विभक्ति सहित तथा विभक्ति रहित दोनों तरह की संज्ञाएँ आती हैं। यथा—द्वारा, बिना, योग्य, तले, अनुसार–राम द्वारा (राम के द्वारा) मुझे यह लाभ हुआ। सीता बिना (सीता के बिना) राम और लक्ष्मण का बन में रहना कठिन था।

३. साधारणतः सम्बन्ध-सूचक शब्दों के पीछे विभक्ति नहीं आती पर कहीं-कहीं विभक्ति लग भी जाती है। यथा—तुम्हारे सामने की बात है; होली के आसपास की खबर है।

४. कई कालवाचक और स्थानवाचक अव्यय सम्बन्धबोधक और क्रिया-विशेषण दोनों होते हैं। जब उनका प्रयोग संज्ञा या सर्वनाम के साथ होता है तब ये सम्बन्धबोधक अव्यय होते हैं और जब क्रिया की विशेषता प्रकट करते हैं, तब क्रिया-विशेषण होते हैं। यथा—

१. यह काम पहले करो (क्रिया-विशेषण)
यह काम सोने से पहले करो (सम्बन्धबोधक)

२. रमेश यहाँ आया था (क्रिया-विशेषण)
मैंने रमेश को तुम्हारे यहाँ भेज दिया (सम्बन्धबोधक)

५. नीचे लिखे अव्ययों के पहले (स्त्रीलिंग के कारण) 'की' आती है—अपेक्षा, ओर, जगह, नाईं, खातिर, तरह, तरफ़, मारफ़त, बदौलत आदि ।

(क) जब 'ओर' (तरफ़) के साथ संख्यावाचक विशेषण आता है, तब 'की' के बदले 'के' का प्रयोग होता है; यथा—'गाँव के चारों ओर (तरफ़)' ।

(ख) आकारान्त सम्बन्धबोधक अव्ययों का रूप विशेष्य के लिंग और वचन के अनुसार बदलता है और उनके पहले यथा योग्य का, के, की अथवा विकृत रूप आता है । यथा—बिजली की-सी चमक, विक्रमादित्य सरीखे राजा । भोज ऐसा राजा आदि ।

६. 'सदृश, समान, तुल्य, योग्य'—ये शब्द विशेषण हैं और सम्बन्धबोधक के समान आकर भी संज्ञा की विशेषता बतलाते हैं । यथा—मुकुट के योग्य सिर पर तृण क्यों रक्खा है, यह धोती उस धोती के तुल्य है, मेरी दशा ऐसे ही लोगों के सदृश हो रही है ।

७. 'सरीखा' इसके लिंग और वचन विशेष्य के अनुसार बदलते हैं और इसके पूर्व बहुधा विभक्ति नहीं आती । यथा—मुझ सरीखे लोग ।

'सरीखा' के समान 'जैसा', 'ऐसा' और 'सा' का रूप विशेष्य के लिंग और वचन के अनुसार बदल जाता है । इनका प्रयोग भी विशेषण और सम्बन्धबोधक, दोनों के समान होता है ।

८. 'ऐसा' इसका प्रयोग बहुधा संज्ञा के विकृत रूप के साथ होता है। यथा—
तिब्बत ऐसे एक-आद देश का, वैद्यजी पागल ऐसे हो गये हैं।

९. 'भर, तक, मात्र'—जब इनका प्रयोग सम्बन्धबोधक के समान होता है, तब ये बहुधा कालवाचक, स्थानवाचक या परिमाणवाचक शब्दों के साथ आकर उनका सम्बन्ध क्रिया से या दूसरे शब्दों से मिलाते हैं और इनके परे कारक की विभक्ति नहीं आती। यथा—यह दिनभर काम करता है, शेर जंगल तक गया, इसमें तिल मात्र झूँठ नहीं है।

'तक' के अर्थ में कभी-कभी संस्कृत का 'पर्य्यन्त' शब्द आता है; यथा–उसने कुमारी अंतरीप पर्यन्त राज्य बढ़ाया।

'भर' और 'तक' के योग से संज्ञा का विकृत रूप आता है, पर 'मात्र' के साथ उसका मूल रूप ही प्रयुक्त होता है; यथा—'गर्मीभर, नदी के तटों तक'।

'मात्र' शब्द का प्रयोग बहुधा कुछ संस्कृत शब्दों के साथ (प्रत्यय के समान) होता है; यथा–'क्षण-मात्र यहाँ ठहरो, पल-मात्र देर न करो'।

जब 'तक' और 'मात्र' का प्रयोग क्रिया-विशेषण के समान होता है, तब इनके पश्चात् बहुधा विभक्तियाँ आती हैं; यथा—'उसके राज भर में, छोटे बड़े लोगों तक के नाम आप पत्र भेजते हैं, अब शूद्रों को सेवा मात्र से काम'।

१०. 'बिना' यह कभी-कभी कृदन्त अव्यय के साथ आकर क्रिया-विशेषण होता है। यथा—'बिना अंतिम परिणाम सोचे हुए यह काम किया।'

कभी-कभी यह सम्बन्धकारक की विशेषता बताता है। यथा—आपके वियोग की खबर इस वन में विना बादल की वर्षा की भाँति अचानक आ गिरी।

इन प्रयोगों में 'विना' बहुधा सम्बन्धी शब्द के पहले आता है।

११. 'उलटा' यह शब्द यथार्थ में विशेषण है; पर कभी-कभी इसका प्रयोग 'का' विभक्ति के समान होता है; यथा—द्वीप का उलटा झील है।

१२. हिन्दी में कई एक सम्बन्धबोधक अव्यय उर्दू भाषा से और कई एक संस्कृत से आये हैं। इनमें से बहुत से शब्द हिन्दी के सम्बन्धबोधकों के पर्यायवाची हैं। तीनों भाषाओं के कई एक पर्यायवाची सम्बन्धबोधकों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

हिन्दी	उर्दू	संस्कृत
पीछे	बाद	पश्चात्, अनंतर, उपरांत,
मारे	सबब, बदौलत	कारण
पास	नज़दीक	निकट, समीप
सामने	रूबरू	समक्ष, सम्मुख
तक	ता (क्वचित्)	पर्यंत
से	बनिस्बत	अपेक्षा
नाईं	तरह	भांति
उलटा	ख़िलाफ़	विरुद्ध, विपरीत
लिये	वास्ते, ख़ातिर	निमित्त, हेतु
से	ज़रिए	द्वारा
मद्धे	बाबत, निस्बत	विषय

१३. मुख्य-मुख्य सम्बन्ध-सूचक शब्दों की सूची और उनका प्रयोग नीचे दिया जाता है:—

आगे	मोहन के आगे
पीछे	तुम्हारे पीछे
पहले	गर्मी के (से) पहले
द्वारा	राम के द्वारा
तुल्य	राजा के तुल्य
सदृश	तुम्हारे सदृश
प्रतिकूल	मेरे प्रतिकूल
विरुद्ध	मेरे विरुद्ध
मध्य	दोनों के मध्य
विषय	उसके विषय में
निमित्त	उसके निमित्त
कारण	मेरे कारण
समेत	पुस्तक समेत
समीप	उसके समीप
रहे	दो घड़ी दिन रहे
नाईं	गुरू की नाईं
तले	दीवार के तले
नीचे	वृक्ष के नीचे

१४. कुछ सम्बन्धबोधक दूसरे शब्द-भेदों से बने हैं। यथा—

(१) संज्ञा से—पलटे, वास्ते, ओर, अपेक्षा, नाम, लेखे, विषय, मारफ़त।

(२) विशेषण से–तुल्य, समान, उलटा, ज़बानी, सरीखा, योग्य, जैसा, ऐसा।

(३) क्रिया विशेषण से—ऊपर, भीतर, यहाँ, बाहर, पास, परे, पीछे ।

(४) क्रिया से—लिये, मारे, करके, जान ।

सम्बन्धबोधक अव्यय का पद-परिचय

इसमें केवल सम्बन्धबोधक अव्यय लिखकर वह शब्द बताना होता है जिससे उसका सम्बन्ध हो । जैसेः—मंदिर के पीछे ।

पीछे—सम्बन्धबोधक अव्यय, 'घर' सम्बन्धी पद ।

अभ्यास

१—नीचे लिखे वाक्यों के खाली स्थानों में उपयुक्त सम्बन्धबोधक अव्यय लिखोः—

आज मेरे······आपकी दावत है । रामचन्द्र जी के······लच्मण जी चौदह वर्ष वन में रहे । वे घर से······निकले ही थे कि पेड़ के······से एक साँप उनकी······आता दिखाई दिया ।

२—'मैं बाग़ के पास खड़ा था, वह मुझे सामने जाता दिखाई दिया ।' वाक्य में सम्बन्धबोधक अव्यय शब्दों का पदान्वय करो ।

समुच्चयबोधक (योजक) [Conjuctions]

१. दो शब्दों, वाक्यांशों या वाक्यों को मिलाने वाले अव्यय समुच्चयबोधक कहलाते हैं। यथा—और, यदि, तो, क्योंकि, इसलिये।

'राम और लक्ष्मण दोनों वन को चले', यदि सूय न हो तो कुछ भी न हो', मैं यहाँ न रहूँगा क्योंकि यहाँ चोरों का डर है, रमेश ने अपने गुरू की सेवा की इसलिये वह पास हो गया।

उपर्युक्त वाक्यों में और, यदि, क्योंकि, इसलिये समुच्चयबोधक हैं जो प्रत्येक दो-दो वाक्यों को जोड़ रहे हैं।

२. समुच्चयबोधक के तीन मुख्य भेद हैं:—

(१) संयोजक (२) विकल्प-बोधक (३) भेद-बोधक।

(१) संयोजक—इनके द्वारा दो शब्दों या वाक्यांशों का मेल प्रकट होता है। मुख्य संयोजक अव्यय ये हैं—और, तथा, एवं, भी। यथा—

मैं तथा श्याम दोनों कल मथुरा जावेंगे और वहाँ से तुम्हारे लिए एक साड़ी एवं तुम्हारे भाई के लिए एक जोड़ा साड़ी लेते आवेंगे।

(२) विकल्प-बोधक अव्यय—अनेक अर्थों में विकल्प प्रकट करने वाले होते हैं। वा, या, चाहे, अथवा, किंवा, कि, या—या चाहे—चाहे, क्या—क्या, न—न, न कि, नहीं तो आदि विकल्प-बोधक अव्यय हैं। यथा—
किसी गाँव वा शहर या देश का वर्णन करते समय वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों अथवा जनता के रहन-सहन

किंवा वहाँ की विशेषताओं का वर्णन करना आवश्यक है–नहीं तो वह वर्णन चाहे कितनी ही सुन्दर भाषा में हो, अधूरा ही कहा जायगा। अतएव या तो वह वर्णन तुम स्वयं लिखो या अपने गुरूजी से सहायता लो, और एक ऐसा लेख लिखो जिसमें तिब्बत देश के क्या प्राकृतिक दृश्य और क्या वहाँ की सभ्यता, सब का पूरा वर्णन हो। तुम यह बताओ तुम यह कर सकोगे कि मैं और किसी को दूँ। न यह स्वयं पढ़ता है और न किसी और को पढ़ने देता है।

(३) भेद-बोधक–एक बात का दूसरी बात से भेद बतलाने वाले अव्यय हैं। ये कई तरह के होते हैं:—

(क) विरोध-दर्शक–ये अव्यय दो वाक्यों में से पहले का निषेध या परिमित सूचित करते हैं। पर, परन्तु, किन्तु, मगर, वरन्, बल्कि, आदि। यथा—रमेश ग़रीब है पर है नेक। मैं वहाँ जाने को तैयार था परन्तु स्टेशन पर पहुँचते ही गाड़ी निकल गई। मैं केवल गवैया नहीं हूँ किन्तु बंगला भाषा का कवि भी हूँ। वे तो आ जायेंगे, मगर तुम भी आओ तब न। वह केवल दुष्ट ही नहीं है, वरन् उसकी दुष्टता से सब लोग दुःखी हैं। वह केवल मन लगाकर ही काम नहीं करता बल्कि काम जानता भी है।

(ख) परिणाम-दर्शक, कारणवाचक और उद्देश्यसूचक—इसलिए, सो, अतः, अतएव, क्योंकि, जोकि, इसीलिए, कि, ताकि, आदि अव्यय हैं। यथा-चाँदनी खिली है, अतः (इसलिए) आज ठंडक होगी। वह मेरी बात न मानेगा, अतएव (इसलिए) तुम ही उसके पास जाओ। क्योंकि वह कल स्कूल में ठीक समय पर नहीं आया (इसलिए) हैड-मास्टर ने उसे निकाल दिया। उसने स्वयं ही काम छोड़ दिया ताकि झगड़ा न बढ़े। हम तुम्हें ही नौकर रखते हैं ताकि हमारा काम अच्छी तरह चल सके। तुम दूसरों को मेल से रहना समझा रहे थे सो पहले तुम्हें स्वयं ही मेल से रहना चाहिये।

(ग) संकेत-बोधक—यदि-तो, जो-तो, यद्यपि, तथापि आदि एक साथ आने वाले अव्यय हैं। यथा—यदि वह पास हो गया तो नौकरी मिल जायगी। जो तुम चलना चाहते हो तो झटपट तैयार हो जाओ। यद्यपि वह बहुत-सी ख़ुशामद करेगा तथापि उसका काम बनने का नहीं है।

(घ) स्वरूपवाचक—इन अव्ययों द्वारा पहली बात का और अधिक स्पष्टीकरण होता है। अर्थात्, माने, मानों, यहाँ तक कि, आदि। यथा—आहा, वह कितना सुन्दर था मानों स्वर्ग का देवता ही आ गया हो। उनमें से कोई भी बारात में नहीं आया, यहाँ तककि स्वयं दूल्हे का मामा भी

दस बजे तक न आया।

३. कुछ अव्यय समुच्चयबोधक और क्रिया-विशेषण दोनों ही होते हैं। ऐसे अवसर पर उन अव्ययों का काम देखकर निश्चय करना चाहिये। यदि कोई अव्यय दो शब्दों या वाक्यों के जोड़ने का काम करता हो तो समुच्चयबोधक और यदि क्रिया से विशेषण रूप में सम्बन्ध रखता है तो क्रिया-विशेषण समझना चाहिये। यथा—

१–वह इसलिये परिश्रम करता है, कि पास हो जावे। (क्रिया-विशेषण)

२–क्योंकि वह परिश्रम करताहै, इसलिए पासहो जावेगा। (समुच्चयबोधक)

४. 'भी' समुच्चयबोधक और क्रिया-विशेषण दोनों में ही प्रयुक्त होता है। यथा—

१–कुछ महात्मा ही पर नहीं, गंगाजी का जल भी ऐसा ही उत्तम और मनोहर है। (समुच्चयबोधक)

२–उठो भी, तुम वहाँ जाओगे भी। (क्रिया-विशेषण)

५. क्या-क्या–ये प्रश्नवाचक सर्वनाम समुच्चयबोधक के समान उपयोग में आते हैं। यथा—

क्या स्त्री क्या पुरुष, सबही के मन में आनंद छा रहा था।

६. न–न ये दुहरे क्रिया-विशेषण समुच्चयबोधक होकर आते हैं। यथा–न उन्हें नींद, न भूख-प्यास लगती है।

७. नहीं तो–यह संयुक्त क्रिया-विशेषण है और समुच्चयबोधक के समान उपयोग में आता है।

यथा—उसने मुँह पर पर्दा-सा डाल लिया है; नहीं तो उसकी आँखें कब उस पर ठहर सकती थीं।

८. सो निश्चयवाचक सर्वनाम 'इसलिये' के अर्थ में आता है परन्तु कभी-कभी इसका अर्थ 'तब या परन्तु' भी होता है। यथा—रावण ने जटायु के पंख काट उसके प्राण लिये थे, सो वह असुर था।

९. 'जो' (कदाचित्) के अर्थ में क्रिया-विशेषण और कभी-कभी 'जो' के साथ ('तो' के बदले) 'सो' समुच्चयबोधक आता है। यथा—

१—कदाचित् कोई कुछ पूछे तो मेरा नाम बता देना। (क्रिया-बिशेषण)

२—जो आपने घी के बारे में लिखा, सो अभी उसका मिलना कठिन है। (समुच्चयबोधक)

१०. 'चाहे' बहुधा सम्बन्धवाचक सर्वनाम विशेषण या क्रिया-विशेषण के साथ आकर उनकी विशेषता बतलाता है और प्रयोग के अनुसार बहुधा क्रिया-विशेषण होता है। यथा—

१. यहाँ चाहे जो कह लो, परन्तु बाहर तुम्हारा रौब नहीं जम सकता।

२. मेरे राज्य में चाहे जितनी सेना हो, मुझे दोही बातें संसार में प्यारी होंगी।

३. मनुष्य वैज्ञानिक ज्ञान में चाहे जितना दक्ष हो जाय, परन्तु संसार में सब को उसके ज्ञान से विशेष लाभ नहीं हो सकता।

समुच्चयबोधक (योजक) का पदान्वय

समुच्चयबोधक के पदान्वय में केवल उनके प्रकार का वर्णन कर उन शब्दों, वाक्यांशों या वाक्य-खंडों का निर्देश करना होता है जिनको वे मिलाते हैं।

वाक्य—१. यदि वह आ गया तो काम बन जायगा।
२. आज वर्षा हुई है, अतः कीचड़ होगी।
३. मैं और राधे कल बम्बई जायेंगे।

यदि-तो—योजक, संकेत-बोधक, 'वह आगया' और 'काम बन जायगा' को मिलाते हैं।

अतः—योजक, कारण-सूचक, 'वर्षा हुई है' और 'कीचड़ होगी' को मिलाता है।

और—योजक, संयोजक, 'मैं' तथा 'राधे' को मिलाता है।

अभ्यास

१—निम्नलिखित योजकों का अपने वाक्यों में प्रयोग करो—या, ताकि, इसलिए, क्योंकि, अर्थात् न—न, मानो।

२—रिक्त स्थानों में योजक लिखोः—
जान गई.......अभिमान न गया। भाग जाओ ..... पकड़े जाओगे, सत्य यह है...प्रभू किसी को ग़रीबी न दे। चोरी की.......पकड़ गया। वह वहाँ चला जाता ...... वह आपत्ति न आती।

३—(क) 'मैं तथा राम दिल्ली जायेंगे और वहाँ से तुम्हारे लिए एक जोड़ा धोती एवं तुम्हारी भाभी के लिए एक जोड़ा साड़ी लेते आयेंगे।'
(ख) 'वह केवल इस काम को जानता ही नहीं बल्कि हाथ से कर भी सकता है।'
(ग) 'चाहे वह कितनी ही मेहनत करे पर वह परीक्षा में सफल न होगा।'
उपर्युक्त वाक्यों में योजक शब्दों का पदान्वय करो।

विस्मयादि-बोधक (द्योतक) [·Interjections.]

१. जिन अव्ययों का सम्बन्ध वाक्य से नहीं रहता और जो वक्ता के केवल हर्ष-शोकादि भाव सूचित करते हैं, उन्हें विस्मयादि-बोधक अव्यय कहते हैं। यथा—'हाय ! अब मैं क्या करूँ !' 'हैं ! यह क्या कहते हो !' इन वाक्यों में 'हाय' 'दुःख' और 'हैं' आश्चर्य तथा क्रोध सूचित करते हैं, और जिन वाक्यों में ये शब्द हैं, उनसे इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

२. विस्मयादि-बोधक का चिह्न ! यह है जो शब्द या वाक्य के अन्त में लगाया जाता है। समूचा वाक्य और वाक्यांश भी कभी-कभी विस्मयादि-बोधक बन जाते हैं। यथा—

मर गया रे ! क्या है ! धन्य महाराज ! क्या बात है !

इन वाक्यों और वाक्यांशों से मनोविकार अवश्य सूचित होते हैं, परन्तु इन्हें विस्मयादि-बोधक मानना ठीक नहीं है।

३. निम्नलिखित शब्द-भेद भी विस्मयादि-बोधक हो सकते हैं:-

(क) संज्ञा से–राम राम ! बाप रे ! हरे हरे ! भगवान् !
(ख) सर्वनाम से–कौन ! क्या !
(ग) विशेषण से–अच्छा ! भला !
(घ) क्रिया से–देख ! लो ! हट ! चलिये !
(ङ) क्रिया-विशेषण से–क्यों ! वहीं ! खैर ! अस्तु !

४. भिन्न-भिन्न मनोविकारों को सूचित करने के लिए भिन्न-भिन्न अव्यय प्रयोग में लाये जाते हैं। यथा—

(क) हर्ष-बोधक–अहा ! वाह वा ! धन्य धन्य ! शाबाश ! इत्यादि।

(ख) शोक-बोधक—आह ! वाह ! ऊह ! हा हा ! बाप रे ! राम ! हा ईश्वर ! त्राहि ! त्राहि !

(ग) आश्चर्य-बोधक—अहो ! हैं ! एं ! ओ हो ! क्या ! आदि।

(घ) स्वीकृति-बोधक—ठीक ! अच्छा ! हाँ ! जी हाँ !

(ङ) तिरस्कार-बोधक—छिः ! हट ! अरे ! दुर ! धिक् ! चुप !

(च) सम्बोदन-बोधक—अरे रे ! अरी रे अजी ! ओ !

(छ) अनुमोधन-बोधक—ठीक ! वाह ! अच्छा ! शावाश ! हाँ हाँ ! आदि।

विस्मयादि-बोधक अव्यय का पदान्वय

वाक्य—धन्य ! महाराज धन्य ! तुम्हारी माया तुम्हीं जानो।

धन्य—विस्मयादि-बोधक अव्यय, 'प्रशंसा' सूचित करता है।

अभ्यास

१—तीन ऐसे वाक्य बनाओ जिन से हर्ष, घृणा और आश्चर्य के भाव प्रकट हों।

२—हाय ! धिक् ! ओ हो और धन्य ! को अपने वाक्यों में प्रयोग करो।

अविकारी शब्दों की निरुक्ति

अविकारी शब्दों का पदान्वय करने में भेद (क्रिया-विशेषण, सम्बन्ध-बोधक आदि) और सम्बन्ध बताने की आवश्यकता होती है।

उदाहरण—वाह वाह ! महाराज अहा ! तुम्हारे सामने कौन ठहर सकता है !

आज आपकी समता करनेवाला कोई नहीं है। आप कहें या न कहें परन्तु इसे सब लोग अवश्य कहेंगे।

वाह वाह—विस्मयादि-बोधक अव्यय, 'प्रशंसा' सूचित करता है।

अहा—हर्ष-बोधक विस्मयादि-बोधक अव्यय, 'प्रशंसा' सूचित करता है।

सामने—सम्बन्ध-बोधक अव्यय, इसका सम्बन्ध 'ठहर सकता है' क्रिया से है।

आज—कालवाचक क्रिया-विशेषण अव्यय, क्रिया के होने का समय बतलाता है।

या—विभाजक, 'कहें' और 'न कहें' को जोड़ता है।

परन्तु—संयोजक अव्यय, 'आप कहें या न कहें' और 'इसे.... ....कहेंगे' उप-वाक्यों को मिलाता है।

अवश्य—निश्चयवाचक क्रिया-विशेषण अव्यय, 'कहेंगे' क्रिया के होने का निश्चय बतलाता है।

समास (Compounds)

दो या दो से अधिक शब्द मिलकर जब कोई स्वतंत्र शब्द बनाते हैं तो उस मेल को समास कहते हैं और इस प्रकार मिले हुए शब्द समस्त या सामासिक शब्द कहलाते हैं। समस्त

शब्दों के बीच में विभक्ति प्रत्ययों का और सम्बन्ध बतानेवाले शब्दों का लोप हो जाता है। जसे—हिन्दी की रचना = हिन्दी-रचना, माता और पिता = माता-पिता। जब समस्त शब्दों को उनका समास भङ्ग कर पूर्व रूप में लाना होता है तो उस रीति को 'विग्रह' कहते हैं। जैसे—'माता-पिता' का विग्रह 'माता और पिता' हुआ। समास होने पर किन्ही शब्दों में विकार भी आजाता है। जैसे—घोड़े का सवार=घुड़सवार।

नोट—समास के योग में सन्धि के नियमों का प्रयोग भी प्रचलित होता है।

समास के भेद

समास में कहीं तो पहला खण्ड प्रधान होता है कहीं दूसरा कहीं दोनों और कहीं दोनों में से कोई नहीं होता। इस प्रकार समासों के चार भेद हैं। जिसमें पहला खण्ड प्रधान होता है उसे तत्पुरुष समास कहते हैं। जिसमें दोनों खण्ड प्रधान हों उसे द्वन्द्व समास और जिसमें कोई भी खण्ड प्रधान न हो वह बहुव्रीहि समास होता है। तत्पुरुष का उपभेद कर्मधारय और कर्मधारय का उपभेद द्विगु है, किन्तु कई वैयाकरण इन्हें भी स्वतन्त्र समास मानते हैं। अतः समास के छः भेद हैं। अव्ययीभाव, तत्पुरुष, कर्मधारय, द्विगु, द्वन्द्व, और बहुव्रीहि।

अव्ययी भाव समास (Adverbial Compound)

अव्ययीभाव वह समास है जिसमें अव्यय के साथ कोई शब्द मिलकर क्रिया-विशेषण बन जाता है और जिसका प्रथम खण्ड प्रधान होता है। जैसे—यथाशक्ति, अव्ययीभाव का अर्थ है अव्यय हो जाना। यही कारण है कि हिन्दी वैयाकरणों

ने हाथों हाथ, रोज-रोज, इत्यादि शब्दों में भी अव्ययीभाव समास माना है, यद्यपि इनमें संज्ञाओं की ही द्विरुक्ति हुई है। द्विरुक्ति में मात्राओं और 'ही' का आगम भी कभी-कभी होता है। जैसे—हाथों हाथ, मन ही मन।

तत्पुरुष (Determinative Compound)

तत्पुरुष वह समास है जिसमें पूर्वखण्ड और द्वितीय खण्ड के कारक भिन्न हों तथा द्वितीयखण्ड प्रधान हो। जसे—राज-समाज अर्थात् राजा की समाज। समानाधिकरण तत्पुरुष वह है जिसमें समस्त पद के विग्रह करने पर दोनों खण्डों में से एक कर्त्ताकारक की विभक्ति में होता है। जैसे—चन्द्रमुख (चन्द्र-सा मुख) इन दोनों पदों में एक ही विभक्ति है।

जिसके पूर्व पद में कोई विभक्ति न हो उस तत्पुरुष को व्याधिकरण तत्पुरुष कहते हैं। व्याधिकरण तत्पुरुष को ही साधारणतया तत्पुरुष तथा समानाधिकरण तत्पुरुष को कर्म-धारय समास कहते हैं।

व्याधिकरण तत्पुरुष

इस समास के पूर्व पद में कारक की जिस विभक्ति का लोप होता है उसी के अनुसार इस समास का नाम होता है। यथा—

कर्म तत्पुरुष—परलोक-प्राप्त (परलोक को पहुँचा हुआ); शरणागत (शरण में आया हुआ)।

करण तत्पुरुष—मनुस्मृति (मनु द्वारा बनाई हुई); व्यास-कृत (व्यास द्वारा बना हुआ); जी चाहा (दिल से चाहता हुआ)।

सम्प्रदान तत्पुरुष–मार्ग-व्यय (मार्ग के लिये व्यय); यज्ञशाला (यज्ञ के लिये शाला)।

अपादान तत्पुरुष–जाति-भ्रष्ट (जाति से गिरा हुआ); जन्मान्ध (जन्म से अन्धा)।

सम्बन्ध तत्पुरुष–समाज-सुधार (समाज का सुधार); हिमालय (हिम का स्थान); रनवास (रानी का वास)।

अधिकरण तत्पुरुष–जगबीती (दुनिया पर बीती हुई); स्वर्ग-वास (स्वर्ग का वास)।

अलुक तत्पुरुष–वह समास है जिसमें पहले पद की विभक्तियों का लोप नहीं होता। जैसे—कुम्भज (कुम्भ में पैदा होनेवाला); सरसिज (सर में पैदा होने-वाला); जलचर (जल में विचरण करनेवाला); रण-विज्ञ (रण में निपुण)।

नञ् तत्पुरुष–वह तत्पुरुष समास है जिसका प्रथम पद अभाव या निषेध का वाचक हो। इसमें प्रायः अ या अन लगता है। जैसे—अज्ञान, अशिक्षित, असत्य, (न सत्य), अनपढ़ (न पढ़ा हुआ)।

उपपद तत्पुरुष–वह समास है जिसका दूसरा पद ऐसा कृदन्त हो जो स्वयं उपभोग न हो सके। जैसे–कृतज्ञ (किये को जाननेवाला)।

कर्मधारय या समानाधिकरण तत्पुरुष (Oppositional Compound)

कर्मधारय–वह समास है जिसमें विशेषण विशेष्य या उपमान उपमेय का मेल हो और विग्रह करने पर दोनों पदों में

एक कर्त्ताकारक ही की विभक्ति रहे। जैसे—नीलकण्ठ (नीला कण्ठ), रक्तपारावार, विद्रोहाग्नि, आशालता आदि।

कर्मधारय समास के पहले शब्द का दूसरे से सम्बन्ध प्रकट करनेवाले बीच के विशेषण चिह्न लुप्त होजाते हैं। उसे मध्यम पद लोपी समास कहते हैं। जैसे—घी-गुड़ (घी में मिला हुआ गुड़); दही बड़ा (दही में डूबा हुआ बड़ा)।

द्विगु (Numeral Compound)

जिस कर्मधारय समास का पहला पद संख्यावाचक विशेषण होता है और जिससे किसी समुदाय का बोध होता है उसे द्विगु समास कहते हैं।

द्विगु को संख्यावाचक कर्मधारय समास इसीलिये कहा जाता है क्योंकि प्रथम पद संख्यावाचक होने के अतिरिक्त यह शेष अवस्थायें कर्मधारय की ही प्रकट करता है। जैसे—त्रिभुवन, (तीनों भुवनों का समूह) ऐसे ही बारहमासी, दुसेरी आदि।

द्वन्द्व (Copulative Compound)

द्वन्द्व—वह समास है जिसके सर्वखण्ड प्रधान होते हैं और जिसमें विग्रह करने पर 'और', 'अथवा' या 'एवं' लगता है। जैसे—जयाजय (जय और अजय); हानि-लाभ (हानि अथवा लाभ)।

स्त्रीलिंग और अल्प स्वरवाले शब्द इस समास के पहले पद में प्रयोग होते हैं। जैसे—राधेश्याम, फल-फूल, धन-धान्य।

इस समास का लिंग प्रायः अन्तिम पद के अनुसार होता है। जैसे—राजा रानी आये। सौदा सुलफ नहीं आइ। बूरा पूरी दी गई। द्वन्द्व में एक से अधिक शब्द मिले हैं, अतः इसका वचन बहुवचन होना चाहिये। पर हिन्दी भाषा में विशेषतया एकवचन ही रहता है केवल थोड़े से स्थानों पर बहुवचन हो जाता है। जैसे—दाल चावल खाया। भाई बहन आये। साधारण अर्थ में अन्तिम पद में पीछे विभक्ति होने पर भी बहुवचन का 'ओं' चिह्न नहीं लगता, किन्तु जब समस्त पद बहु विभक्तियों या वस्तुओं के लिये प्रयोग होते हैं तब विभक्ति के पीछे बहुवचन के चिह्न 'ओं' 'ए' आदि आते हैं। जैसे—धनीमानियों ने, सेठ साहूकारों से, आपके बाल बच्चे कितने हैं!

बहुव्रीहि (Attributive Compound)

जिस समास में कोई भी पद प्रधान नहीं होता बल्कि समस्त शब्द अपने पदों से भिन्न अपने निजी अर्थ को छोड़कर और ही कोई सांकेतिक अर्थ का प्रकाश करते हैं वह समास बहुव्रीहि कहलाता है। जैसे—दशकन्धर = दश हैं कन्धर (गरदन, सिर) जिसके; यह रावण का विशेषण है। अनन्त = नहीं है अन्त जिसका; यह ईश्वर का विशेषण है। हिन्दी में इस समास के विग्रह में 'वाला' का प्रयोग होता है। जैसे—दोरंगा=दो रंगों-वाला। अलोन=नहीं है लोन जिसमें, न लोनवाला।

कर्मधारय और बहुव्रीहि समास में यह अन्तर है कि कर्मधारय में समस्त पद का पहला खण्ड दूसरे खण्ड का विशेषण होता है पर बहुव्रीहि समास में समस्त पद अपने पदों से भिन्न किसी अन्य पद का विशेषण होता है। कई समस्त शब्द अर्थ-भेद से अनेक समासों से सम्बन्ध रखते हैं। जैसे—मृगलोचन=

मृग के लोचन (सम्बन्ध तत्पुरुष); मृग लोचन=मृग के समान लोचनों वाला (बहुव्रीहि)।

अभ्यास

१—समास और विग्रह किसे कहते हैं ?

२—तत्पुरुष और कर्मधारय में तथा कर्मधारय और द्विगु में क्या भेद है ?

३—तत्पुरुष समास कितने प्रकार के होते हैं ?

४—नीचे लिखे शब्दों के विग्रह करके समास बताओः—

राजपुरुष, दशानन, सच-झूठ, त्रिलोकी, नर-नारी, प्रेम-मार्ग, नवग्रह, अन्तःपुर, घनश्याम, निर्धन, अपुत्र, मार्ग-व्यय, सेठ-साहूकार, महारानी, नरेश, परमात्मा।

चौथा अध्याय

वाक्य-विचार तथा वाक्य-रचना

वाक्य

जिस शब्द-समूह से पूरा-पूरा अर्थ व्यक्त होता है, उसे वाक्य कहते हैं। वाक्य में पूरा अर्थ होने के लिये कोई नाम ऐसा होना चाहिये जिसके बारे में कोई बात कही जाय, और फिर वह बात होनी चाहिये जो उसके बारे में कही जाती है। इस प्रकार हर वाक्य में चाहे वह छोटा हो चाहे बड़ा, इन दोनों बातों का होना परमावश्यक है। इस विचार से वाक्य के दो अङ्ग होते हैं—(१) उद्देश्य और (२) विधेय।

(१) उद्देश्य—जिस वस्तु के सम्बन्ध में वाक्य में विधान किया जाता है उसे सम्बोधन करनेवाले शब्द को उद्देश्य कहते हैं।

(२) विधेय—उद्देश्य के सम्बन्ध में विधान करनेवाले शब्दों को विधेय कहते हैं।

जैसे—'लड़का दौड़ा'—यह पूरा वाक्य है; इसमें 'लड़का' उद्देश्य है, और 'दौड़ा' विधेय है। इसी प्रकार 'सोहन ने मारा'—में 'सोहन ने' उद्देश्य है और 'मारा' विधेय है, परन्तु इससे पूरा अर्थ नहीं निकलता। सुननेवाला तुरन्त पूछेगा कि 'सोहन ने क्या मारा?' चूँकि 'मारना' सकर्मक क्रिया है, इसलिए लड़का, राजा, तथा किसी व्यक्ति का नाम आदि में से कोई शब्द 'कर्म' की भाँति जोड़ना पड़ेगा।

इससे यह बात भली-भाँति ज्ञात हो जाती है कि प्रत्येक वाक्य में उद्देश्य और विधेय होते हैं, चाहे उस वाक्य में केवल दो ही शब्द हों ; जैसे—सोहन आया। इसमें 'सोहन' 'आया' क्रिया का कर्त्ता है, और उद्देश्य है ; और 'आया' मुख्य क्रिया है और इसलिए विधेय है। मुख्य क्रिया को समापिका क्रिया भी कहते हैं। कर्त्ता से सम्बन्ध रखनेवाले शब्द या शब्दांश उद्देश्य या विधेय में जोड़ कर उद्देश्य या विधेय बढ़ाये जा सकते हैं। इन्हें क्रम से उद्देश्य तथा विधेय का विस्तार कहते हैं। जैसे--'आगरा कालिज में पढ़नेवाला रामपाल परसों सन्ध्या को रात की गाड़ी से लखनऊ गया।' इस वाक्य में 'आगरा कालिज में पढ़नेवाला' उद्देश्य और 'रामपाल परसों सन्ध्या को रात की गाड़ी से लखनऊ 'गया' विधेय का विस्तार है।

इस प्रकार उद्देश्य के दो भाग होते हैं—(१) मुख्य उद्देश्य, और (२) उद्देश्य का विस्तार।

इसी तरह विधेय के तीन भाग होते हैं-(१) विधेय या समापिका क्रिया, (२) कर्म और (३) पूरक।

रचना के अनुसार वाक्य के भेद

रचना के अनुसार वाक्य तीन प्रकार के होते हैं। (१) साधारण (२) मिश्र (मिश्रित) (३) संयुक्त (संसृष्ट)।

(१) साधारण–जिस वाक्य में एक उद्देश्य तथा एक ही मुख्य क्रिया होती है, उसे साधारण वाक्य कहते हैं। जैसे—हवा चलती है।

(२) मिश्र (मिश्रित)–वाक्य उसे कहते हैं जिसमें एक स्वतन्त्र उपवाक्य और एक या एक से अधिक आश्रित उपवाक्य होते हैं। जैसे–मेरा विचार है कि आज मैं चला जाऊँ।

इसमें 'मेरा विचार है' साधारण वाक्य है, और 'कि आज मैं चला जाऊँ' साधारण वाक्य का आश्रित उपवाक्य है। मिश्रित वाक्य में साधारण वाक्य को मुख्य उपवाक्य कहते हैं।

(३) संयुक्त वाक्य—यदि वाक्य में दो या दो से अधिक प्रधान उपवाक्य हों (चाहे उनके आश्रित उपवाक्य हों या न हों) तो ऐसे वाक्य को संयुक्त वाक्य कहते हैं। जैसे—राम खाता रहा पर सोहन उठ कर चला गया।

संयुक्त वाक्यों का सम्बन्ध

इस प्रकार के वाक्यों में सम्बन्ध पाँच प्रकार से ज्ञात होता है—

१—संयोजक—ब्रह्मचर्य से बल बढ़ता है, मस्तिष्क दृढ़ होता है और तेजस्विता आती है।

२—विभाजक-ललित यहाँ आवेगा या मैं ही वहाँ चला जाऊँगा।

३—विरोधदर्शक—मैं साहसी हूँ, परन्तु स्त्रियों पर हाथ उठाने का साहस नहीं कर सकता।

४—परिणामबोधक—मुझे वहाँ जाना था, अतः गाड़ी पर चढ़ कर चला गया।

५—कारणबोधक—अन्दर जाना असम्भव है क्योंकि दर्वाजा बन्द है।

वाक्य-विग्रह

जिस रीति से वाक्य के उद्देश्य, विधेय और उनके प्रत्येक अवयव को अर्थ और प्रयोग के अनुसार अलग-अलग कर दिखाते हैं उस रीति को वाक्य-विग्रह कहते हैं।

वाक्य विच्छेद, वाक्य-विश्लेषण, वाक्य-पृथक्करण, वाक्य-विन्यास वा वाक्य-विभाजन भी वाक्य-विग्रह के दूसरे नाम हैं।

मिश्रित वाक्य वा संयुक्त वाक्यों के अन्तर्गत जो वाक्य होते हैं, जिनकी अलग-अलग समापिका क्रियाएँ होती हैं, उन्हें उपवाक्य कहते हैं। उपवाक्य दो प्रकार के होते हैं :—

स्वतन्त्र और आश्रित

(१) स्वतन्त्र-उपवाक्य उसे कहते हैं जो बिना दूसरे उपवाक्य की सहायता के अपने अर्थों को स्वतन्त्र रूप से प्रकट कर सके; जैसे—"सोहन हँसता है" और "मोहन रोता है।" ये दोनों वाक्य एक दूसरे से सर्वथा स्वतन्त्र हैं। प्रत्येक अपने पूरे अर्थों का स्वतन्त्र रीति से ज्ञान कराता है।

(२) आश्रित-उपवाक्य उसे कहते हैं जो किसी अन्य उपवाक्य के अधीन होता है। वह बिना उसकी सहायता के स्वतंत्र रीति से अर्थ नहीं दे सकता; जैसे-"सोहन, जिसने मुझे मरने से बचाया था, आज संसार से चला गया" इसमें दो उपवाक्य हैं—

(१) सोहन आज संसार से चला गया।
(२) जिसने मुझे मरने से बचाया था।

इसमें प्रथम उपवाक्य का अर्थ दूसरे उपवाक्य को बिना साथ लिए पूरा-पूरा निकलता है। किन्तु दूसरा उपवाक्य पहले उपवाक्य के सहारे है और स्वतन्त्र रीति से अर्थ नहीं दे सकता।

आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं :—

(१)संज्ञा उपवाक्य।

(२) विशेषण-उपवाक्य।

(३) क्रिया-विशेषण-उपवाक्य।

(१) संज्ञा उपवाक्य–संज्ञा का कार्य करता है, जैसे—"उसने कहा था कि वह विद्वान् है। इसमें 'वह विद्वान् है' संज्ञा उपवाक्य है और 'कहा था' क्रिया का कर्म है।

(२) विशेषण-उपवाक्य–विशेषण का कार्य करता है, जैसे–'मैंने वह घर देखा है जिसमें कि पंडितजी रहते हैं।' यहाँ 'जिसमें पंडितजी रहते हैं' विशेषण-उपवाक्य है जो प्रथम उपवाक्य में 'घर देखा है' की प्रशंसा करता है।

(३) क्रिया-विशेषण उपवाक्य–क्रिया के समय, स्थान, कारण, ढंग आदि की व्याख्या करता है; जैसे–'जब गङ्गा में बाढ़ आई तभी तीर्थस्थान सोरों में अनेक पण्डाओं के मकान गिर गये थे'। इसमें 'जब गङ्गा में बाढ़ आई' क्रिया-विशेषण-उपवाक्य है जो गिरने के समय का निर्देश करता है।

साधारण वाक्य का वाक्य-विग्रह

साधारण वाक्य का वाक्य-विग्रह आगे दी हुई रीति पर कोष्टक बनाकर किया जाता है—

वाक्य	उद्देश्य		विधेय				
				कर्म			
साधारण-वाक्य	मुख्य उद्देश्य	उद्देश्य का विस्तार	समापिका क्रिया	मुख्य कर्म	कर्म का विशेषण	विधेय पूरक	विधेय का विस्तार
(क) मोहन के छोटे भाई ने बड़े परिश्रम के बाद यह अपूर्व पारितोषिक पाया है	भाई ने	१—मोहन के २—छोटे	पाया है	पारितोषिक	१—यह २—अपूर्व	...	बड़े परिश्रम के बाद
(ख) भारतवासी बहुत दिनों से अपना दुःख सुनाते चले आते हैं।	भारतवासी	...	चले आते हैं	...	...	...	बहुत दिनों से अपना दुःख सुनाते
(ग) वह मनुष्य धनी हो गया।	मनुष्य	वह	हो गया	...	...	धनी	...
(घ) तुम निपट गँवार हो।	तुम	...	हो	...	...	निपट गवार	...

मिश्रित व संयुक्त वाक्यों का वाक्य-विग्रह

इसी प्रकार कोष्टक बना कर मिश्रित और संयुक्त वाक्यों का वाक्य-विग्रह किया जा सकता है। किन्तु ऐसी दशा में तीन कोष्टक उद्देश्य के पूर्व और बनाने चाहिए—(१) उपवाक्य, (२) भेद, (३) संयोजक।

उपवाक्य के कोष्टक में उपवाक्य अलग-अलग लिखे जाते हैं। भेद के कोष्टक में यह लिखा जाता है कि उपवाक्य स्वतंत्र है या आश्रित, संज्ञा है, विशेषण है या क्रिया-विशेषण है। संयोजक के कोष्टक में उपवाक्यों को जोड़नेवाले शब्द—और, कि, जो, किन्तु आदि लिखे जाते हैं।

मिश्रित वाक्यों और संयुक्त वाक्यों के वाक्य-विग्रह की दूसरी संक्षिप्त रीति यह है कि उसमें उपवाक्यों को अलग-अलग करके उनका परस्पर सम्बन्ध बता दिया जाता है। इसे संक्षिप्त वाक्य-विग्रह कहते हैं।

जैसे—(१) अपने भाई को भेज दीजिये और यह कह दीजिये कि वह कई दिन तक यहाँ ठहरें। इस वाक्य का संक्षिप्त वाक्य-विग्रह इस प्रकार होगा—

(क) अपने भाई को भेज दीजिये (मुख्य उपवाक्य)

(ख) और यह कह दीजिये (मुख्य उपवाक्य समानाधिकरण) (क) का।

(ग) कि कई दिन यहाँ ठहरें। (संज्ञा उपवाक्य) (ख) का

उपर्युक्त पूरा वाक्य संयुक्त है।

कोष्टक से वाक्य-विग्रह

संयुक्त वाक्य

अपने भाई को भेज दीजिये और यह कह दीजिये कि वह कई दिन यहाँ ठहरें।

संयुक्त-वाक्य

संख्या	वाक्य	वाक्य भेद	उद्देश्य		विधेय				
			कर्त्ता	कर्त्ता का विस्तार	क्रिया	कर्म या कर्म का विस्तार	पूरक	संयोजक या विभाजक	क्रिया का विस्तार
(१)	अपने भाई को भेज दीजिये	मुख्य उपवाक्य	(आप)	...	भेज दीजिये	अपने भाई को	...	...	...
(२)	और यह कह दीजिये	मुख्य उपवाक्य नं० १ का	(आप)	...	कह दीजिये	यह	...	और	...
(३)	कि वह कई दिन यहाँ ठहरें	संज्ञा उपवाक्य नं० २ का	वह	...	ठहरें		...	कि	(१) कई दिन (२) यहाँ

कोष्टक से मिश्रित और संयुक्त वाक्यों का संक्षिप्त विग्रह

उदाहरणः—१—मुझे आश्चर्य है कि यह लड़का जिसने साल भर खेला, कैसे पास हो गया।

२—'राम कहा रिस तजहु मुनीसा।'

संख्या	उपवाक्य	भेद	सम्बन्ध
१-(क)	मुझे आश्चर्य है	प्रधान उपवाक्य	
(ख)	कि यह लड़का कैसे पास हो गया।	'क' का आश्रित संज्ञा वाक्य	'आश्चर्य है' का पूरक
(ग)	जिसने साल भर खेला	'ख' का आश्रित विशेषण उपवाक्य	'लड़का' शब्द का विस्तार विशेषण रूप से
२-(अ)	राम ने कहा	प्रधान उपवाक्य	कहा क्रिया का कर्म
(ब)	मुनीसा, रिसतजहु	संज्ञा उपवाक्य 'अ' काआश्रित	

(क) वह नहीं बताता कि यह किसने किया। (ख) लक्ष्मी का स्मरण चंचलता उत्पन्न करता है पर भगवान् का स्मरण शान्तिप्रद होता है।

(क) मिश्र वाक्य

संख्या	उपवाक्य	उपवाक्य भेद	भेद वाक्य सम्बन्ध	संयोजक शब्द	उद्देश्य		विधेय			
					कर्त्ता	कर्त्ता का विस्तार	क्रिया	कर्म सविस्तार	पूरक सविस्तार	विधेय का विस्तार
(अ)	वह नहीं बताता	प्रधान उपवाक्य	'बताता' क्रिया का	...	वह	...	बताता	...	...	नहीं
(ब)	कि यह किसने किया	(अ) का आश्रित संज्ञा उपवाक्य	कर्म	कि	किसने	...	किया	यह	...	

(ख) संयुक्त वाक्य

संख्या	उपवाक्य	उपवाक्य भेद	भेद वाक्य सम्बन्ध	संयोजक शब्द	उद्देश्य		विधेय			
					कर्त्ता	कर्त्ता या विस्तार	क्रिया	कर्म सविस्तार	पूरक सविस्तार	विधेयका विस्तार
(अ)	लक्ष्मी का स्मरण चंचलता उत्पन्न करता है	प्रधान उपवाक्य	...	...	स्मरण	लक्ष्मी का	उत्पन्न करता है	चंचलता		...
(ब)	पर भगवान् का स्मरण शान्तिप्रद होता है	प्रधान उपवाक्य	अनाश्रय विरोध दर्शक	पर	स्मरण	भगवान का	होता है	...	शान्तिप्रद	...

विग्रह सम्बन्धी विशेष बातें

(१) वाक्य के लुप्त कर्त्ता को प्रकट कर देना चाहिए ।
उदाहरण—कहाँ जाओगे ? = तुम कहाँ जाओगे ?

(२) सम्बोधनकारक की संज्ञाएँ तथा विस्मयादिबोधक अव्यय विश्लेषण करते समय छोड़ दिये जाते हैं ।

(३) वाक्य-गत प्रक्षिप्त वाक्य-विग्रह में स्थान नहीं पाते । जैसे—
कल रात भर—क्या कहूँ—मैं सोता ही रह गया । क्या कहूँ (मैं क्या कहूँ) यह प्रक्षिप्त वाक्य है ।

(४) कभी-कभी दो या दो से अधिक उद्देश्यों का एक ही विधेय होता है । यथा—(१) दाल-भात बंगालियों का भोजन है । (२) राजा-रानी, अमीर-ग़रीब, सभी इसको चाहते हैं ।

(५) एक उद्देश्य के बहुधा कई विधेय भी होते हैं । ऐसी अवस्था में जितने विधेय होंगे उतने ही उपवाक्य होंगे । यथा-
मोहन जाड़े और गर्मी में काम करता है और वर्षा में विश्राम करता है ।
विश्लिष्ट होने पर उपवाक्यों का रूप इस प्रकार होगा—
(१) मोहन जाड़े और गर्मी में काम करता है ।
(२) मोहन वर्षा में विश्राम करता है ।

(६) कभी-कभी वाक्य में आश्रित-वाक्य तथा समानाधिकरण उपवाक्य दोनों परस्पर मिले हुए होते हैं । उदाहरण—जब बहेलिये ने देखा कि दमयन्ती उसका कहना नहीं मानती, वह उस पर क्रुद्ध हुआ और (उसने) दमयन्ती को मारने के लिए बाण चलाया ।

इस वाक्य में 'वह उस पर क्रुद्ध हुआ' और (उसने) दमयन्ती को मारने के लिए बाण चलाया, दोनों उपवाक्य परस्पर

समानाधिकरण हैं। ऐसी दशा में यदि मुख्य क्रिया-द्वारा मुख्य उपवाक्य और आश्रित उपवाक्य दोनों मिले हुए हों, तो वाक्य मिश्रवाक्य कहा जाता है; और यदि मुख्य क्रिया समानाधिकरण वाक्यों को मिलाती है, तो समूचा वाक्य संयुक्त वाक्य होगा।

(७) समानाधिकरण उपवाक्य-समानाधिकरण समुच्चयबोधक द्वारा मिले हुए होते हैं। कुछ समानाधिकरण समुच्चय-बोधक—और, तथा, भी, अथवा, या, या-या, क्या-क्या, नहीं तो, न कि, परन्तु, मगर, इसलिए, अतएव, सो।

(८) मुख्य उपवाक्य आश्रित उपवाक्यों से व्यधिकरण समुच्चय-बोधकों द्वारा जोड़े जाते हैं।
कुछ व्यधिकरण समुच्चयबोधक–कि, ताकि, तोभी, जो-तो, चाहे, परन्तु, मानो, अर्थात्, यद्यपि, तथापि, इसलिए कि, क्योंकि।

(९) साधारण वाक्य का विग्रह करने के लिये 'कर्त्ता', कर्त्ता का विस्तार, क्रिया, कर्म, कर्म का विस्तार, पूरक, पूरक का विस्तार, क्रिया का विस्तार, के अलग-अलग कोष्टक बना लेने चाहिए। और फिर वाक्य में से प्रत्येक शब्द को छाँट कर लिख देना चाहिए।

(१०) मिश्रित वाक्य तथा संयुक्त वाक्य के विग्रह को वाक्य के टुकड़े करके बताई रीत्यनुसार कर लेना चाहिए। संयुक्त को यौगिक या संसृष्ट और मिश्र को जटिल या संकीर्ण वाक्य भी कहते हैं।

वाक्यांश

किसी वाक्य के दो या दो से अधिक शब्द, जो परस्पर सम्बन्ध रखते हैं, और जिनसे पूरा भाव व्यक्त न होकर केवल

भाव का अंश जाना जाता है, वाक्यांश कहलाते हैं। जैसे—राम और सीता विकट वन को चल दिये। इसमें 'राम और सीता' तथा 'विकट वन' आदि वाक्यांश हैं।

वाक्य-संग्रह

छोटे-छोटे कई साधारण वाक्यों से एक साधारण वाक्य बनाना जिसमें संक्षेप से स्पष्टतया सब वाक्यों के विचारों का समावेश हो, और कई साधारण वाक्यों से मिश्रित वाक्य बनाना, तथा कई साधारण वाक्यों से संयुक्त वाक्य बनाना आदि वाक्य-संग्रह कहलाता है।

१—कई साधारण वाक्यों से एक साधारण वाक्य बनाना

(कई) १—मिल्टन एक कवि थे। वह इङ्गलैंड के सब से बड़े कवि थे। वह अन्धे थे।

(एक) इंगलैंड के सबसे बड़े कवि मिल्टन अन्धे थे।

(कई) २—राम को चौदह वर्ष का वनवास हुआ। वह राजा दशरथ के सबसे बड़े पुत्र थे। दशरथ अयोध्या के राजा थे।

(एक) अयोध्या के राजा दशरथ के सबसे बड़े पुत्र राम को चौदह वर्ष का वनवास हुआ।

उपर्युक्त कई वाक्यों का एक वाक्य बनाने में मुख्यतः दो नियमों का पालन करना पड़ा है।

(१) एक मुख्य अर्थवाला वाक्य जैसे का तैसा रख लिया।

(२) दूसरे वाक्यों को वाक्यांशों में परिणत करके संज्ञा अथवा क्रिया के विशेषण रूप में रख दिया और बार-बार आये हुए शब्दों को केवल एक बार प्रयोग कर दिया।

पहले वाक्य में 'मिल्टन' कवि 'वह' शब्द मिल्टन वाची है। 'कवि थे' दो बार आया है। मुख्य अर्थ यह है—'कवि मिल्टन अन्धे थे।' दूसरे वाक्य में मुख्य अर्थ केवल इतना है—'राम को चौदह वर्ष का बनवास हुआ' शेष सब विशेषण शब्द हैं।

२—साधारण वाक्यों से मिश्रित वाक्य बनाना

(साधारण) १—उसे इनाम मिलेगा—हर एक व्यक्ति इस बात को जानता है।

(मिश्रित) प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि उसे इनाम मिलेगा।

(साधारण) २—यह स्थान है। मैं यहाँ दस वर्ष हुए आया था।

(मिश्रित) यह वही स्थान है जहाँ मैं दस वर्ष हुए आया था।

साधारण वाक्यों से मिश्रित वाक्य बनाने में दो बातों का ध्यान रखना चाहिये।

(१) मुख्य वाक्य को प्रधान उपवाक्य बनालो।

(२) दूसरे वाक्यों को आश्रित उपवाक्य (संज्ञा, विशेषण, क्रिया-विशेषण कर दो)।

३—साधारण वाक्यों से संयुक्त वाक्य बनाना

(साधारण) गोपाल अच्छा लड़का है। उसके भाई दुष्ट और आलसी हैं।

(संयुक्त) गोपाल अच्छा लड़का है पर उसके भाई दुष्ट और आलसी हैं।

(साधारण) वह अपने माता-पिता की परवाह नहीं करता। वह अपने गुरु की भी परवाह नहीं करता।

(संयुक्त) वह न अपने माता-पिता की परवाह करता है, न गुरु की।

नियम—साधारण वाक्यों से संयुक्त वाक्य बनाना अत्यन्त सरल है। केवल कुछ समुच्चयबोधक अव्ययों के जोड़ देने से काम चल जाता है।

अभ्यास

(१) साधारण और संयुक्त वाक्यों में क्या भेद है ?

(२) निम्नलिखित वाक्यों में से उद्देश्य और विधेय छाँटो :—

(क) सुशीला गंगा नहाने गई है।

(ख) जापान एक उन्नतिशील नगर है।

(ग) सिंह वन में दहाड़ता है। (घ) सदा सच बोलो।

(३) वाक्य-विग्रह किसे कहते हैं ? इससे क्या लाभ है ?

(४) वाक्यांश और उपवाक्य में क्या अन्तर है, सोदाहरण समझाओ।

(५) आश्रित उपवाक्य कितने प्रकार के होते हैं ?

(६) निम्नलिखित वाक्यों का वाक्य-विग्रह करो:—

(क) मेरे सम्मुख एक शान्त और सुशील तथा धर्मपरायण साधु बैठे हैं।

(ख) जो जिस नगर में रहता है वह उसी को अच्छा कहता है।

(ग) तुम्हारे भाई को क्या हो गया ?

(घ) कुमार के वियोग में मेरी यह दशा थी कि मैं नहीं जानती थी कि जागती थी या सोती, अकेली थी या दुकेली, सुख में थी या दुःख में, उत्कण्ठा ने आक्रान्त किया था या व्याधि ने।

(७) किस प्रकार के पद विधेय के अन्तर्गत हो सकते हैं ?

द्वितीय खण्ड

पंचम अध्याय

रचना

प्रवेश

रचना एक कला है। यह दैव की देन होती है। किन्तु यह जानना कि किसमें यह शक्ति है और किसमें नहीं, बड़ी टेढ़ी खीर है। विद्वानों का कहना है कि शक्तियाँ मनुष्य के हृदय में छिपी रहती हैं और समय पाकर वे विकसित होती हैं। वे समय और अवसर की प्रतीक्षा किया करती हैं और यदि उनको सुअवसर न मिला तो वे वहीं लुप्त हो जाती हैं। शक्ति का विकास अभ्यास से होता है। अभ्यास के लिए परिश्रम की आवश्यकता होती है। उसमें सफलता तभी मिलती है, जब कि वह उचित रीति पर और सुयोग्य पाठकों के निरीक्षण में किया जाय। यों तो 'निज कवित्त केहि लाग न नीका, सरस होय अथवा अति फीका' के अनुसार अपनी रचना सबको अच्छी लगती है; परन्तु प्रशंसा उसी की होती है जो सबको प्रिय लगे, जिसे पढ़कर लोगों का दिल फड़क जाय और वे उसके आनन्द में वाह-वाह करने लगें और मंत्र-मुग्ध हो जायँ। यह बात तभी हो सकती है जब कि रचना के गुणों और अवगुणों से लेखक का परिचय हो। यहाँ उनमें से कुछ का दिग्दर्शन कराया जाता है।

कुछ—दोष

पहिले तो बालकों को विषय का उचित ज्ञान ही नहीं होता

और यदि कुछ होता भी है तो वे उसे प्रकट नहीं कर सकते। वे अपने तथा दूसरों के विचारों को अपने शब्दों में कहना नहीं जानते। उनकी भाषा बेतुकी होती है। प्रवाह तो उसमें होता ही नहीं। शब्दों की भरमार से पढ़नेवालों की तबियत ऊब जाती है। एक ही बात बार-बार लिखी जाती है। जब, तब और आगे आदि शब्दों का अनावश्यक प्रयोग होता है। शब्दों की शक्ति का उन्हें पता नहीं होता और भावों का तो सर्वथा अभाव ही रहता है। व्याकरण–सम्बन्धी भारी भूल भरी रहती हैं। वाक्य अनावश्यक लम्बे लिखे जाते हैं। उनमें विचारों का तारतम्य नहीं होता। पैराग्राफ़ बनाना तो जानते ही नहीं। समस्त लेख का लेख एक ही पैराग्राफ में समाप्त हो जाता है। यही कुछ साधारण बातें हैं, जिनकी जानकारी से लेख ऊँचे दर्जे का हो जाता है।

रचना-सम्बन्धी उपयोगी बातें

सामग्री

बालको ! एक कुशल शिल्पकार को भव्य और सुन्दर भवन निर्माण के लिए सीधी सुदृढ़ ईंटें तथा अच्छे मसाले की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार साहित्य को सुन्दर बनाने के लिए उत्तम सामग्री और कला की आवश्यकता है। इसलिए विद्यार्थियों को चाहिए कि जिस विषय पर उन्हें लिखना हो हो उस विषय की वे पुस्तकें पढ़ें, विद्वानों की कृतियों का अध्ययन करें और अपने अनुभव से काम लें। उनका ज्ञान परिमित होता है। उनके बल पर लेख में सफलता प्राप्त करना बड़ी कठिन बात है। संसार में नित्य नये परिवर्त्तन और अविष्कार होते ही रहते हैं। उनकी जानकारी के बिना पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता और अधूरे ज्ञान से रचना में सफलता नहीं

मिल सकती। ज्ञान प्राप्ति के मुख्य चार साधन हैं। (१) पर्यटन (२) निरीक्षण (३) स्वाध्याय (४) सत्संग। इनमें से हर एक पर यहाँ हम छात्रों की जानकारी के लिए कुछ संक्षिप्त वर्णन करते हैं।

पर्यटन

पर्यटन और निरीक्षण का कार्य साथ-साथ होता है। घर बैठे पुस्तकों के सहारे यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। जिसने पार्वतीय शहर और गाँव नहीं देखे वह वहाँ के रहन-सहन का वर्णन नहीं कर सकता। इसी प्रकार जिसने मैदान के शहर और गाँव नहीं देखे, वह उनका ठीक चित्र नहीं खींच सकता। इसलिए ज्ञान-वृद्धि के लिए पर्यटन की बड़ी आवश्यकता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि आप सारे हिन्दुस्तान भर का चक्कर लगावें, सारी दुनिया छान डालें, शहर-शहर और गाँव-गाँव मारे-मारे फिरें, पर इतना अवश्य करिए कि महीने में एक-दो बार खेतों को जाकर देखिये, साल में दो-चार नये शहर घूमिये; मेले, तमाशे, बाज़ार आदि देखिये, वहाँ लेख के लिए पर्याप्त सामग्री मिलेगी। घर से बाहर तो अवश्य निकलिये। कूपमण्डूक बने रहने से आप उन्नति नहीं कर सकते।

निरीक्षण—बालकों को चाहिए कि जब वे घर से बाहर निकलें तो आँखें और कान खोल कर चलें। उनके सीखने के लिए संसार में अनेक बातें हैं। वे देखेंगे कि सड़क के किनारे भीड़ लगी हुई है। एक लड़का चीख रहा है। उसके घुटने फूट गये हैं और खून बह रहा है। मोटरवाले का पता नहीं। उसके सम्बन्ध में जितने मुख हैं, उतनी ही बातें कही जा रही हैं। कोई ड्राइवर को दोषी ठहराता है और कोई कहता है कि इसमें उसका क्या दोष उसने तो भोंपू बजाया था। थोड़ी देर और

ठहरिये तो ऐसी ही घटना-मिश्रित सैकड़ों कहानियाँ सुनने को मिलेंगी। आगे चलिये। देखिये वह बाजीगर का तमाशा हो रहा है। बाँसुरी बज रही है, बन्दर की खोपड़ी रखी है और लोग मधु-मक्खियों की तरह घिरते चले आरहे हैं। वह मुँह से बड़े-बड़े गोले और गोलियाँ निकाल रहा है और फिर उन्हें ग़ायब कर देता है। थोड़ी देर और रुकिए तो वह आपको ताश के अनेक खेल दिखायेगा, लच्छेदार बातें करेगा और एक रुपये से बहुत रुपये बना देगा। ज़रा सावधान रहिएगा, नहीं तो जेब कट जायगी, क्योंकि यहाँ तो हाथ की सफ़ाई और नज़र का खेल है। चलिए लखनऊ 'यंगमैन्स' और 'हासपिटल' कोर का फ़ाइनल मैच देखा जाय। ओफ़! कितनी भीड़ है। चारों तरफ़ लोग खड़े हैं, कहीं बैठने को जगह नहीं। अरे! हाफ़टाइम होगया। आओ, उस ओर से खड़े होकर देखें क्योंकि उसी तरफ़ से गेंद बढ़ने की उम्मेद है। सीटी बज गई। खेल शुरू हो गया। दोनों टीमें बराबर की हैं। मैदान में खिलाड़ियों के धावे क्या होते हैं मानो लहरों के घात प्रतिघात हो रहे हैं। दर्शकगण खिलाड़ियों की आलोचना कर रहे हैं। वह देखो! मोहन ने गोल बना दिया; परन्तु रेफ़्री ने स्टिक दे दी। वह फिर आगे बढ़ा। उसने हाफ़ और बैक दोनों से गेंद निकाल लिया। मालूम होता है आउट होगया, किन्तु शाबाश उसने कैसी सफ़ाई से गेंद जाल में उलझा दिया। चारों ओर से तालियाँ पिटने लगीं, दर्शकगण वाह! वाह! करने लगे। चलिये अब यहाँ क्या रखा है। साइकिलों और मोटरों के मारे तो निकलना कठिन है। आओ, इस ओर से प्रकृति की शोभा का आनन्द लेते चलें। वर्षा की सुनहली सन्ध्या कैसी अच्छी मालूम हो रही है। आकाश कैसा निखरा हुआ और स्वच्छ है। अनुराग–रंजित पश्चिम दिशा कैसी सुहावनी लगती है।

शीतल वायु का स्पर्श कैसा सुखकारी है। बेले और मोगरे की कलियाँ चटखने को हैं। सारे मदान पर हरी घास का बिछौना बिछा हुआ है। उस पर स्वच्छ कपड़े पहिने हुए बच्चे क्रीड़ा कर रहे हैं। चलो घर चलें क्योंकि अभी फिर लौट कर आना और चाँदनी रात का दृश्य देखना है।

ऊपर हमने जो दो-चार बातें दिखाई हैं वे तो केवल संकेत मात्र हैं। उनके वर्णन अधूरे हैं, लेकिन इन बातों को लेकर बड़े-बड़े निबन्ध लिखे जा सकते हैं। इस प्रकार यदि विद्यार्थी सच्चे जिज्ञासु की दृष्टि से घर के बाहर निकलेंगे तो उन्हें अपरिमित ज्ञान प्राप्त होगा। उनके लिए सर्वत्र ज्ञान का द्वार खुला हुआ है। वायु संदेशा ला रही है। चिड़ियाँ गान सुना रही हैं। उषा, सन्ध्या और ऋतुओं के पर्दे बदल रहे हैं। प्रकृति नटी का नृत्य हो रहा है। झरने मधुर ध्वनि से झर रहे हैं। नदी, मैदान और पर्वत विश्व-रचना का इतिहास बता रहे हैं। उज्ज्वल अक्षरों की लिखी हुई आकाश की पुस्तक खुली रखी है। उनके देखने के लिए अनन्तसागर उमड़ रहा है। यही मनुष्य का सच्चा ज्ञान है जो उसको निज के अनुभवों से प्राप्त होता है।

स्वाध्याय—अध्ययन की रुचि डालना प्रत्येक विद्यार्थी का कर्त्तव्य है। इससे जो चित्त को आनन्द मिलता है तथा ज्ञान प्राप्त होता है वह असीम है। प्रत्येक मनुष्य घूम फिर नहीं सकता क्योंकि उसके पास पर्याप्त साधन नहीं होते। स्वाध्याय एक ऐसा गुण है जो भ्रमण की कमी को पूरा करता है। एक ही वस्तु को लोग भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से देखते हैं और अपनी अपनी रुचि के अनुसार उसका वर्णन करते हैं। इसके अतिरिक्त मनुष्य जीवन थोड़ा है। इसमें उतना समय नहीं कि

मनुष्य स्वयं ही सब ज्ञान प्राप्त करे। उसे दूसरे के अनुभवों का सहारा लेना पड़ता है और उसी की नींव पर अपने ज्ञान की नींव जमानी होती है।

सत्संग—सत्संग एक ऐसा अच्छा साधन है जिससे मूर्ख से मूर्ख मनुष्य भी विद्वान् हो सकता है। सब लोग जानते हैं कि कबीरदास निरक्षर थे, परन्तु ज्ञान की जो बातें उन्होंने कही हैं उन्हें सुनकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। तुलसीदासजी ने सत्संग ही से रामायण, वेद, पुराण, शास्त्र आदि का अध्ययन किया था। यह पारस है जो लोहे को सोना बनाता और उसे अपूर्व द्युति देता है। सत्संग की महिमा पर बहुत कुछ कहा जा सकता है; यहाँ पर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इससे अवगुणों के प्रति विरक्ति और गुणों के प्रति श्रद्धा होती है।

अभ्यास

१—ज्ञान प्राप्त करने के मुख्य कितने साधन हैं ?

२—पर्यटन और स्वाध्याय में सबसे सरल साधन कौनसा है ? वह किस प्रकार ? स्पष्ट व्याख्या करो।

३—निरीक्षण करने से लेख लिखने में क्या सहायता मिलती है ?

४—सत्संग का मनुष्य पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

भाषा

भाषा दो प्रकार की होती है, एक साहित्यिक और दूसरी बोल-चाल की। बोल-चाल से मतलब ग्रामीण भाषा से नहीं वरन् उससे है, जिसे पढ़े-लिखे लोग बोलते हैं। लेख के लिए दोनों उपयुक्त हैं। लेखक इच्छानुसार किसी भी भाषा का उपयोग कर सकता है। परन्तु वह विषय के अनुकूल होनी चाहिए। भाषा में सबसे बड़ा गुण सरलता और धाराप्रवाह का है। इसकी समभूमि पर भावों का प्रवाह बेरोक-टोक बहता है और उसका तल विषम होने से विचार टकराते फिरते हैं। भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसे सब लोग समझलें क्योंकि रचना का मुख्य उद्देश्य अपने भावों का प्रकट करना ही है। हम पहिले ही कह चुके हैं कि भाषा के मुख्य अंग वाक्य, शब्द और पैराग्राफ़ हैं। यहाँ हम उन्हीं की विवेचना करते हैं।

(१) वाक्य—जहाँ तक हो सके वाक्य छोटे और सरल हों। जटिल वाक्य वहीं लिखे जायँ, जहाँ आवश्यकता हो अथवा जिनसे रचना में सौन्दर्य आता हो। वाक्यों में विचारों का परस्पर सम्बन्ध होना चाहिए। वे अनावश्यक लम्बे न हों। एक बहुत छोटा और एक बहुत बड़ा वाक्य लिखना भाषा की सुन्दरता कम कर देता है।

(२) शब्द—शब्दों के चुनाव पर ही लेखक की कला, विद्वत्ता की परीक्षा होती है। शब्द ही रचना का असली अस्त्र है लेकिन वह किस पर और कब छोड़ना चाहिए, बड़ी समझ का काम है। इसके सम्बन्ध में कबीरदासजी ने क्या ही अच्छा कहा है :—

शब्द शब्द सब कोई कहै, शब्द के हाथ न पाँव।
एक शब्द करै औषधी, एक शब्द करै घाव॥

अतएव शब्दों का प्रयोग समझ-बूझकर करना चाहिए। अगले अध्याय में हम इसी पर विचार करेंगे।

(३) पैराग्राफ़—जहाँ तक हो सके एक पैराग्राफ़ में एक ही विचार की व्याख्या और उसकी पुष्टि होनी चाहिए। इसके विस्तार के सम्बन्ध में कोई नियम नहीं बनाया जा सकता। यह छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा हो सकता है लेकिन एक भाव विषयक एक ही पैराग्राफ़ होना चाहिए। इसके वाक्यों में आकांक्षा, क्रम और योग्यता रहती है। इससे रचना में यह लाभ है कि यह एक प्रकार के भावों और विचारों को दूसरे प्रकार के भावों और विचारों में मिल जाने से पृथक् करता है। वह यह स्पष्ट बताता है कि तुम आगे बढ़ो, नये पैराग्राफ़ों पर प्रकाश डालो तो और दूसरे प्रकार के विचारों को पाओगे। पैराग्राफ़ को अनुच्छेद अथवा परिच्छेद भी कहते हैं।

पैराग्राफ़ रचना करने का ढंग

संज्ञा शब्द-(१) सावित्री, यमराज, प्रतिज्ञा, सास-ससुर, सुख।

सती सावित्री ने यमराज को अपनी सत्य प्रतिज्ञा से प्रसन्न किया। तदनन्तर अपने सास-ससुर को अधिक सुख दिया।

(२) अहिल्या, राम, दशरथ, जनकपुर, विश्वामित्र, शोभा।

अहिल्या शाप-वश सिला हो गई थी। बनवास के समय राम ने इसका उद्धार किया था। राम के वियोग से दशरथ जी सुरपुर सिधार गये थे। इन्होंने जनकपुर में धनुष तोड़ा था, तब इनके साथ विश्वामित्र भी थे। उस समय इनकी शोभा बड़ी विलक्षण होरही थी।

विशेषण पद-(३) तपस्वी, सुन्दर, राजा, श्रेष्ठ, आप, सती, सहर्ष।

तपस्वी गौतमी तपोवन से सुन्दर शकुन्तला के साथ चलने

को तैयार हुई। वह दोनों फिर राजा दुष्यन्त की श्रेष्ठ राजधानी में पहुँची। वहाँ राजा शकुन्तला को देख अपशब्द कहने लगा। तब सती शकुन्तला ने उनको सहर्ष सहन करके धैर्य धारण किया।

क्रिया-विशेषण पद—(३) झूठ-मूठ, बार-बार, अब, निकट, नहीं, इसलिए, अत्यन्त।

राधे झूठ-मूठ डींग हाँक रहा था। वह बार-बार कहता था कि मैं अब किसी से नहीं डरता हूँ। चाहे कोई मेरे निकट ही चला आवे तो मैं उससे डर नहीं सकता। इसलिए ज्ञात होता है कि मैं अत्यन्त बलवान हूँ।

पैराग्राफ़-रचना के लिए ज्ञातव्य बातें

१—पैराग्राफ़ों में परस्पर सम्बन्ध होना चाहिए और उसके वाक्यों में भी आपस में सम्बन्ध होना चाहिए। एक पैराग्राफ़ में एक ही भाव रहना चाहिए वह भाव भी अपने आदि के आये हुए और अंत में आनेवाले भावों से स्पष्टता-पूर्वक सम्बन्ध रखनेवाला हो।

२—पैराग्राफ़ों में परस्पर सम्बन्ध रखने के लिए कुछ विशेष शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे—
'इसके अनन्तर', 'फिर', 'किन्तु', 'तथापि', 'पहली बात यह है', 'दूसरी बात यह है', 'पहले', 'दूसरे', 'अस्तु', 'आगे', 'कारण यह है', 'अतएव', 'अन्त में', 'जो', 'सो', 'सारांश यह है', 'इस दशा में' आदि। ये शब्द वाक्यों के परस्पर जोड़ने में काम आते हैं।

३—पैराग्राफ़ों के आदि और अन्त के वाक्य ज़ोरदार होने चाहिए। इसमें प्रत्येक पैराग्राफ़ के पहले वाक्य में पूरे पैराग्राफ़ में आगे आनेवाली बातों का भाव आ जाता है

और अन्त का वाक्य भी दूसरे वाक्यों से कुछ अधिक गौरवशाली होता है। यह वाक्य सारे पैराग्राफ़ का प्रभाव डालनेवाला हो और उसका दूसरे पैराग्राफ़ों से स्वाभाविक सम्बन्ध हो।

४—पैराग्राफ़ की लम्बाई आवश्यकता से अधिक न हो परन्तु इस बात का ध्यान रहे कि हम जिस बात का स्पष्टीकरण कर रहे हैं उसमें उसी से सम्बन्धित वाक्यों का उल्लेख हो—विषयान्तर न होने पावे। अधिक लम्बा पैराग्राफ़ रचना के लिए अच्छा नहीं, उसके होने से रचना की सुन्दरता फीकी पड़ जाती है।

अभ्यास

१—भाषा के मुख्य अंग क्या हैं ?

२—रचना के लिए कैसे शब्द होने चाहिए ?

३—पैराग्राफ़-रचना के लिए ज्ञातव्य बातें क्या हैं ?

४—नीचे लिखे पद-समूह को पृथक्-पृथक् पैराग्राफ़ों में प्रयोग करोः—

(क) कदाचित्, दौड़ते-दौड़ते, जहाँ-तक, बार-बार, कदापि।

(ख) काश्तकार, हत्या, अभियोग, जीवन, कष्ट, उत्सव, मृत्यु।

५—नीचे लिखे मुहाविरों को दिये हुए उदाहरण के समान प्रयोग में लाकर एक पैराग्राफ़ को पूर्ण करो :—

(क) ज्यों-त्यों, दाल गलना, हाथों-हाथ, नौ दो ग्यारह, चाल चलना।

(ख) मनमानी घर जानी, अन्धाधुन्ध, दंड रह गया, चलता पुरजा, अपना-सा मुँह लेकर।

उदाहरण—नाक कट गई, आँखें लाल करना, मरी गाय ब्राह्मण के हाथ।

शूर्पणखा को कुरूप देख कर रावण ने कहा—'अब तो मेरी नाक कट गई।' उसने यह न सोचा, यह बहिन किसकी है ? तब तो वह आँखें

लाल करके कहने लगा—'देखो, जिसने इसको कुरूप किया है उसे पकड़ कर ले आओ।' उसको मारना मत, नहीं तो मरी गाय ब्राह्मण के हाथ लग जावेगी। मैं पहले उसे केवल देखना ही चाहता हूँ, जिसने निडर होकर शूर्पणखा की यह कुगति की है।

६—आगे के उदाहरण में जिस प्रकार कहावतों का प्रयोग है उसी प्रकार दी हुई कहावतों का प्रयोग करके पैराग्राफ़ रचना करो :—

उदाहरण—अन्धों में काना राजा, पहेली सी बुझाना, भई गति साँप छछूँ-दर केरी, न निगलते बनै न उगलते बनै, हीरे की परख जौहरी ही जाने।

धृतराष्ट्र ने दुर्योधन की बातें सुनकर कहा—'तू तो अन्धों में काना राजा हो रहा है।' तू अपने मनकी बात स्पष्ट क्यों नहीं कहता ? बार-बार पहेली-सी क्यों बुझाता है। मेरी तो इस घर की लड़ाई से साँप छछूँदर की सी गति हो गई है, न तो निगलते ही बनता है और न उगलते ही बनता है। मेरी दोनों ओर ख़राबी है। पाँडव बड़े वीर हैं, उनकी वीरता को तू नहीं जानता! अरे 'हीरे की परख तो जौहरी ही जानता है।' तू अत्याचारी इन बातों को क्या समझे ?'

(क) काला अक्षर भैंस बराबर; रस्सी जल गई, ऐंठ न छूटी; जैसे नाग नाथ, तैसे साँप नाथ।

(ख) आँखों के अन्धे नाम नयनसुख ; एक पंथ दो काज ; एक मछली सारे तालाब को गंदा करती है; चार दिन की चाँदनी फेरि अँधेरी रात।

१—वाक्य-रचना

रचना में वाक्यों का एक विशेष महत्त्व-पूर्ण स्थान है। इनके द्वारा ही भावों का विनिमय होता है। इसी गुण के कारण हम इनका नित्य प्रयोग करते हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त इनमें एक और गुप्त शक्ति होती है, जो समुचित रीति पर प्रयोग किये जाने पर ही अपना प्रभाव प्रकट करती है। इस शक्ति के द्वारा मनुष्य समाज को रुला सकता है, हँसा सकता है, अपनी ओर आकर्षित कर सकता है और जहाँ चाहे लेजा सकता है। परन्तु यह आवश्यक है कि उसके वाक्य सुदृढ़ हों। सम्पन्न हों, और प्रभावोत्पादक हों। ऐसे वाक्यों के लिए कहा गया है कि उनमें योग्यता, आकांक्षा और आसक्ति नामक तीनों लक्षण वर्तमान हों।

योग्यता—योग्यता से अभिप्राय है कि एक वाक्य के अन्दर आये हुए शब्दों में अर्थ-विरोध न हो। इस लक्षण की अनुपस्थिति में कोई भी सार्थक पद-समूह वाक्य कहलाने का अधिकारी हो सकता है, परन्तु वह स्पष्ट नहीं हो सकता। जैसे-'आग ठण्ढक पहुँचाती है।' इसमें योग्यता का अभाव है। शब्दों के अर्थ में पारस्परिक विरोध है, अतएव वह स्पष्ट नहीं।

दूसरा लक्षण आकांक्षा है। वाक्यार्थ की पूर्त्ति के लिए किसी पदार्थ की जिज्ञासा का बना रहना आकांक्षा है। जैसे—'रामदास लखनऊ को' 'अब जाता है' इसकी आकांक्षा है।

जिन पदार्थों का प्रकरण में सम्बन्ध होता है, उनके बीच में व्यवधान न होना आसक्ति कहलाता है। यदि बुद्धि के विच्छेद होने पर भी वाक्य हो सके, तो आज 'रामदास' और 'कल जाता है' कह देने से भी वाक्य पूरा हो जायगा। अतः उपर्युक्त तीनों लक्षणों से पूर्ण पद-समूह ही वाक्य कहलाने के योग्य है।

२—वाक्यों में शब्दों का क्रम

वाक्यों में शब्दों का क्रम जानना बड़ा आवश्यक है, क्योंकि उसके ठीक न होने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। अँग्रेजी में शब्दों का विन्यास जिस प्रकार का होता है, हिन्दी में उस प्रकार का नहीं। क्रम न जानने से अर्थ में बड़ी गड़बड़ी होती है, यथा—कुर्सी बैठा है राम पर। इसका शुद्ध रूप 'राम कुर्सी पर बैठा है', इस प्रकार होना चाहिए।

३—क्रम (Order)

वाक्य के अन्दर शब्द किसी न किसी क्रम तथा नियमित रूप से ही प्रयोग होते हैं। वाक्य को बनानेवाले शब्दों का एक दूसरे से लिंग, वचन, पुरुष, काल और कारक आदि के कारण सम्बन्ध रहता है तथा कोई शब्द किसी विभक्ति में और कोई किसी में प्रयोग होता है।

क्रम वह है जिसके अनुसार एक शब्द का वाक्य में स्थान नियत किया जाता है। यह दो प्रकार का होता है-

१-साधारण (Grammatical) जिसमें शब्दों के साधारणतया यथास्थान रखने के नियम दिये हुए हैं।

२-असाधारण-(Bhetorical) जिसमें साधारण क्रिया को पलट कर वाक्यार्थ में कुछ विशेषता कर दी जाती है। प्रायः यह क्रम छन्द बनाने में आता है।

४—क्रम के नियम

साधारणतः वाक्य में पहले कर्त्ता, फिर कर्म या पूरक और अंत में क्रिया रक्खी जाती है। जैसे—'मेरा भाई पुस्तक पढ़ रहा है।'

विशेषण प्रायः विशेष्य के पहले आता है, जैसे–गुणी शिष्य को देखकर गुरू प्रसन्न होता है। यहाँ गुणी विशेषण और शिष्य विशेष्य है। जो विशेषण पूरक का काम देता है वह तो बाद में ही आता है, जैसे इसी वाक्य में 'प्रसन्न' गुरू का विशेषण है।

क्रिया-विशेषण यदि क्रिया की विशेषता प्रकट करता है तो बहुधा क्रिया के पूर्व आता है। तैने उसे खूब मारा, इस वाक्य में 'खूब' मारा की विशेषता प्रकट करता है। यदि वह विशेषण की या दूसरे किसी क्रिया-विशेषण की विशेषता प्रकट करे तो सदा उनके पूर्व आता है। कालवाचक व स्थानवाचक क्रिया-विशेषण बहुधा क्रिया के ठीक पहले न आकर, कर्त्ता के ठीक पीछे आते हैं, जैसे–उसने आज दूध नहीं पिया, मैंने कल यहाँ दूध पिया था।

यदि किसी-किसी के दो कर्म हों तो गौण कर्म पहले और प्रधान कर्म बाद को आता है। मैंने कल अनाथों को खाना खिलाया। यहाँ अनाथों को गौण कर्म है पहले आया और खाना मुख्य कर्म बाद को।

सम्बोधनकारक और विस्मयादिबोधक अव्यय प्रायः वाक्य में आदिस्थान पाते हैं, जैसे—अरे! रमेश तू आज क्यों नहीं गया? अहा! तुम आखिर बैठ ही गए, बड़ा कसूर किया।

सम्बन्धकारक सदा उस संज्ञा के पहले आता है जिससे उसका सम्बन्ध हो, जैसे—महेश की दुकान बड़ी है।

वाक्य में पदों के क्रम के साधारण नियम यही हैं। पर मनके भावों को प्रकट करने के लिए और वाक्य के विशेष अंशों

पर ज़ोर देने के लिए इन नियमों का व्यति-क्रम हो जाता है। केवल एक नियम निश्चित है कि कारक-चिह्न (सम्बोधन के अतिरिक्त) कारक के बाद आते हैं और सब बातों में हेर-फेर हो जाता है। कर्त्ता वाक्य के अंत में भी आ जाता है; जैसे—तो वहाँ से चल दिया वह, इससे ज्यादा कभी भी न लेंगे हम। सम्बोधन कारक बहुधा वाक्य के आरम्भ में आता है पर कहीं-कहीं कर्त्ता के बाद भी, जैसे—'हम भाई ! नहीं मान सकते। कर्म, कर्त्ता और क्रिया के बीच में आता है, पर ज़ोर के लिए वाक्य के आरम्भ में भी आ सकता है, जैसे—'वह हार राजा ने अपने मंत्री को दे दिया।' क्रिया कभी कर्त्ता के पूर्व भी आ जाती है, जैसे—'रह जा तू' अभी ख़बर लेता हूँ। पूर्वकालिक क्रिया बहुधा प्रधान क्रिया के पूर्व आती है, जैसे-वह पानी पीकर सो गया। संयुक्त क्रिया में सहायक क्रिया बाद को आती है, जैसे—वह गिर पड़ा पर कभी-कभी ज़ोर देने के लिए यह क्रम उलट जाता है, तो वह पड़ा गिर।

पद्य में तो पद-क्रम का बड़ा उलट-फेर हो जाता है, जैसे—

(क) दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला।

(ख) कहा उससे मैंने सुनलो कथा मूक होकर।
दुख हरो द्वारिकानाथ शरण में तेरी।

पद्य में इस स्वतंत्रता का मुख्य कारण यही है कि कविता कवि के हृदय के भावों का प्रकाश करती है इसलिए कवि किसी बन्धन का अनुभव नहीं करता। इसलिए कविता में आवश्यकता अनुसार प्रायः सभी पदों का स्थान परिवर्त्तन किया जाता है; जैसे—'आज करते हैं विजय की कामना सब वीरवर।'

३—वाक्यों में शब्दों का अन्वय या मेल

वाक्य के पदों का दूसरे से लिङ्ग, वचन, पुरुष, काल आदि के अनुसार जो सम्बन्ध रहता है उसे 'अन्वय' या 'मेल' कहते हैं। वाक्य में कर्त्ता या कर्म के साथ क्रिया का, संज्ञा के साथ सर्वनाम का, सम्बन्धी के साथ सम्बन्ध का और विशेष्य के साथ विशेषण का मेल रहता है। मेल सम्बन्धी नियम प्रसङ्गवश संज्ञा, क्रिया आदि के अनेकों बतलाये जा चुके हैं, अब कुछ और नियम यहाँ लिखे जाते हैं।

४—क्रिया का कर्त्ता या कर्म से मेल

(१) जहाँ कर्त्ता विभक्ति रहित हो वहाँ क्रिया का मेल कर्त्ता के साथ होता है अर्थात् क्रिया के पुरुष, लिङ्ग और वचन कर्त्ता के अनुसार होते हैं। जहाँ कर्त्ता विभक्ति सहित और वचन कर्म के अनुसार होते हैं तथा जहाँ कर्त्ता और कर्म दोनों विभक्ति सहित हों वहाँ क्रिया अन्य-पुरुष, पुल्लिंग, एकवचन में होती है। जब क्रिया का कर्म न हो सके (जैसे भाववाच्च में) या कर्म लुप्त हो तो सविभक्तिक कर्त्ता की क्रिया एकवचन, पुल्लिग प्रथम पुरुष में आती है। जैसे—मैं उठता हूँ। वे उठती हैं। मैंने आम खाया। उसने गाजर खाई। गुरुजी ने शिष्य को बुलाया। इतना दिन चढ़े भी मुझसे उठा नहीं जाता था। मैंने देखा था।

(२) यदि वाक्य में विभक्ति रहित कर्त्ता हों तो एकवचन में, पर हों एक से अधिक, और वे परस्पर 'और' या इसी

इसी तरह के किसी अन्य योजक द्वारा जुड़े हुए हों तो क्रिया बहुवचन में होगी । जैसे–मोहन और सोहन हँसते हैं ।

(३) विभक्ति रहित अनेक कर्त्ताओं से यदि एक ही वचन का अर्थ निकले तो कई कर्त्ता होने पर भी क्रिया एकवचन में ही आती है । जैसे—आपको देखकर मेरा उत्साह, साहस और हर्ष दुगना हो गया ।

(४) आदर दर्शाने के लिए एकवचन कर्त्ता के साथ भी बहु-वचन की क्रिया लगाई जाती है । जैसे—महाराज कहने लगे; वैद्यजी आज आनेवाले हैं ।

(५) यदि विभक्ति रहित बहुवचन कर्त्ता भिन्न-भिन्न लिंगों के हों तो क्रिया होगी । पर बहुवचन में उसका लिंग अन्तिम कर्त्ता के अनुसार होगा । जैसे--हर साल सैकड़ों स्त्रियाँ और पुरुष तीर्थ-यात्रा को जाते हैं या सैकड़ों पुरुष और स्त्रियाँ तीर्थ-यात्रा को जाती हैं ।

(६) पर, यदि भिन्न-भिन्न लिङ्गों के कर्त्ता एकवचन में हों तो क्रिया प्रायः पुल्लिङ्ग और बहुवचन में होती है । जैसे—जब मैं वहाँ पहुँचा तो गंगाचरण और कमला खेल रहे थे । इस राज्य में शेर और बकरी एक घाट पानी पीते हैं ।

(७) यदि भिन्न-भिन्न लिङ्गों के विभक्ति रहित कर्त्ता भिन्न-भिन्न वचनों में हो तो क्रिया बहुवचन में होगी और उसका लिङ्ग अंतिम कर्त्ता के अनुसार होगा । जैसे—वहाँ दो बैल, तीन गौएँ और बहुत-से गदहे चर रहे थे । वहाँ दो बैल, तीन गदहे और बहुत-सी गौएँ चर रही थीं । ऐसे स्थानों में प्रायः पुल्लिंग और बहुवचन कर्त्ता के अन्त में रहता है ।

यदि पिछला कर्त्ता एकवचन में हो तो क्रिया एकवचन और बहुवचन दोनों में आ सकती है। जैसे–दो गौएँ, तीन गदहे और एक बैल वहाँ चर रहा था (चर रहे थे)।

(८) यदि वाक्य में विभक्ति रहित अनेक कर्त्ता हों और उनके बीच में 'या' आदि में विभाजक शब्द हों तो क्रिया का लिङ्ग और वचन अन्तिम कर्त्ता के अनुसार होता है। जैसे—श्याम की गौएँ या रमेश का घोड़ा बिकेगा। मोहन का घोड़ा या राम की गौएँ बिकेंगी।

(९) यदि एक ही वाक्य में भिन्न-भिन्न पुरुषों के विभक्ति रहित कर्त्ता हों तो क्रिया ऊँचे पुरुषों के अनुसार होती है। उत्तम पुरुष को सबसे ऊँचा समझना चाहिये, मध्यम पुरुष को दूसरे स्थान पर और अन्य पुरुष को तीसरे स्थान पर। जैसे—हम, तुम और वे खेलेंगे। हम तुम और वे खेलेंगे या तुम, हम और वे खेलेंगे।

(१०) ऊपर लिखा जा चुका है कि जहाँ कर्त्ता सविभक्तिक हो और कर्म निर्विभक्तिक; वहाँ क्रिया कर्म के अनुसार होगी। यदि कर्म एक से अधिक हों तो जो कर्म निर्विभक्तिक होगा, क्रिया उसके अनुसार होगी। जैसे–महेश ने साधू को पैसा दिया। महेश ने साधू को पसे दिये।

(११) जिसके लिङ्ग में सन्देह हो ऐसे कर्त्ता और कर्म के साथ क्रिया पुल्लिंग में आती है। जैसे–आज कौन आया था ? वहाँ कुछ देखा था ?।

(१२) कुछ शब्दों का केवल बहुबचन में ही प्रयोग होता है। अतः उनके साथ क्रिया भी बहुवचन में ही आएगी। जैसे—राम के वियोग में महाराज दशरथ के प्राण निकल गये। पुत्र को देखते ही उसके आँसू निकल पड़े।

१—संज्ञा और सर्वनाम का मेल

१—सर्वनाम के लिङ्ग और वचन वही होते हैं जो संज्ञा के, जिसके बदले वह प्रयुक्त होता है। जैसे—जो कन्या चारों विषयों में पास हुई है, वही जमात में चढ़ाई गई है। लीला बोली-मैं कहीं की न रही। हरेश कह गया है कि कल वह आवेगा। यदि कोई स्त्री अपने परिवार के पुरुषों और स्त्रियों दोनों की प्रतिनिधि होकर बोले तो सर्वनाम पुल्लिंग में होगा। जैसे—लीलावती कहने लगी, आप लोग धनी ही सही, पर हम आपके पास भीख माँगने तो नहीं आए-जो ऐसी बात सुना रहे हैं।

२—एक ही संज्ञा के बदले तू और तुम, मैं और हम, आप और तुम, अथवा श्रीमान् और आपका प्रयोग नहीं करना चाहिए। जैसे—'तुम नहीं आए तो इसमें तेरा ही दोष है', अशुद्ध है। इसके स्थान में 'तुम नहीं आए तो इसमें तुम्हारा ही दोष है' होना चाहिये।

२—सम्बन्ध और सम्बन्धी का मेल

(१) सम्बन्धकारक के विभक्ति चिह्न में वही लिङ्ग और वचन होते हैं जो सम्बन्धी शब्द होते हैं। जैसे-लालाजी का घोड़ा, लालाजी की गाड़ी, लालाजी के लड़के, लालाजी की कन्याएँ।

(२) जब सम्बन्धी पद पुल्लिंग हो और उसके आगे कोई विभक्ति हो तो उसके एकवचन में होने पर भी सम्बन्धकारक में 'का' और रा' की जगह 'के' और 'रे' चिह्न लगता है। जैसे—मोहन के धन का उपयोग करना अनुचित है। तुम्हारे दान का रुपया सुरक्षित है।

(३) जब अनेक सम्बन्धी होते हैं तब सम्बन्धकारक का चिह्न पहले सम्बन्धी के अनुसार होता है। जैसे—उसका धन और स्त्री सभी नष्ट होगये।

३—विशेष्य और विशेषण का मेल

१—विशेषण के लिङ्ग, वचन और कारक विशेष्य के अनुसार होते हैं। लिङ्ग, वचन आदि के कारण विशेषणों में कहाँ रूपान्तर होता है और कहाँ नहीं, यह सब बातें विशेषणों में पढ़ चुके होगे।

२—विभक्ति सहित स्त्रीलिंग, कर्मकारक का विधेय विशेषण प्रायः पुल्लिंग में होता है, जैसे—दीवार को किसने काला किया है।

३—एक ही विशेषण के कई विशेष्य हों तो विशेषण के लिङ्ग, वचन उसी विशेष्य के अनुसार होते हैं जो समीप हो। जैसे—नये पलँग और दरियाँ, नई बत्तियाँ और लैंप।

नोट—(१) कभी-कभी विशेषण, पदों और वाक्यांशों के बीच में आजाने से कर्त्ता को क्रिया से दूर न रखकर निकट ही लिखते हैं, जैसे—सोलह वर्ष की आयु में ही उसने घर छोड़ दिया।

(२) कभी-कभी लेखक उपर्युक्त नियमों का पालन न करके जिस शब्द पर जोर देना चाहते हैं, उसका स्थान बदल देते हैं, जैसे—

१-मेहनत करें लड़के और नाम हो स्कूल का।

२-उन्हीं के लिए तो मैं आया हूँ।

३-तुम से बिछुड़े मुझे युग के युग बीत गये।

४-हुक्म मेरा है और दस्तखत बादशाह के हैं।

५-वर्षा पर ही कृषि अवलम्बित है।

४—रूप के अनुसार वाक्यों के भेद

रूप के अनुसार वाक्यों के छः भेद हैं :—

(१) साधारण वाक्य—सफेदा आम लखनऊ में होता है।

(२) आज्ञा-सूचक—प्रातःकाल ईश्वर का नाम लेना चाहिये। कल चले जाइएगा। (प्रार्थना)

(३) प्रश्नबोधक—आज कल गेहूँ किस भाव से बिकता है? आप कहाँ से आ रहे हैं?

(४) निषेधात्मक–खाने की इच्छा नहीं है। आज खेल न होगा।

(५) आशीर्बोधक—सदा सुखी रहो! भगवान् सबका भला करे।

(६) विस्मयादिसूचक–हाय! वज्रपात हो गया! इतनी गर्मी! ईश्वर भला करे!

५—वाक्यों के रूप में परिवर्तन

तनिक काट-छाँट और परिवर्तन से जिस प्रकार दर्जी एक कपड़े को कई रूपों में सँवार देता है, उसी प्रकार एक वाक्य को थोड़े-ही हेर-फेर से कई रूपों में प्रकट कर सकते हैं।

(अ) साधारण वाक्य से प्रश्नात्मक वाक्य

प्रायः साधारण वाक्य के पहले 'क्या' बढ़ा देने से प्रश्नात्मक वाक्य बन जाता है। जैसे—

साधारण	प्रश्नात्मक
(१) बम्बई में जाड़ा कम होता है।	(१) क्या बम्बई में जाड़ा कम होता है?
(२) अब आप अच्छे हो गए।	(२) क्या अब आप अच्छे हो गए?

(ब) साधारण वाक्य से निषेधात्मक वाक्य

आशय में भेद न होते हुए भी किसी साधारण वाक्य को निषेधात्मक वाक्य का रूप दिया जा सकता है। जैसे—

साधारण वाक्य	निषेधात्मक वाक्य
(१) कपड़ा मोटा है।	(१) कपड़ा पतला नहीं है।
(२) मैं घर में था।	(२) मैं घर से बाहर न था।

६—वाच्य-परिवर्तन

(अ)	(ब)
सोहन पुस्तक पढ़ता है।	पुस्तक पढ़ी जाती है।
कमला रोटी बनाती है।	रोटी बनाई जाती है।

उपर्युक्त वाक्यों की क्रियाओं पर ध्यान देने से मालूम होता है कि 'अ' भाग में क्रिया कर्त्ता के अनुसार आई है और 'ब' भाग में कर्म के अनुसार। 'अ' भाग में कर्त्ता को प्रधानता दी गई है और 'ब' भाग में कर्म को।

कर्तृवाच्य—जिस वाक्य में कर्त्ता प्रधान हो, उसे कर्तृवाच्य कहते हैं।

कर्मवाच्य—जिस वाच्य में कर्म प्रधान हो, उसे कर्मवाच्य कहते हैं।

(क)	(ख)
श्यामा दूध पीती है।	श्यामा से दूध पिया जाता है।
उसने रोटी खाई।	उससे रोटी खाई गई।

उपर्युक्त 'क' और 'ख' भाग के वाक्यों पर विचार करने से मालूम होता है कि 'क' भाग में कर्म और कर्त्ता की अवस्था में आनेवाले शब्द 'ख' भाग में क्रम से कर्त्ता तथा करणकारक की अवस्था में आये हैं और क्रिया सामान्यभूत में बदल गई है तथा जाना क्रिया का रूप उसी लिंग, वचन और काल के

अनुसार जोड़ दिया है। अतएव यदि कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य बनाना हो तो :—

(१) कर्म को कर्त्ता की अवस्था में बदलो।

(२) यदि कर्त्ता लाने की आवश्यकता हो तो उसे करण-कारक के रूप में लाओ।

पिता हँसता है।	पिता से हँसा जाता है।
माता उठती है।	माता से उठा जाता है।

'हँसता है' और 'उठती है'—अकर्मक क्रियायें हैं, इनमें कर्म नहीं होता। अतएव इन वाक्यों का परिवर्तन करने में कर्त्ता को करण के स्थान में बदल देते हैं, तथा क्रिया का वही रूप रखते हैं जैसा कर्मवाच्य में होता है।

नोट—सकर्मक क्रियाओं से कर्मवाच्य बनते हैं और अकर्मक-क्रियाओं से भाववाच्य।

भाववाच्य—जिन वाच्यों में भावों की प्रधानता होती है, उन्हें भाववाच्य कहते हैं।

अभ्यास

१—वाच्य कितने प्रकार के होते हैं और कौन-कौन ?

२—निम्नाङ्कित वाक्यों का वाक्य-परिवर्तन करो ; और बताओ कि तुमने किस वाच्य को किस वाच्य में परिवर्तित किया:—

(अ) तुमसे किसी ने मरने पर कैसे हँसा जाता है ?

(ब) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा देश का बड़ा उपकार हुआ।

(स) पीतल से कलशा बनता है।

(द) मैं पत्र लिखता हूँ।

३—निम्नांकित वाक्यों के अर्थों में कोई भेद है या नहीं ? यदि है, तो क्या ? मैं नहीं बैठता। मुझसे बैठा नहीं जाता। पानी कौन पीवा

है ? पानी किससे पिया जाता है ? देवदत्त नहीं सोता है। देवदत्त से नहीं सोया जाता है। देवी हँसती है। देवी से हँसा नहीं जाता है। तुम जा रहे हो ? क्या तुम जा रहे हो।

४—निम्नलिखित वाक्यों के रूप परिवर्तित करो:—

(क) गर्मी में कड़ी धूप पड़ती है। (निषेध में)
(ख) ईश्वर ने संसार में अनेक पदार्थ बनाए हैं। (प्रश्नवाचक में)
(ग) लोगों ने स्त्री-शिक्षा की ओर ध्यान दिया है। (विधिवाचक में)
(घ) घड़े फूटे हैं। (प्रश्नात्मक में)
(ङ) डाकिया डाक लिये जा रहा है। (विधिवाचक में)
(च) परसों चले जाना। (प्रार्थना में)
(छ) वह मर गया। (विस्मयादिसूचक में)

शब्द और उनके अर्थ

१—वाच्यार्थ

१—बगुले का रंग श्वेत होता है।
२—सूर्य प्राची दिशा से निकलता है।
३—हाथी लोहे की शृंखला से बाँधा जाता है।

उपर्युक्त वाक्यों में आये हुए श्वेत, प्राची और शृंखला शब्दों पर विचार करो तो देखोगे कि इनका अर्थ बड़ा स्पष्ट है। बगुले का रंग श्वेत होता है। सूर्य पूर्व दिशा से निकलता है। ये ऐसी साधारण बातें हैं, जिन्हें सब लोग जानते हैं। अतएव 'श्वेत' और 'प्राची' के अर्थ अपने प्रयोग के कारण बड़े सरल हो गये हैं। इसी प्रकार 'लोहे की शृंखला' जिससे पशु बाँधा जा सके, जंजीर के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकती। अतः शब्दों के अर्थ उनके उचित प्रयोग से ही जाने जाते हैं।

बालकों को चाहिए कि शब्दों का प्रयोग बहुत समझ-बूझकर किया करें।

श्वेत, प्राची और शृंखला शब्दों का प्रयोग उनके साधारण अर्थ में किया गया है। इसको वाच्यार्थ कहते हैं और शब्दों की इस शक्ति का नाम अभिधा है।

२—लक्ष्यार्थ

१—प्रायः पैसेवालों के बड़े दिमाग़ होते हैं।
२—अनेक वीर झंडे की रक्षा में मर मिटे।
३—बैर और प्रेम के आँख नहीं होती।

पहले वाक्य में पैसे का अर्थ ताँबे का पैसा नहीं है क्योंकि आजकल दो-चार पैसे सभी के पास होते हैं। यहाँ पैसेवालों का अर्थ धनवानों से है। दूसरे वाक्य में झंडे की रक्षा में मर मिटना मूर्खता ही होती यदि झंडे का अर्थ कपड़ा लगा हुआ बाँस का डंडा होता। एक उखाड़ दिया जाय तो लाखों गाड़े जा सकते हैं। बात यह है कि झंडा जातीय गौरव और मान का चिह्न है। उसकी रक्षा देश के मान-मर्यादा की रक्षा है। इसी प्रकार आँख का अर्थ नेत्र नहीं है। आँख से देखने का काम लिया जाता है और अधिकतर लोग मित्रता व शत्रुता देखकर नहीं करते, उसका आधार तो कुछ और ही होता है। यहाँ आँख का अर्थ बिवेक शक्ति से है। शब्दों की यह शक्ति लक्षणा और इस प्रकार का किया हुआ अर्थ लक्ष्य कहलाता है।

३—व्यंग्यार्थ

१—किसी क्षीणकाय व्यक्ति के देखकर कहना कि आप बड़े मोटे हैं।

२—किसी स्थूल शरीरवाले से कहना कि कुर्सी कमज़ोर है।

३—जापान से रूस हार गया।

कभी-कभी शब्दों का अर्थ न अभिधा से निकलता है और न लक्षणा से वरन् किसी अन्य अर्थ की सूचना देता है। ऊपर के वाक्यों में 'बड़े मोटे' का अर्थ बहुत दुर्बल होने का है। 'कुर्सी कमज़ोर' कहने का तात्पर्य यह है कि आप बहुत मोटे हैं और 'जापान से रूस हार गया' का भाव बड़े की छोटे से पराजय है। इसको व्यंग्यार्थ कहते हैं और शब्द की इस शक्ति का नाम व्यञ्जना है। इसका प्रयोग ताना देने अथवा व्यंग्य करने में आता है, कविता में व्यंग्य का होना एक बहुत बड़ा गुण है।

४—तद्भव और तत्सम शब्द (अशुद्ध और शुद्ध शब्द)

भाषा-वृद्धि के लिए तद्भव और तत्सम शब्द का जानना विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य है। इससे भाषा में सौन्दर्य और रोचकता आती है। हिन्दी में सबसे अधिक संख्या तत्सम और तद्भव शब्दों की ही है। भाषा को सरल बनाए रखने के लिए यथासंभव तद्भव शब्दों का ही प्रयोग करना आवश्यक है। अतः यहाँ कुछ तद्भव शब्दों की सूची दी जाती है।

तद्भव (अपभ्रंश)	तत्सम (शुद्ध संस्कृत)
अजान	अज्ञ
अंधा	अंध
अपजस	अपयश
अच्छत	अक्षत
आग	अग्नि
आँसू	अश्रु

तद्भव (अपभ्रंश)	तत्सम (शुद्ध संस्कृत)
उल्लू	उलूक
उछाह	उत्साह
आज	अद्य
आधा	अर्ध
आस	आशा
आसरा	आश्रय
आम	आम्र
तिय	स्त्री
तिरिया	स्त्री
थल	स्थल
आठ	अष्ट
किवाड़	कपाट
कुल्हाड़ी	कुठार
आतर	आतुर
अस्वस्थ्य	अस्वस्थ
आरोग्यता	आरोग्य
आवश्यकीय	आवश्यक
अहोरात्रि	अहोरात्र
इतियादि	इत्यादि
इच्छा	इच्छा
जुवक	युवक
तुच्छ	तुच्छ
तैय्यार	तैयार
दुखदाई	दुःखदायी
दुरगति	दुर्गति
वेदाध्यन	वेदाध्ययन
पृकृति	प्रकृति

तद्भव (अपभ्रंश)	तत्सम (शुद्ध संस्कृत)
जाग्रिती	जागृत
व्यय	व्यय
प्रशन्नता	प्रसन्नता
गृहण	ग्रहण
शाशन	शासन
लालाइत	लालायित
विशम	विषम
स्वयं	स्वयम्
स्मर्ण	स्मरण
प्रन्तु	परन्तु
सौभाग्यता	सौभाग्य
स्त्रीयां	स्त्रियां
छपी	छिपि
निरभर	निर्भर
सुन्द्र	सुन्दर
प्राताकाल	प्रातःकाल
लीखे	लिखे
गिश्रा	गया
प्रिश्रम	परिश्रम
निरोत्साह	निरुत्साह
उपरोक्त	उपर्युक्त
उतपन्न	उत्पन्न
ऐक्यता	ऐक्य, एकता
क्रिपा	कृपा
कृतघनी	कृतघ्नी
दुष्टताई	दुष्ट

तद्भव (अपभ्रंश)	तत्सम (शुद्ध संस्कृत)
द्वन्द्	द्वन्द्व
द्वारिका	द्वारका
धीर्य, धैर्यता	धैर्य
निर्धनी	निर्धन
निःस्वार्थी	निस्स्वार्थ या निःस्वार्थ
परवर्तन	परिवर्तन
पहिला	पहला
सिथिल	शिथिल
स्मंजस	असमंजस
संसारिक	सांसारिक
श्रोत	स्रोत
पृथ्वी	पृथ्वी, पृथिवी
वृज	व्रज
विष	विष
सर	शर
व्रहत्	वृहत्
वर्सा	वर्षा
बसन	वसन
बस्त्र	वस्त्र
बह्नि	वह्नि
किम्बा	किंवा
संघार	संहार
भुजंगी	भुजङ्ग
उच्छ्वास	उच्छ्‌वास
बिघ्न	विघ्न
सम्बत्	संवत्

तद्भुव (अपभ्रंश)	तत्सम (शुद्ध संस्कृत)
स्त्रि	स्त्री
स्त्रीयों	स्त्रियों
हुवा	हुआ
कृषी	कृषि
कुच्छ	कुछ
निरस	नीरस
शाषा	शाखा
गुँड	गुण
शिघ्र	शीघ्र
शुन्य	शून्य
बृाह्मण	ब्राह्मण
प्रचिलित	प्रचलित
बहुव्रहि	बहुव्रीहि
बिशारद्	विशारद्
मनहर्	मनोहर
मनोर्थ	मनोरथ
बुद्धिवान्	बुद्धिमान्
भाष्कर	भास्कर
बेद्	वेद्
सद्ोपदेश	सदुपदेश
सन्मान	सम्मान
स्मसान	श्मशान
सामिग्री	सामग्री
एकत्रित	एकत्र
बाण	वाण
बानर	वानर

तद्भव (अपभ्रंश)	तत्सम (शुद्ध संस्कृत)
बामदेव	वामदेव
घनिष्ट	घनिष्ठ
दुरावस्था	दुरवस्था
बुराय्याँ	बुराइयाँ

नोट–तुलसी-कृत रामायण में निम्न शब्द मिलते हैं जो आजकल हिन्दी में प्रयोग नहीं होते। जैसे—भुअन (भुवन), भेउ (भेद), नाऊँ (नाम), समउ (समय), जोति (ज्योति), लोयन (लोचन), सीव (सीमा), सुतन्त्र (स्वतन्त्र), दह (दस), अपछरा (अप्सरा), सचिउ (सचिव), पसु (पशु), षेम (क्षेम), धरम (धर्म), जनम (जन्म), नाह (नाथ), जूहा (यूथ), द्रोह (द्रोह), समुहें (सम्मुख), हह (स्नेह), थिर (स्थिर) आदि।

५—पर्यायवाची या प्रतिशब्द (समानार्थक शब्द)

गृह ऐसा बनाना चाहिए जो सब ऋतुओं के लिए उत्तम हो। बस्ती से दूर घर बनाना अच्छा रहता है। यथासाध्य निवास स्थान का निर्माण खुली जगह में ही होना चाहिए। गंदे पानी के भरे हुए गड्डों तथा पोखरों के पास निकेत बनाना रोग मोल लेना है। स्वच्छ पानी या जलाशय के निकट भवन का निर्माण बहुत उपयोगी है। पर्वत के ऊपर वासस्थान स्वास्थ्य के लिए श्रेयस्कर है। सदन के लिए उच्चभूमि ही श्रेष्ठ होती है।

उक्त पैराग्राफ में गृह, घर, निवासस्थान, निकेत, भवन, वासस्थान और सदन शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। इनको पर्यायवाची या प्रतिशब्द कहते हैं। अक्सर नवसिखिये

एक ही शब्द का प्रयोग बार-बार किया करते हैं। पुनरुक्ति एक बहुत बड़ा दोष है। यह कानों को अच्छा नहीं लगता तथा भाषा का सौन्दर्य कम कर देता है। अतएव जहाँ तक हो सके, एक ही शब्द को बार-बार न लिखकर उसका प्रतिशब्द लिखना चाहिए।

६—कुछ पर्यायवाची शब्द

आकाश-व्योम, नभ, गगन, अम्बर, अन्तरिक्ष, ख।

अग्नि—वह्नि, कृशानु, पावक, अनल, हुताशन, वैश्वानधर।

कमल-अम्बुज, उत्पल, पद्म, नलिन, अरविन्द, तामरस, राजीव, सरोरुह, कुवलय, पुण्डरीक, सरसीरुह, इन्दीवर, सहस्रपत्र।

मेघ—बादल, अभ्र, धाराधर, वारिद, जलद, घन, जीमूत, मघ, बलाहक, नीरद, पयोद।

रात्रि—रजनी, निशा, यामिनी, विभावरी, क्षपा, तमिस्रा, शर्वरी, निशीथिनी।

बिजली-विद्युत, चंचला, चपला, क्षणप्रभा, सौदामिनी, बिज्जु।

सूर्य-भानु, अर्क, आदित्य, दिवाकर, मार्तण्ड, रवि, दिनकर, भास्कर, प्रभाकर, दिनमणि, मरीचिमाली, अंशुमाली, सविता, सहस्रांशु।

कल्पवृक्ष-पारिजात, मन्दार, कल्पद्रुम, कल्पतरु।

अधर—होट-ओंठ, ओष्ठ, रदच्छद, दशनवास।

अमृत-सोम, सुधा, पीयूष, अमी, सुरभोग, सुरस।

आम—आम्र, रसाल, पिकबन्धु, सहकार, मन्मथालय।

इन्द्र-शक्र, शचीपति, पुरुहूत, वासव, मघवा, पुरन्दर, सुरनाथ,

सुरेश, नाकपति, जिष्णु, वज्री, मेघ वाहन, वृत्रहा, मरुत्वान, बिडौजा ।

खल—दुष्ट, नीच, कुटिल, दुर्जन, शठ, लंठ, पामर, अधम, धूर्त, कुधी, मूर्ख ।

आनन्द—आह्लाद, प्रसन्नता, हर्ष, मोद, प्रमोद, प्रमद, आमोद, सुख, विहार, चैन ।

ईश्वर-प्रभु, ब्रह्म, परब्रह्म, परमात्मा, ईश, हरि, विश्वनाथ, भगवान् ।

कामदेव—काम, कुशमेश, कबंध, पञ्चशर, पुहुपचाप, मदन, मनोभव, अनङ्ग, अतनु, आत्मज, आत्मभू, कुसुम-वाण, मार, मनिकेतु, रतिपति, वारिज केतु, स्मर, विश्वकेतु, मन्मथ, मनोज, मथन, कन्दर्प ।

चन्द्रमा-हिमांशु, इन्दु, विधु, निशापति, सोम, मृगांक, कला-निधि, चन्द्र, शशि, सुधांशु, निशाकर, औषधेश, मयंक, शशांक, राकेश, सुधाधर ।

गदहा—खर, रासभ, गर्दभ, बैसाखनन्दन ।

किरण-रश्मि, कर, अंशु, मरीचि, मयूख ।

क्रोध—रोष, गुस्सा, अमर्ष, कोप ।

गणेश-गजानन, विनायक, एकदंत, गणाधिप, गिरिजानन्दन, विघ्नराज ।

इच्छा-अभिलाषा, लालसा, कामना, वाञ्छा, कॉक्षा, स्पृहा, ईहा, लिप्सा, मनोरथ, काम ।

पर्वत—पहाड़, अद्रि, अचल, नग, शैल, गिरि ।

पत्थर—पाषाण, उपल, अश्म, पाहन, प्रस्तर ।

पात्र—भाजन, बर्तन, भाण्ड ।

पृथ्वी—भूमि, भू, पृथ्वी, अचला, धरा, धरित्री, धरणी, क्षोणी, क्षिति, वसुमती, वसुधा, वसुन्धरा, उर्वी, अवनि, मेदिनी, मही, धात्री, जगती।

भौंरा—अलि, मधुकर, भ्रमर, भृङ्ग, षट्पद, द्विरेफ, भँवर, मधुप।

ब्रह्मा—विधि, विधाता, विरञ्चि, चतुरानन, पितामह, स्वयम्भू।

ब्राह्मण—विप्र, द्विज, अग्रजन्मा, भूदेव, महिसुर, भूसुर, महिदेव।

मनुष्य—नर, आदमी, मानुष, मनुज, मानव, पुरुष, मर्त्य, लोग।

शराब—मदिरा, वारुणी, सुरा, मद, ब्रान्डी।

मस्तक—शिर, माथा, शीर्ष, उत्तमाङ्ग, ललाट, भाल, कपाल, भाग्य, प्रारब्ध।

मार्ग—रास्ता, पंथ, राह, अध्व, पथ, वर्त्म,।

मित्र—सुहृद्, सखा, दोस्त, वयस्क, स्वजन, अभिन्न हृदय।

मुँह—मुख, बदन, आनन, वक्त्र।

राजा—नृप, भूप, महीप, नरपति, भूपति, राव, नरेश, पार्थिव, महीपति।

मूर्ख—अज्ञ, मूढ़, अनभिज्ञ, अबोध, अज्ञानी, बालिश।

स्त्री—नारी, अबला, वनिता, महिला, अंगना, कामिनी, प्रमदा।

वायु—हवा, अनिल, समीर, मारुत, समीरण, वात, पवन, बयार।

वर्ष—साल, वत्सर, अब्द, हायन।

बैल—वृषभ, हलधर, बलीवर्द, वृष।

महादेव—शिव, ईश, शम्भु, पशुपति, शर्व, ईशान, शंकर, चन्द्रशेखर, गिरीश, मृत्युञ्जय, मदमारि, त्रिलोचन, हर, शैव।

विष्णु—अच्युत, गरुड़ध्वज, जनार्दन, चक्रपाणि, विश्वंभर, मुकुन्द, नारायण, हृषीकेश, दामोदर, केशव, माधव, गोविन्द, लक्ष्मीपति ।

साँप—सर्प, अहि, भुजंग, विषधर, काल, फणी, उरग, पन्नग, नाग ।

शत्रु—बैरी, रिपु, अरि, विपक्षी, अमित्र, परिपन्थी ।

समय—वक्त, काल, वेला, टाइम ।

शेर—सिंह, नाहर, केसरि, मृगेन्द्र, पञ्चमुख, हरि, केहरि, वनपति ।

समुद्र–सागर, अब्धि, पारावार, उदधि, नीरधि, सिन्धु, अर्णव, वारीश, पयोधि, रत्नाकर, जलधि ।

चतुर—प्रवीण, विज्ञ, नागर, निपुण, दक्ष, कुशल, बुद्धिमान्, सयाना ।

श्रीकृष्ण–कंसारि, जसोदानन्दन, मेघवपु, घनस्याम, पूतनारि, द्वारिकाधीश, केशीदमन ।

वन—कानन, जंगल, अरण्ड, विपिन ।

यमुना–कालिन्दी, रविसुता, रवितनया, रविनन्दिनी ।

छाती–वक्षःस्थल, उर, हृदय, उरस्थल, कलेजा, सीना ।

सुन्दर–रमणीक, मनोहर, वल्गु, ललित, कलित, अच्छा, श्रेष्ठ, मञ्जु, मंजुल, ललाम, उत्तम, भूषण, मनोज्ञ, मनभावन, सुहावना ।

पत्ता—पात, पत्र, किशलय, दल, बरह ।

टेढ़ा—वक्र, बाँका, तिरछा, कुटिल ।

स्तुति—बंदना, नमस्कार, प्रणाम, विनती ।

पीतम–स्वामी, प्रियतम, धव, प्रिय, प्यारा, प्राणनाथ, प्रियवल्लभ ।

पिता—बाप, जनक, तात, पितु, पितृ, फ़ादर ।
कोयल—कोकिल, पिक, श्यामा, परभृत ।
चिट्ठी—पत्री, पत्र, पाती, ख़त ।
पेड़—वृक्ष, द्रुम, पादप ।
ढाक—किंशुक, पलास, टेसू , घिडल ।
दास—भृत्य, नौकर, सेवक, चाकर, भक्त ।
गङ्गा—सुरसरि, विष्णुपदी, जह्नुसुता, त्रिपथगा, भागीरथी, सुरधुनी, जाह्नवी, भीष्मसू , ध्रुवनन्दा, देवनदी ।
घोड़ा-बाजी, सैन्धव, तुरङ्ग, अश्व, रविसुत, हय, हरि, घोटक, कच्छी, तुरङ्ग, तुरङ्गम ।
कवच—तनुत्र, वर्म, सन्नाह, कंकटक, जागर ।
बाग—वाटिका, उपवन, उद्यान, बगीचा, आराम ।
बसन्त-कुसुमाकर, ऋतुराज, मधु, माधव, पुष्पागम, पिकानन्द ।
बन्दर-बानर, कपि, शाखामृग, कीश, मर्कट, हरि, कपीश ।
बुद्धि—मनीषा, धी, प्रज्ञा, मति, मेधा, ज्ञप्ति, धिषणा ।
मोर-नीलकंठ, केकी, शिखी, सारंग, कलापी, मयूर, बर्हि, अहिभखी, घनानन्द ।
मछली—सफरी, मीन, मकर, अंडज, मत्स्य, झष, शकली, पाठीन, उलूपी ।
भौंह—भृकुटि, भ्रू , तन्द्रिका, अमीला, भौं, भँव ।
मृग—हरिण, कुरिया, रुरु, करसायर, कृष्णसार, भीरुहृदय, मृडीक ।
मेंढ़क-दादुर, मंडूक, दर्दुर, भेक, शालूर, सव, वर्षाभू ।
मोक्ष-कैवल्य, अमृत, अपवर्ग, निर्माणपद, निर्भय, महासिद्धि ।
मुर्गा—अरुण, अरुणशिखा, कुक्कुट, चरणायुध, ताम्रचूड़ ।

दैत्य-राक्षस, दनुज, असुर, सुररिपु, इन्द्रारि, दैतेय, शुक्रशिष्य ।

बाण—खग, तोमर, विशिखि, इषु, पत्री, नाराच, शर शोषण, शायर, तीर, कंकपत्री ।

शब्द-नाद, निनाद, ध्वनि, रव, आरव, आरव, संराव, विवरा, स्वन, स्वान, निस्वान, घोष, निर्घोष, निनद ।

सोना-कंचन, कनक, हेम, हाटक, तपनीय, जातरूप, कलधौत, हरि, चामीकर, हिरण्य, स्वर्ण, सुवर्ण ।

सेना-चमू, वाहिनी, कटक, दल, अनी, अनीक, सैन्य, विरूथिनी ।

हाथी—सिन्धुर, वारण, नाग, हरि, गज, मतंग, मातंग, मतंगज, सारंग, कुंजर, द्विरद, करभ, हस्ती, दन्ती, गयंद, पक्षी ।

हनुमान-पवनसुत, बजरंगी, अंजनीकुमार, पवनकुमार, महावीर, मारुति, मारुतेय, आञ्जनेय, केशरीनन्दन, कपीश्वर, रामदूत ।

पर्य्यायवाची शब्दों के सूक्ष्म अर्थ-भेद

पर्य्यायवाची शब्दों के अर्थों में भी बड़ी भिन्नता होती है। उनके सूक्ष्म अर्थों को जानकर ही उनका उचित प्रयोग करना चाहिए।

१—अज्ञान, अनभिज्ञ, अज्ञ, मूर्ख

अज्ञान-जिसके स्वाभाविक ज्ञान न हो; जैसे--तुम बड़े अज्ञान हो जो सबसे लड़-बैठते हो ।

अनभिज्ञ-जिसे उस विषय के ज्ञान प्राप्त करने का समय न मिला हो; जैसे-मैं इस काम को नहीं कर सकता, क्योंकि मैं अनभिज्ञ हूँ ।

अज्ञ-जिसे ज्ञान न हो; जैसे-तुम बड़े अज्ञ हो जो ऐसा बर्ताव करते हो।

मूर्ख-जिसकी बुद्धि जड़ हो; जैसे-तुम्हें बहुतेरा समझाया, परन्तु मूर्ख ही रहे।

२—अहंकार, अभिमान, गर्व, दर्प

अहंकार-अपने को बहुत अधिक समझना; जैसे-तुम इस पद पर हो गये हो, इसी से तुम्हें इतना अहंकार है।

अभिमान-अपने को बड़ा और दूसरों को छोटा समझना; जैसे-अब तुम्हें इतना अभिमान है कि तुम किसी को कुछ समझते ही नहीं।

गर्व—धन, विद्या आदि के मद में चूर रहना; जैसे-धन पाकर सब को गर्व हो जाता है।

दर्प—दूसरों को दबाने की इच्छा; जैसे-तुम सेठ होकर इतना दर्प करते हो कि ग़रीबों को बोलने ही नहीं देते।

३—दुःख, शोक, खेद, क्षोभ, विषाद

दुःख-मानसिक पीड़ा; जैसे—कल रात से मुझे बड़ा दुःख हो रहा है।

शोक-चित्त की व्याकुलता; जैसे-मुझे पुत्र मरे का बहुत शोक है!

खेद—निराश होने की अवस्था; जैसे-खेद है कि आपने पत्र का उत्तर अभी तक नहीं दिया।

क्षोभ—असफलता या मन का चाहा न होने पर क्षोभ होता है; जैसे-मुझे व्यापार में बड़ा घाटा पड़ा है, इसीसे मुझे क्षोभ हो रहा है।

विषाद-कर्त्तव्याकर्त्तव्य की विमूति; जैसे-तुम्हें विषाद क्यों न हो, जबकि तुम किसी का अहसान नहीं मानते।

४—मित्र, सखा

मित्र—सुख-दुख, जीवन-मरण, आदि में साथ देनेवाला; जैसे-तुम मेरे सच्चे मित्र हो जो मुसीबत के समय काम आये।

सखा—साथ बैठने या खेलनेवाला; जैसे-तुम मेरे बालापन के सखा होकर अब मुझसे ऐसी बातें करते हो कि हम तुम को जानते ही नहीं।

५—दम्भ, पाखंड

दम्भ—गौरव दिखाने या सिद्ध करने के लिए झूठा आडम्बर करना; जैसे—वह ज्योतिषी कुछ नहीं जानता है, वह तो दम्भ फैलाये हुए है।

पाखण्ड-वह भक्ति और उपासना जो बिना निष्ठा के केवल दूसरे को दिखाने के लिए की जाय; जैसे—आजकल के पंडित लोग बहुत पाखण्ड किया करते हैं।

६—सेवा, सुश्रुषा

सेवा-बड़ों की परिचर्य्या; जैसे—गुरु की सेवा करना सेवक का परम धर्म है।

सुश्रुषा-रोगी या दुखी की परिचर्य्या; जैसे-सावित्री ने सत्यवान की बीमारी में बड़ी सुश्रुषा की।

७—लोभ, लालसा

लोभ-दूसरे की वस्तु लेने की इच्छा करना; जैसे-यह हाकिम बड़ा लोभी है।

लालसा—किसी वस्तु को प्राप्त करने की बहुत अधिक इच्छा करना; जैसे—मुझे घी ख़रीदने की बहुत लालसा है।

८—आधि, व्याधि

आधि-मन से सम्बन्ध रखनेवाले कष्ट होते हैं; जैसे-चिन्ता मनुष्य के लिए एक आधि है।

व्याधि-शरीर से सम्बन्ध रखनेवाले कष्ट होते हैं; जैसे-बुख़ार मनुष्य के लिए एक व्याधि है।

९—नमस्कार, प्रणाम, राम-राम, अभिवादन

नमस्कार-बड़ों और बराबरवालों के प्रति होती है; जैसे—पिताजी को चाचाजी ने नमस्कार किया।

प्रणाम—अपने से बड़ों के प्रति होता है; जैसे-स्कूल में गुरुजी को प्रणाम करना चाहिए।

राम-राम—प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक मनुष्य से कर सकता है; जैसे-मैंने अपने साथी से राम-राम की।

अभिवादन—अपना परिचय देकर प्रणाम करना; जैसे-शबरी ने वन में श्रीरामचन्द्र जी को देखते ही अभिवादन किया (अर्थात् अपना परिचय देकर प्रणाम किया)।

१०—श्रद्धा, भक्ति

श्रद्धा—बड़ों के गुण विशेष के कारण जो प्रेम उत्पन्न होता है; जैसे—मैं अपने गुरुजी से बहुत श्रद्धा रखता हूँ।

भक्ति-देवता या गुरुजनों में जो प्रेम होता है; जैसे—मीरा की कृष्ण-भक्ति प्रसिद्ध है।

११—अस्त्र, शस्त्र

अस्त्र-वह हथियार, जो फेंक कर मारा जाय अथवा जिससे कोई वस्तु फेंक कर मारी जाय; जैसे-इस युद्ध में बम, बन्दूक़ और तोप चल रहीं हैं।

शस्त्र-वह हथियार, जिसे हाथ में लिए हुए आघात किया जाय; जैसे-बर्छी एक अच्छा शस्त्र है।

१२—अवस्था, वय

अवस्था-उम्र; जैसे-यह लड़की पाँच की अवस्था की है।

वय-पूर्ण हुई उम्र; जैसे-मेरे गुरुजी की वय क्या थी?

१३—ह्रास, त्रुटि

ह्रास-बने बनाये काम का कोई अङ्ग बिगड़ जाय; जैसे-मेरी लगी लगाई नौकरी छूट गई इससे मुझे बड़ा ह्रास है।

त्रुटि-किसी काम में कोई कमी रह जाय; जैसे-इस पुस्तक के लिखने में कुछ त्रुटि रह गई है।

१४—मन, बुद्धि, हृदय, चित्त, अन्तःकरण

मन-अन्तःकरण का कार्यभेद से एक विभाग है जिससे संकल्प विकल्प होता है; जैसे-मेरा मन चाहता है कि देशाटन करूँ।

बुद्धि-जिसका कार्य्य विवेक या निश्चय करना है; जैसे-मेरी बुद्धि इस काम के करने में असमर्थ है।

हृदय-ज्ञान करनेवाली एक ज्ञानेन्द्रिय है; जैसे-इस राजा का हृदय बड़ा कठोर है।

चित्त-इससे बातों का स्मरण होता है; जैसे—यह सवाल मेरे चित्त से उतर गया है।

अन्तःकरण–यह भीतरी इन्द्रियाँ जो संकल्प-विकल्प, निश्चय, स्मरण तथा सुख-दुःख आदि का ज्ञान कराती हैं; जैसे–इस साधू का अन्तःकरण बिल्कुल शुद्ध है।

१५—उद्योग, उद्यम, उत्साह, चेष्टा, प्रयास

उद्योग—कार्य में लग पड़ना ; जैसे—मैं गाना सीखने का उद्योग कर रहा हूँ।

उद्यम—उद्योग की स्थिरता ; जैसे—'उद्यम कबहुँ नहिं छोड़िये, पर आशा के मोद।'

उत्साह–काम करने की उमंग होना ; जैसे—यूनानी बड़े उत्साह से लड़ रहे हैं।

चेष्टा—किसी कार्य का बाहिरी प्रयत्न ; जैसे–मुझे बस, तुम्हारे मिलने की ही चेष्टा थी।

प्रयास—सफलता के समीप उद्यम होना ; जैसे—श्रीरामचन्द्रजी के प्रताप से गिद्ध बिना प्रयास ही मुक्ति पा गया।

१६—परिश्रम, श्रम, आयास

परिश्रम—अपार मेहनत ; जैसे—रमेश का परिश्रम सफल हुआ क्योंकि वह परीक्षा में पास होगया।

श्रम—शरीर से मेहनत करना ; जैसे—तुमने आज यहां आने का क्यों श्रम किया ?

आयास—मन लगाकर मेहनत करना ; जैसे–इतिहास आयास से ही याद हो सकता है।

१७—लज्जा, ग्लानि

लज्जा–कोई अयोग्य कार्य हो जाने से दूसरों को मुँह दिखाने

की इच्छा न होना; जैसे—उसे अपने भानजे का धन खाने में बड़ी लज्जा आती है।

ग्लानि—अकेले रहने पर भी यदि वह बात चित्त में खटकती रहे; जैसे—तुम मुझसे इतनी ग्लानि क्यों मानते हो।

१८—वाद, तर्क, वितण्डा, गल्प, युक्ति

वाद—किसी निर्णय पर पहुँचने के हेतु युक्ति-प्रयुक्ति वाद है; जैसे—आज सनातनियों और समाजियों में बड़ा वाद हो रहा है।

तर्क—युक्ति की कसौटी; जैसे—तुमने उससे तर्क क्यों की, तभी तो वह चुप हो गया।

वितण्डा–स्वपक्ष स्थापना और परपक्ष निराकरण कथा विशेष होता है; जैसे–मेरा मित्र हरेश–हालाँकि बहुत ग़रीब था, तोभी महेश जो बड़ा धनाढ्य है, उसकी लड़की के विवाह से उसने अपनी लड़की का विवाह बड़े ज़ोर का किया।

गल्प—निःस्वार्थ किसी की झूँठी बात कहना; जैसे—उस मनुष्य ने शेर को एक लाठी से मार दिया।

युक्ति—कार्य का हेतु दिखलाना; जैसे–मैं उसको हानि पहुँचाने की युक्ति सोच रहा हूँ।

१६—पुत्र, बालक

पुत्र—अपना लड़का; जैसे—मेरे बड़े पुत्र का नाम वीरेन्द्र है।

बालक–कोई भी लड़का; जैसे—यह किसका बालक है जो रो रहा है।

२०—मेघ, धाराधर, पयोद, बादल

मेघ—गम्भीर। धाराधर–पानी बरसानेवाले। पयोद (पपीहा के प्रारम्भ) बादल-उच्छृंखल।

मेघ—आज आकाश में मेघ छाये हुए हैं।

धाराधर–आज पानी अवश्य बरसेगा क्योंकि आकाश धाराधरों से ढक रहा है।

पयोद—उमड़े हुए पयोद देखकर पपीहा 'पीहू-पीहू' बोलने लगता है।

बादल–आज आकाश बड़ा निर्मल है क्योंकि एक भी बादल दिखाई नहीं देता।

२१—उपकरण, उपादान

उपकरण–वह सामग्री जिसकी सहायता से कार्य पूरा हो; जैसे– इस कार्य के पूरा होने में मुझे अनेक उपकरण करने पड़े।

उपादान—वह पदार्थ जिससे कोई वस्तु बने। जैसे–तुम उपादान नहीं करते तो यह काम किसी भी प्रकार पूरा नहीं हो सकता था ?

५—अनेकार्थ (द्व्यर्थक शब्द)

कुछ शब्द एक से अधिक अर्थों में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें द्व्यर्थक शब्द कहते हैं। प्रकरण-भेद से इनमें अर्थ-भेद हो जाता है। ऐसे कुछ एक शब्द प्रयोग सहित नीचे दिये जाते हैं।

अक्षर—'अ' हिंदी वर्णमाला का पहला अक्षर (वर्ण) है।
अक्षर (अविनाशी), अनादि, अनंत का स्मरण करो।

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर (जवाब) देना सरल है।
तत्पुरुष वह समास है जिसमें उत्तर (पहला) पद प्रधान हो।

कनक—कनक (सोना) कनक (धतूरा) ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।
वा खाये बौरात है या पाए बौराय॥

कल—कल (बीता हुआ दिन) हम यमुना नहाने गये थे।
कल (आगे आनेवाला दिन) की छुट्टी रहेगी।
कल (चैन) नहीं पड़ती क्योंकि मेरे सिर में दर्द होरहा है।
छापे की कल (मशीन) से पुस्तकों की छपाई अच्छी होती है।

काल—काल (समय) तीन होते हैं; वर्तमान, भूत, भविष्यत्।
काल (मृत्यु) से संसार में कोई नहीं बचा।

सोना—सोना (सुवर्ण) एक सौ बीस रुपया तोला है।
दिन-रात सोना (नींद) अच्छा नहीं।

और—राधिका और (तथा) कमला, आज तमाशा देखने गई हैं।
आज मुझे और (अधिक) रुपये चाहिये।

कर—आपसे कर (हाथ) जोड़कर प्रणाम करता हूँ।
चन्द्रमा की करों (किरणों) में शीतलता होती है।
मैं १५०) माहवारी कर (टैक्स) देता हूँ।
ऐसा काम मत कर (करना क्रिया का विधि का रूप) जो दूसरों को बुरा मालूम दे।

काम—जब काम (कार्य) करोगे तभी पेट भरेगा।
काम (कामदेव) को शिवजी ने भस्म कर डाला था।
निष्काम (बिना लालसा के) कर्म करने से ही संसार की आवागमन छूटता है।

भाग—इसके दो भाग (टुकड़े) कर डालो।

बाग़ के दाँये भाग (हिस्से) में कोठरी बनी है।

तुम्हारा भाग (भाग्य) ही फूटा है।

इसको ४ से भाग (गणित की एक क्रिया) दो।

पक्ष—शिवजीके बाँये पक्ष (पार्श्व) में सदा पार्वती रहती हैं।

जिसके पक्ष (पंख) होते हैं उसे पक्षी कहते हैं।

हर माह में दो पक्ष (पखवारे) होते हैं।

इस युद्ध में विपक्षी का पक्ष (दल) हमारी सेना से सुसज्जित है।

कुछ अनेकार्थ शब्दों की तालिका

पत्र—पत्ता, चिट्ठी, पत्रा।

कोटि—करोड़, गोशा, (कोना)।

कला—६४ कलाएँ, सोलहवाँ हिस्सा।

ईश्वर—महादेव, समर्थ।

आली—पंक्ति, सखी।

अर्थ—धन, स्वार्थ, प्रयोजन, लिए।

अम्बर—वस्त्र, आकाश।

अर्क—सूर्य्य, आकवृक्ष, ताम्र, इन्द्र, विष्णु, जेष्ठ भ्राता।

अज—ब्रह्मा, बकरा, राजा दशरथ के पिता।

अपवाद—कलंक, वह नियम जो व्यापक नियम से विरुद्ध हो।

पुष्कर—आकाश, जल, तालाब, कमल।

आत्मज—पुत्र, कामदेव।

अंक—चिह्न, गोद, १, २, ३, ४, गिनती आदि।

तात—पिता, भाई, चचा, प्यारा, आदि।

दंड – डंडा, सज़ा ।

दल—समूह, पत्ता, पक्ष ।

द्रव्य—धन, वस्तु ।

द्विज—ब्राह्मण, पक्षी, दाँत, चन्द्रमा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ।

धर्म—स्वभाव, जैसे हिन्दू धर्म ।

धात्री—माता, आँवला, पृथ्वी, उपमाता ।

नाग—हाथी, सर्प ।

निमित्त—हेतु, हीला, शकुन ।

पतंग—पक्षी, सूर्य, पतिंगा, चंग ।

यम—यमराज, योग का एक अंग ।

योग—योगशास्त्र, मिलना ।

रश्मि—किरण, रस्सी ।

रस—नवरस, षट्रस, दवा, प्रेम, आनन्द, पारा ।

पात्र—स्थान, बरतन ।

पद—अधिकार, ओहदा, पाँव ।

पय—जल, दुग्ध ।

पोत—नाव, लड़का, नम्बर ।

पृष्ठ—पीठ, पीछे, सफ़ा ।

राग—प्रेम, रंग, गाने का राग ।

वन—जल, जंगल ।

वयस्—उमर, पक्षी ।

वर—श्रेष्ठ, वरदान, दुलहा ।

अमृत—जल, पारा, दूध, अन्न, स्वर्ण, अमृता (गिलोय) ।

बेला—कटोरा, एक बाजा, समय, फूल विशेष ।

छन्द—इच्छा, पद्य ।

अन्तर—आकाश, मध्य, छिद्र, अवसर, अवधि, अंतर्द्धान, व्यवधान ।

अनन्त-विष्णु, सर्पों का राजा, ब्रह्म, आकाश, अविनाशी अंतहीन।

अरुण-सूर्य, सूर्य का सारथी, रक्त वर्ण।

आत्मा—स्वरूप, ब्रह्म, परमात्मा, सूर्य, अग्नि।

उदय—उदयाचल पर्वत, उत्पत्ति, उद्भव, उत्थान, फलसिद्धि।

अचल-गतिहीन, दृढ़, स्थिर, अविचलित, पर्वत, अचला. (पृथ्वी) क्रिया हीन।

सन्तति-सिलसिला, लड़के वाले।

सन्धि-मिलाना, सुलह।

सर्ग—अध्याय, सृष्टि।

हरि—सूर्य, विष्णु, इन्द्र, सिंह, बानर।

सत्व—एक गुण, जीव।

शिव—कल्याण, महादेव।

शक्ति—बल, साँग, (अस्त्र), दुर्गा आदि शक्तियाँ।

विधि—रीति, ब्रह्मा।

विग्रह—लड़ाई, शरीर।

तनु—देह, छोटा।

मुद्रा-रुपया-पैसा, मोहर, शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों को विशेष रीति से रखना।

मित्र—दोस्त, सूर्य।

माला—फूलों आदि की माला, समूह।

मान-सम्मान, अभिमान, तौल, नाप।

मंत्र-सलाह, देवता का मंत्र।

मधु—शहद, शराब।

पतंग-कीट, सूर्य्य, कागज़ की पतंग।

शशांक—चन्द्रमा, मोर।

सावित्री–यमुना नदी, कश्यप ऋषि की पत्नी, आँवला।
हिरण्य—सोना, ज्योति, अमृत।
ह्रद—सरोवर, ध्वनि, नाद।
हेम—सोना, घोड़ा।
कोष—खजाना, शब्दों का कोष।
गुण—सत्व-रज-तम, हुनर, रस्सी, गुना।
गुरु—गुरु, बड़ा भारी।
ग्रहण–सूर्य्य-चन्द्र का उपराग, लेना, पकड़ना।
घन—घना, बादल, गणित में किसी संख्या को उसी से दो बार गुणा करना,
चित्र—तसवीर, विचित्र।
प्रान्त—सूबा, किनारा।
फल—परिणाम, वृक्ष का फल, तलवार आदि का फल।
बल—ताक़त, सेना, बलराम।
बलि–राजा बलि, बलिदान, उपहार, कर (टैक्स)।
भूत–प्राणी, प्रेत, पृथ्वी, आदि पंच भूत, बीता हुआ।

६—रूप और उच्चारण में बहुत कुछ समानता होते हुए अर्थ में भेद रखने वाले शब्द हिंदी भाषा में ऐसे अनेकों शब्द हैं जो रूप और उच्चारण में मिलते-जुलते होते हैं, लेकिन उनके अर्थों में अन्तर होता है। इन शब्दों का जानना भी रचना के लिए आवश्यक है। इनसे भाषा में लालित्य और सौन्दर्य आ जाता है। अभ्यास के लिए कुछ शब्द नीचे दिये जाते हैं।

उधार—रमेश मुझसे पाँच रुपये उधार ले गया है।
उद्धार–हे परमेश्वर ! मैं बड़ा पापी हूँ, आप मेरा भी इस संसार से उद्धार कर दीजिये।
ओर–अपनी ओर देखो दूसरे के दोष मत देखो।

और–राधा और शीला कल मथुरा से आवेंगीं ।
कुल–तुम्हारा कुल उत्तम है ।
कूल–आओ नदी के कूल पर बैठकर बातें करें ।
कोर–क्या तुम्हारी धोती की कोर भीगी है ?
कौर—आज लल्ला ने दो कौर खाना खाया है ।
क्रम–घर की प्रत्येक वस्तु क्रम से रक्खो ।
कर्म–जैसे कर्म करें मन मेरे, तैसे बेल बँधेंगे तेरे ।
पुरुष–यह कौन पुरुष है जो व्याख्यान दे रहा है ।
परष–किसी से परष (कठोर) बचन मत बोलो ।
पानी–पानी में बर्फ़ डाल दो ।
पाणि–आज राम का पाणिग्रहण (विवाह) है ।
प्रणाम–बड़ों को प्रणाम करो ।
परिणाम–इस कार्य का परिणाम (फल) अच्छा न होगा ।
प्रभाव–आप की बातों का अधिक प्रभाव पड़ा है ।
पराभव–अन्त में जर्मनी का पराभव (हार) हुआ ।
विजन–'विजन (मनुष्य रहित, एकान्त) देश है, निशाशेष है ।'
व्यजन—क्या तुम व्यजन (पंखे) से हवा करोगे ?
बिना—बिना परिश्रम किए सुख नहीं मिलता ।
वीणा—सरस्वती का बाजा वीणा है ।
समान–हे कर्ण ! तुम्हारे समान कोई दानी नहीं है ।
सम्मान–बड़ों का सम्मान करना ही छोटों का धर्म है ।
सुत–आज अर्जुन-सुत (पुत्र) अभिमन्यु युद्ध में मारा गया ।
सूत–श्रीकृष्ण ने महाभारत में सूत (सारथि) का कार्य्य किया था ।
अपेक्षा—कमला की अपेक्षा (बनिस्बत) शीला अधिक स्वस्थ्य है ।
उपेक्षा—तुम मेरी बात की उपेक्षा (तिरस्कार, उदासीनता) मत करो क्योंकि तुम्हारे ऊपर मेरा अधिक अहसान है ।

इसी प्रकार द्वीप (टापू); दीप (दीपक); प्रमाण (सबूत); परिमाण (अन्दाजा); प्रसाद (कृपा), प्रासाद (महल); वसन (वस्त्र), व्यसन (चसका), आकाश (गगन), अवकाश (फुरसत), तरणि (सूर्य), तरणी (नौका), तरुणी (युवती स्त्री), पड़ना, पढ़ना, लोटना, लौटना आदि शब्दों में रूप और उच्चारण में बहुत कुछ समानता होते हुए भी अर्थों में भेद हैं।

७—(क) कई रूप वाले शब्द, जिनका अर्थ एक ही होता है

१—अवनि, अवनी (पृथ्वी)
२—आलि, आली (सखी)
३—कटि कटी (कमर)
४—तरणि, तरणी (नाव)
५—धरणि, धरणी (पृथ्वी)
६—धूलि, धूली (रेत)
७—भ्रकुटि, भृकुटी (भौंह)
८—महि, मही (पृथ्वी)
९—श्रेणि, श्रेणी (कतार)
१०—प्रतिकार, प्रतीकार (उपाय)
११—प्रतिहार, प्रतीहार (द्वारपाल)
१२—परिहार, परीहार (निवारन)
१३—कलश, कलस (गगरा)
१४—शायक, सायक (वाण)
१५—वशिष्ठ, वसिष्ठ (मुनि विशेष)
१६—शूकर, सूकर (सुअर)
१७—स्वसुर, ससुर (सम्बन्धी)
१८—कोष, कोश (खजाना)
१९—किशलय, किसलय (पत्ते)

२७—परिहास, परीहास (हँसी)

७-(ख) भिन्न रूप वाले शब्द

१-मूसक, मूसिक (चूहा)
२-भ्रुकुटी, भृकुटि (भौंह)
३-विहग, विहंग, विहंगम (पक्षी)
४-तुरग, तुरंग, तुरंगम (घोड़ा)
५-भुजग, भुजंग, भुजंगम (सर्प)
६-अपिधान, पिधान (आवरण, ढक्कन)
७-दम्पति, दम्पती (स्त्री-पुरुष)
८-पृथिवी, पृथ्वी (धरती)
९-अमावास्या, अमावस्या (तिथि विशेष)
१०-पूर्णिमा, पूर्णमासी (तिथि विशेष)
११-तेल, तैल (स्नेह)

७—(ग) एक से अर्थ वाले दोहरे शब्द

आमोद-प्रमोद
हरा-भरा
हृष्ट-पुष्ट
देख-रेख
श्रद्धा-भक्ति
चहल-पहल
दौड़-धूप
घर-द्वार
जीव-जन्तु
रीति-नीति
बन्धु-बाँधव
चोर-डाकू

अनुनय, विनय
डाँटना-फटकारना
मार-पीट
पढ़ाई-लिखाई
खेल-कूद
गाना-बजाना
डील-डौल
नदी-नाला
खेत-खलियान
चित्र-विचित्र
बाल-बच्चे
कहानी-किस्से

आहार-विहार	जाँच-परताल
सेवा-सुश्रूषा	दूध-दही
धन-धान्य	जली-भुनी
खाना-पीना	लूट-मार
छान-बीन	चाल-चलन

७—(घ) एक ही शब्द की पुनरुक्ति

बार-बार	सोच-सोचकर
पुनः पुनः	पानी ही पानी
दिन दिन	राह—राह
दिनों दिन	नीचे—नीचे
मोटा-मोटा	कौड़ी—कौड़ी
आगे-आगे	कुछ-कुछ
हाथों-हाथ	बात-बात में

७—(ङ) कुछ शब्दों में निरर्थक जुड़े हुए शब्द

खोदना-खादना	आमने-सामने
जोड़ना-जाड़ना	जोड़-तोड़
धोना धाना	नोक-झोंक
गाल-माल	मेला-ठेला
चुप-चाप	चैन-चान
दाना-दुनका	सौदा-सट्टा

७-(च) वस्तुओं तथा विशेष जीव धारियों के शब्द

यद्यपि सभी जीवधारी कुछ न कुछ शब्द बोलते हैं, तथापि उनमें भेद करने की दृष्टि से उनके बोली के लिये भिन्न-भिन्न शब्द प्रख्यात हैं।

वस्तुओं के शब्द

१. घड़ी खट खट करती है। २. तेल छन छनाता है।
३. दाँत कट कटाते हैं। ४. पंख फरफराते हैं।
५. गाड़ी घड़ घड़ाती है। ६. चारपाई चर चराती है।
७. साँस चलती है। ८. दिल धड़कता है।

जीवधारियों के शब्द

१. गीदड़ 'हुवा हुवा' करता है। २. मेंढ़क टर्र-टर्र करता है।
३. भौंरा गुञ्जारता है। ४. गधा रेंकता है (ढैंचू ढैंचू करता है)
५. ऊँट बलबलाता है। ६. गाय रँभाती है।
७. झींगुर झिंकारता है। ८. बर्र 'बूँबूँ' करती है।

वस्तुओं के चलने के या हिलने के लिये उपयुक्त शब्द

१. नाव डगमगाती है। २. आँसू डब डबाते हैं।
३. आँखें चौंधियाती हैं। ४. मन डाँवाँडोल होता है।
५. झंडा फहराता है। ६. चील मँडराती है।
७. बिजली चमकती है। ८. साँप रेंगता है।

८—विपरीतार्थ या विलोम शब्द

कुछ शब्दों के पर्यायवाची नहीं होते। उनके विलोम शब्द ही उनकी उचित महिमा बढ़ाते और भाषा में सौन्दर्य लाते हैं। कभी-कभी विलोम शब्दों के प्रयोग से भाषा में ओज तथा चमत्कार आ जाता है। जैसे—

सुखी और दुःखी मनुष्य में आकाश-पाताल का सा अन्तर है। एक अपने धन-जन के मद में स्वर्ग भोग रहा है तो दूसरा अपने दुःख से दुःखी होकर नरक की यातना सह रहा है। इस संसरा

में सभी स्वतंत्र रहना चाहते हैं। परतंत्र रहने से मनुष्य ही नहीं वरन् पशु भी घबड़ाते हैं। यदि एक किसी के साथ नेकी करता है तो दूसरा बदी करने में नहीं चूकता। एक को मित्रता अच्छी लगती है तो दूसरा शत्रुता करने में ही अपना जीवन सफल समझता है। कहाँ तक कहा जाय किसी को कोई बात अच्छी लगती है और किसी को बुरी बात में ही आनन्द आता है।

कुछ विलोम शब्द

आदि	अन्त
शत्रु	मित्र
उद्यान	मरुस्थल
बरदान	अभिशाप
स्वाधीनता	पराधीनता
वसन्त	पतझड़
बढ़ती	घटती
पठित	अपठित
सावधान	असावधान
संयोग	वियोग
मान	अपमान
उचित	अनुचित
योग्य	अयोग्य
निन्दा	स्तुति
नया	पुराना
छोटा	बड़ा
झूठ	सच
पाप	पुण्य

जीवन	मरण
शीत	उष्ण
दुर्जन	सज्जन
क्रूर	अक्रूर
मलिन	अमल
निश्शस्त्र	सशस्त्र
हित	अहित
प्रातः	सायं
वादी	प्रतिवादी
अबेर	सबेर
भीरु	वीर
स्वदेश	विदेश
रुचि	अरुचि
तेजस्वी	निस्तेज
सिर	पैर
जेष्ठ	कनिष्ट
नेकी	बदी
भूचर	खेचर
साधु	असाधु
उत्तर	दक्षिण
सम्पत्ति	विपत्ति
जाम	खर्च
उत्थान	पतन
गुण	दोष
अनुराग	विराग
दुर्गन्ध	सुगन्ध
सधवा	विधवा

निग्रह	अनुग्रह
सज्जन	दुर्जन
उन्मज्जन	निमज्जन
उन्मीलन	निमीलन
सरस	नीरस
दाहिने	बाँयें
धीर	अधीर
उदार	कृपण
कल्याण	अकल्याण
नियम	अनियम
स्वस्थ	अस्वस्थ
स्वर्ग	नर्क
नियमित	अनियमित
ऐश्वर्य	अनैश्वर्य
विष	अमृत
कुटिल	अकुटिल
सत्य	मिथ्या
गमन	आगमन
साकार	निराकार
लौकिक	अलौकिक
वृद्ध	बाल
सुलेख	कुलेख
कृत्रिम	प्रकृति
आविर्भाव	तिरोभाव
पूर्व	पश्चिम
धूप	छाँह
दिन	रैन

उदय	अस्त
उन्नति	अवनति
अतिवृष्टि	अनावृष्टि
आदान	प्रदान
उत्कृष्ट	निकृष्ट
जय	पराजय
श्वास	उच्छ्वास
जड़	चैतन
ह्रस्व	दीर्घ
चर	अचर
ईश	अनीश
अर्वाचीन	प्राचीन
निन्दा	स्तुति
न्याय	अन्याय
आतप	अनातप
सत्	असत्
क्रय	विक्रय
सम	विषम
शीत	उष्ण
स्थूल	सूक्ष्म
श्रद्धा	घृणा
जेष्ठ	कनिष्ठ
आतुर	अनातुर
हानि	लाभ
आर्द्र	शुष्क
घातक	पालक
राव	रंक

सफल	विफल
प्रत्यक्ष	परोक्ष
कृतघ्नता	कृतज्ञता
श्रोता	वक्ता
सह्य	असह्य
नर	नारी
धनी	निर्धन
सन्धि	विग्रह
भविष्यत्	भूत
खण्ड	अखण्ड
सुर	असुर
दृढ़	द्रव
विरक्त	अनुरक्त

६—गूढ़ार्थ शब्दावली

शब्दों के गूढ़ार्थों का भी जानना रचना के लिए एक आवश्यक अंग है। इस लिए अभ्यास के लिए कुछ शब्दों के गूढ़ अर्थ दिए जाते हैं।

दस—१० विष्णु के अवतार, रावण के १० मुख, १० दिशाएँ, १० इन्द्रियाँ।

ग्यारह—११ इन्द्रियाँ, ११ रुद्र।

बारह—१२ राशियाँ, १२ महीने, १२ आदित्य, दर्जन में १२ इकाइयाँ।

चौदह—१४ विद्याएँ, १४ लोक, १४ मनु, १४ रत्न।

पन्द्रह—१५ तिथियाँ।

सोलह–१६ शृङ्गार, १६ कलाएँ, १६ संस्कार, रुपये में १६ आने, सेर में १६ छटाँकें।

अठारह–१८ उपपुराण, १८ पुराण, १८ विद्याएँ, १८ स्मृतियाँ, १८ नरक, १८ प्रत्यङ्गिरा देवी की भुजाएँ।

बीस—रावण के २० हाथ, २० नख, कौड़ी में २० इकाइयाँ, बीघे में २० बिस्वे।

चौबीस–२४ तत्त्व।

पच्चीस–२५ विष्णु के अवतार, २५ तत्त्व।

सत्ताईस–२७ योग, २७ नक्षत्र।

तीस—राशि या लग्न में ३० अंश, महीने में ३० दिन।

तेंतीस—३३ देवता।

चालीस–मन में ४० सेर।

उनचास–४९ पवन।

चौंसठ–६४ कलाएँ।

चौहत्तर–७४ चतुर्युगी (एक मन्वन्तर में)

अस्सी–८० वात विकार।

चौरासी–८४ लक्ष योनियाँ, ८४ आसन।

छान्नवे–९६ यज्ञो पवीत में चौवों की संख्या।

सौ—१०० वर्ष की मनुष्यायु।

एक सौ आठ– माला में १०८ दाने।

एक सौ बीस–१२० वर्ष की परमायु।

सहस्र—शेष के १००० फण, इन्द्र के १००० नेत्र।

९—(क)-शब्दों के द्वारा संख्याएँ लिखने की रीति

०—के लिए 'आकाश' शब्द तथा उसके पर्य्यायवाची शब्द।

१—के लिए पृथ्वी, चन्द्र आदि शब्द।

२—के लिए भुज' युग्म आदि शब्द।

३—के लिए राम, शिवनेत्र, गुण, अग्नि आदि शब्द ।
४—के लिए वेद, युग आदि शब्द ।
५—के लिए बाण तथा उसके पर्य्यायवाची शब्द ,
६—के लिए रस, ऋतु आदि शब्द ,
७—के लिए ऋषि, नग आदि शब्द ।
८—के लिए वसु आदि शब्द ।
९—के लिए नन्द, ग्रह, अंक आदि शब्द ।

'पहला शब्द इकाई बतलाता है, दूसरा दहाई, तीसरा सैकड़ा, चौथा हजार, इसी प्रकार आगे भी । महा कवि बिहारीलाल ने अपनी 'सतसई' के अन्त में ग्रन्थ-समाप्ति का समय इस प्रकार बताया है—

संवत ग्रह ससि जलधि छिति, छठि तिथि, वासर चन्द ।
चैत मास पख कृष्ण में, पूरन आनन्द कन्द ॥

अर्थात् ग्रह ९, ससि १, जलधि ७, छिति १ से बने संवत् १७१९ में ग्रन्थ समाप्ति हुई) ।

९—(ख) कुछ विशेष शब्द

हिन्दी में कुछ ऐसे विशेष शब्द हैं जिनका कि उच्चारण तो एक है परन्तु उनका आगमन भिन्न-भिन्न भाषाओं से हिन्दी में हुआ है, इस लिए उनका अर्थ भी भिन्न होता है, अतः उनका पृथक् मूल और अर्थ ज्ञातव्य है ।

	प्रथम अर्थ		दूसरा अर्थ
आम (हिन्दी)	फलविशेष,	आम (अरबी)	साधारण ।
आन ,,	लाज, दूसरा	आन ,,	समय ।
एतवार ,,	रविवार, आदित्यवार	एतबार (फारसी)	बिश्वास ।
कन्द (संस्कृत)	जड़, मूल	कन्द ,,	मिश्री, खाण्ड ।

कुन्द ,, पुष्प विशेष	कुन्द (अरबी) मलिन ।
कुल ,, वंश	कुल ,, सब, सम्पूर्ण ।
कोष ,, भण्डार	कोश (फारसी) कोस, दो मील ।
गोर ,, गोरा	गोर (अरबी) ध्यान ।
कान (हिन्दी) अङ्ग विशेष	कान (अपभ्रंश) कृष्ण ।
खैर ,, एक प्रकार की विशेष लकड़ी, कत्था	खैर (अरबी) अच्छा, कुशलता
चारा ,, घासादि	चारा (फारसी) उपाय ।
जरा (संस्कृत) वृद्धावस्था	ज़रा ,, तनिक ।
जाल ,, जाल, माया	जाल (अरबी) धोखा ।
देव ,, देवता	देव (फारसी) राक्षस ।
तूल (हिन्दी) तुलना	तूल (अरबी) लम्बाई, खींचना
तूल (संस्कृत) रुई	
नाना (हिन्दी) माता के पिता	नाना (संस्कृत) अनेक, विविध
पट ,, किवाड़, तुरन्त	पट ,, कपड़ा, परदा ।
रास ,, बाग (घोड़े आदि की)	रास ,, नृत्य ।
पर ,, ऊपर, अधिकरण कारक	पर ,, परन्तु, पराया दूसरा ।
पर (फारसी) पंख ।	
शकल (अरबी) सूरत, चेहरा	शकल (संस्कृत) टुकड़ा ।
सर (संस्कृत) तालाब	सर (फारसी) सिर ।
हाल (हिन्दी) पहिये का हाल	हाल ,, अवस्था, समाचार
बान (हिन्दी) आदत	बाण (संस्कृत) तीर ।
काम (हिंदी-अपभ्रंश से) कार्य	काम ,, से कामना, कामदेव ।

विद्यार्थी इन शब्दों के एक ही अर्थ साधारणतया जानते हैं, दूसरा नहीं। अतः उन्हें दोनों अर्थ को जानकर वाक्यों में ठीक प्रकार से प्रयुक्त करना चाहिए।

६—(ग) वाक्यों के लिए एक शब्द

१—जो उपकार का उपकार मानता है—कृतज्ञ।
२—जो उपकार का उपकार नहीं मानता है—कृतघ्न।
३—जो स्थान बालुका मय हो—मरुस्थान, मरुस्थल।
४—जो तर्क शास्त्र का जानने वाला हो—तार्किक।
५—जो विज्ञान शास्त्र का ज्ञाता हो—वैज्ञानिक।
६—जो मोल लिया हुआ पुत्र हो—क्रीक।
७—जो गोद लिया हुआ पुत्र हो—दत्तक।
८—जो संपत्ति पिता से प्राप्त हो—पैतृक।
९—जो सब कुछ जानने वाला हो—सर्वज्ञ।
१०—जो धन का दुरुपयोग करता है—अपव्ययी।
११—जो किसी को न डरे—अभय।
१२—जिसका मूल्य अधिक हो—महगा।
१३—जिसका वर्णन न हो सके—अवर्णनीय, वर्णनातीत।
१४—जो चिंता से रहित हो—अचिन्तित, निश्चिन्त।
१५—जिस स्त्री का पति मर गया हो—विधवा या रांड।

मुहाविरे और कहावतें

जहाँ तक देखा गया है प्रत्येक भाषा में मुहाविरे और कहावतें पाई जाती हैं। इनकी रचना विलक्षण होती है और इनकी रचना में शब्दार्थ न लेकर लाक्षणिक अथवा कोई और ही अर्थ लिए जाते हैं। इनके एक निश्चित अर्थ भी होते हैं जिनका प्रयोग प्रायः सभी छोटे बड़े किया करते हैं। ग्रामों में प्रायः ग्रामीण लोग परस्पर की बातचीतों में मुहाविरों और कहावतों का प्रयोग किया करते हैं। इनका ज्ञान होना रचना के लिए बहुत आवश्यक है।

(क) मुहाविरों का अर्थ और प्रयोग

१—अपना उल्लू सीधा करना—मतलब पूरा करना ।
प्रयोग—आजकल के व्यापारी झूठा विज्ञापन निकाल कर ग्राहकों को फँसाते हैं और अपना उल्लू सीधा करते हैं ।

२—आग का पुतला—अत्यन्त क्रोधी, चिड़ैला ।
प्रयोग—वह परशुराम बड़ा ही आग का पुतला था जो कि जमदग्नि का पुत्र था ।

३—कलेजा ठंडा करना—सन्तुष्ट करना ।
प्रयोग—मित्र की बातों को सुनकर मेरा कलेजा ठंडा हो गया ।

४—आड़े हाथों लेना—कठोर बात कह कर लज्जित करना ।
प्रयोग—मैंने अपने मित्र के शत्रु को खूब ही आड़े हाथों लिया ।

५—कान भरना—किसी की चुग़ली खाना ।
प्रयोग—इस मनुष्य के किसी ने अवश्य ही कान भरे हैं ।

६—गले पड़ना—सिर होना, माथे मढ़ी जाना ।
प्रयोग—क्या करूँ, रामलाल का घोड़ा मेरे गले पड़ ही गया ।

७—घुटा हुआ—भारी चालाक ।
प्रयोग—ऐ लड़के, तू बड़ा घुटा हुआ है ।

८—चाल चलना—धोखा देना ।
प्रयोग—लेखराज मेरे साथ चाल चल गया ।

९—छक्के छूटना—घबड़ा जाना ।
प्रयोग—मैंने शत्रु के छक्के छुड़ा दिये ।

१०—तख़्ता उलटना—बने काम को बिगाड़ना ।
प्रयोग—शिवाजी ने मुग़लों का तख़्ता उलट दिया ।

११—दाँत काटी रोटी—अधिक मेल ।
प्रयोग—मेरी और लेखराज की दाँत काटी रोटी है ।

१२—थूक कर चाटना—कह कर फिर जाना ।
प्रयोग—तू बड़ा झूठा है, तैंने तो पंचायत में थूक कर चाट लिया ।

१३—दाँत खट्टे करना—बुरी तरह हराना ।
प्रयोग—इस वीर ने युद्ध में शत्रुओं के दाँत खट्टे कर दिये ।

१४—दाल गलना—काम बनना ।
प्रयोग—अब तो उसके मरने से उसकी दाल गलने लगी है ।

१५—पार पाना—जीतना ।
प्रयोग—बड़ी कठिनता से आज इस लड़ाई में पार पाई है ।

१६—नाम धरना—बुरा भला कहना ।
प्रयोग—यह लड़का बड़ा आलसी है इसी से तो सब जगह नाम धरवाता है ।

१७—पौ बारह होना—सफलता होना ।
प्रयोग—आज इस युद्ध में पौ बारह पाना बड़ा कठिन है ।

१८—भण्डा फोड़ना—भेद खोल देना ।
प्रयोग—आज मुझे तेरे ही शत्रुओं का भण्डा फोड़ करना है ।

१९—जूतियाँ चटकाना—मारे मारे फिरना ।
प्रयोग—वह तो नौकरी छूटने से जूतियाँ चटकाता फिरता है ।

२०—जी चुराना—काम में मन न लगना ।
प्रयोग—वह तो पढ़ने से जी चुराता है ।

२१—ख़ाका उड़ाना—बदनामी करना ।
प्रयोग—किसी का ख़ाका उड़ाना अच्छा नहीं है ।

२२--पानी चढ़ना--रंग आ जाना।
प्रयोग--इस मुलम्मा पर सोने का पानी चढ़ा है।

२३—ठिकाने पहुँचाना—मार डालना।
प्रयोग--आज मैंने अपने विपक्षी को ठिकाने ही पहुँचा दिया।

२४--हाथ धोना—आशा खो देना।
प्रयोग--मैं उस काम से तो हाथ धो बैठा हूँ।
२५—हाथों हाथ-एक दम, तुरन्त।
प्रयोग--मैं उससे रुपये हाथों हाथ ले आया।

कुछ मुहाविरे विद्यार्थियों को अभ्यास के लिए अर्थ सहित नीचे लिखे जाते हैं:—
आँखें चार होना-साक्षात्कार होना।
टका सा जवाब देना-बिलकुल इन्कार कर देना।
थाली का बेंगन-स्वार्थी व्यक्ति।
भागीरथ प्रयत्न-कठिन परिश्रम करना।
भीम पराक्रम करना-आसाधारण कार्य करना।
किंकर्त्तव्य विमूढ़ होना-दंग रह जाना, अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाना।
हाथ धोकर पीछे पड़ना-जी जान से पीछे पड़ना।
मुट्ठी गरम करना-घूस लेना या देना।
बालू की भीत-शीघ्र नष्ट होनेवाली वस्तु।
बगलें झाँकना-बचाव सोचना।
बाल-बाल बचना-अत्यन्त संकट से किसी तरह बच जाना।
बोल बाला होना-नाम पाना, ख्याति पाना।
भाड़ झोंकना-व्यर्थ समय नष्ट करना।
भीगी बिल्ली होना-भयभीत होना, दब्बूपन दिखाना।
मन के लड्डू खाना-मनमानी करना।

माथे पर बल पड़ना–अप्रसन्न होना।
मुँह पर हवाइयाँ उड़ना–काँतिहीन होना।
रंग में भंग होना–आनन्द में बाधा पड़ना।
अपना सा मुँह लेकर रह जाना–असफल होकर लज्जित होना।
अपनी खिचड़ी अलग पकाना–सब से अलग रहना।
अपने पाँव पर आप कुल्हाड़ा मारना–स्वयं अपना नुक़सान करना।
आँख उठाना–बुरी नियत से देखना।
आँख खुलना–होश आना।
आँखें लगना–सो जाना।
आँखें चार होना–आँख से आँख मिलना।
आँखें नीची होना–शर्मिन्दा होना।
आँखें नीली पीली करना–नाराज़ होना।
आँखें फेर लेना–प्रतिकूल हो जाना।
आँखों में धूल झोंकना–धोखा देना।
आँखें लड़ जाना–प्रेम हो जाना।
आँच न आने देना–कष्ट न होने देना।
आँसू पोंछना–दिलासा देना।
आकाश पाताल का अन्तर–बहुत अधिक भेद।
आकाश से बातें करना–बहुत ऊँचा होना।
आग में घी डालना–क्रोध को बढ़ाना।
आटा गीला होना–बहुत कठिनाई में पड़ना।
आटे दाल का भाव मालूम होना–कष्ट का अनुभव होना।
आड़े हाथों लेना–खरी खोटी सुनाना।
आपे से बाहर होना—क्रोध के आवेश में सुध खो बैठना।
आसमान पर चढ़ाना—अत्यधिक प्रशंसा करना।

आसमान पर थूकना—व्यर्थ परिश्रम करना ।

आसमान सिर पर उठाना—बहुत कोलाहल करना ।

आसमान से बातें करना—बहुत डींग मारना, बढ़-बढ़ कर बातें करना ।

इने गिने—थोड़े से ।

ईंट से ईंट बजाना—विध्वंस करना ।

ईद का चाँद होना—चिरकाल पीछे दर्शन देना ।

ऊँगली पर नचाना—वश में करना ।

उधार खाये बैठना—ताक़ में रहना ।

उधेड़ बुन—सोच विचार ।

उलटी गंगा बहाना—विपरीत बात करना ।

लँगोटिया यार—घनिष्ट मित्र ।

लम्बी चौड़ी हाँकना—व्यर्थ बातें करना ।

लट्टू होना—मस्त होना ।

लहू के घूँट पीना—क्रोध रोकना ।

लहू पसीना एक होना—अति कष्ट उठाना ।

लुटिया डुबोना—काम बिलकुल बिगाड़ देना ।

लेने के देने पड़ जाना—लाभ के स्थान में हानि पड़ना ।

लोहा मानना—अधीनता स्वीकार करना ।

लोहे के चने चबाना—अति कष्ट सहन करना ।

विष उगलना—दुर्वचन कहना ।

शैतान के कान कतरना—बहुत चालाक़ होना ।

श्रीगणेश करना—आरम्भ करना ।

सफ़ेद झूठ—सरासर झूठ ।

सब्ज बाग़ दिखाना—बहकाना ।

समझ पर पत्थर पड़ना—बुद्धि भ्रष्ट होना ।

साँप छछूँदर की दशा–दुविधा ।
सात घाट का पानी पीना–अनेक प्रकार का अनुभव प्राप्त ।
सात पाँच—चालाकी ।
सिक्का बैठना—प्रभुत्व जमाना ।
सितारा चमकना—भाग्य उदय होना ।
सिर आँखों पर—सादर स्वीकृति ।
सिर चढ़ाना–(१) प्राण नौछावर करना (२) लाड़ला बनाना ।
सिर धुनना—हाथ मलना ।
सिर नीचा होना—अप्रतिष्ठा होना ।
सिर पर आ जाना—बहुत समीप आ जाना ।
सिर पर खून सवार होना—जान लेने पर उतारू होना ।
सिर पर खेलना—कठिन काम करना ।
सिर पर हाथ धरना—सहायता करना ।
सिर पर सवार हो जाना—पीछे लग जाना ।
सिर मूँड़ना—ठगना ।
सिर से पैर तक—आरम्भ से अन्त तक ।
सिर से कफन बाँधना—मरने को तैयार होना ।
सीधे मुँह बात न करना—अभिमान करना ।
सौ बात की एक बात—निचोड़ ।
सोने की चिड़िया हाथ से निकल जाना—लाभ के द्वार बन्द हो जाना ।
स्वाहा करना—फूँक डालना ।
हँसते हँसते—प्रसन्नता से ।
हँसी उड़ाना—व्यंग्य पूर्ण निन्दा करना ।
हजामत करना—लूटना ।
हड्डियाँ निकल आना—शरीर दुबला हो जाना ।

हथियार डाल देना—हार मान लेना।

हराम का—बेईमानी से प्राप्त।

हवा उड़ना—झूठी ख़बर फैलना।

हवा से बातें करना—अति वेग से बातें करना।

हवा हो जाना—भाग जाना।

हाँ में हाँ मिलाना—ख़ुशामद कर दूसरे का मत मान लेना।

हाथ उठाना या चलाना—मारना।

हाथ कटाना—प्रतिज्ञा आदि से बद्ध हो जाना।

हाथ का मैल—तुच्छ।

हाथ पर हाथ धरे बैठना—निकम्मा बैठना।

हाथ के तोते उड़ जाना—अकस्मात शोक समाचार सुनकर सहम जाना।

हाथ खींचना—सहायता बन्द कर देना।

हाथ डालना—आरम्भ करना।

हाथ तंग होना—ख़र्चने को थोड़ा धन होना।

हाथ धोना—खो देना।

हाथ धोकर पीछे पड़ना—बुरी तरह पीछे पड़ना।

हाथ पकड़ना—सहायता देना।

हाथ पसारना—माँगना।

हाथ पैर जोड़ना—दीनता दिखाना।

हाथ पैर मारना—परिश्रम करना।

हाथ मलना—पछताना।

हाथ साफ़ करना—बेईमानी से ठगना।

हुक्का पानी बन्द करना—वहिष्कार करना।

होश उड़ाना—भय पर आशंका से दुखी होना।

कुछ क्रियावाची मुहाविरे

उड़ना—माल उड़ाना, रंग उड़ना, गुलछर्रे उड़ाना, बेपर की उड़ाना, बात उड़ाना।

लेना—लड़ाई मोल लेना, मोल लेना, सिर लेना, सुध लेना, थाह लेना, माल लेना।

फटना—पौ फटना, दिल फटना, पेट फटना, हृदय फटना, आकाश फट जाना, धरती फट जाना।

बनना—बनाना, बन आना, बात बनाना, मुँह बनाना, काम बनाना, बन पड़ना, बन जाना, स्वार्थ बनाना आदि।

कुछ अन्य क्रियावाची मुहाविरे

गुल खिलना, चढ़ बैठना, डबल पड़ना, हाथ उठाना, दाँत खट्टे करना, हाथ जमाना, जड़ जमाना, झटका मारना, टिमटिमाना, डकार जाना, काम देखना, पार होना, मुँह लगना, कमर कसना, दिन काटना, रंग जमना।

कुछ अन्य मुहाविरे

काँटे बोना, राई का पर्वत बनाना, छूत लगना, जली कटी सुनाना पैर उखड़ना, ज़मीन आसमान के कुलाबे मिलाना, आकाश-पाताल एक करना, हाथ धोकर पीछे पड़ना, टेढ़ी खीर, पलक मारना, तीन-पाँच करना, मिट्टी में मिल जाना, पसीने-पसीने होना, आँधी के आम, बुढ़ापे की लकड़ी, नदी तट के वृक्ष, कौड़ियों के मोल, तीन तेरह, हवा लगना आदि।

पशु पक्षियों की बोली तथा अन्य शब्दों के लिए कुछ खास मुहाविरेदार क्रियायें ही प्रयुक्त होती हैं।

हाथी चिंघाड़ता है। घोड़ा हिनहिनाता है। गधा रेंकता है। कुत्ते भौंकते हैं। बकरियाँ मिमियाती हैं। मोर कूकता है। भौंरे गुञ्जारते हैं। कोयल कुहू कुहू करती है। मक्खियाँ भिनभिनाती हैं। कौवे काँव-काँव करते हैं। पौ फटती है। चील मँडराती है। सिंह दहाड़ता है। इञ्जन सीटी देता है। चाँदनी छिटकती है। फूल खिलते हैं। गाय रँभाती है। साँप फुसकारता है, आदि।

अन्तर्गत कथाओं से सम्बन्ध रखनेवाले मुहाविरे

समुद्रसंतरण, लंकादहन, सीताहरण, द्रौपदी का चीर, अंगद का पैर, परशुरामकोप, भीष्म-प्रतिज्ञा, भगीरथ-प्रयत्न, कर्ण-दान, बलि-बन्धन, समुद्र-मंथन, प्रताप-प्रतिज्ञा, दशरथ-वचन, भिल्लिनी के बेर, हम्मीर हठ, महादेव की बरात, राम-राज्य, नारद-भ्रमण, गीता का ज्ञान, त्रिशुक होना, दुर्वासा-कोप; आदि।

अभ्यास

१—नीचे लिखे मुहाविरों का अपने वाक्यों में प्रयोग करो:—

आँख का काँटा, हवाई महल, पानी का बुलबुला, ख़ाक में मिलना, परशुराम का कोप, नाच नचाना, ख़ाक छानना, आग में घी डालना और ख़याली पुलाव पकाना।

२—नीचे लिखे गद्य-खण्ड में आये मुहाविरे ढूँढ़ो और उनका अर्थ बताओ:—

मोहन ने बहुत चाहा कि द्वेष की आग भड़कने न पाये; किन्तु परिस्थिति ने उसे विवश कर दिया। जिस दिन अलग-अलग चूल्हे जले वह फूट-फूट कर रोया। आज से भाई-भाई शत्रु हो जायँगे।

एक रोयेगा तो दूसरा हँसेगा। उसने बड़े परिश्रम से कुल के मेल का पौधा लगाया था। उसे अपने रक्त से सींचा था। उसका जड़से उखड़ना देखकर उसके हृदय के टुकड़े हुए जाते थे। मन मसोस कर रह गया। कई दिन तक घर में मुँह छिपाये पड़ा रहा। वह लोगों की आँख बचाकर निकल जाता और किसी से बात न करता।

कहावतें (लोकोक्तियाँ) और उनका प्रयोग

मुहाविरों की भाँति कहावतें भी भाषा की शोभा बढ़ाती हैं। दोनों में भेद यह है कि लोकोक्तियाँ वाक्य होती हैं और मुहाविरे वाक्यांश। लोकोक्ति के अर्थ हैं जो कही जांय अर्थात् जैसा लोग कहते चले आरहे हैं, वही लोकोक्ति है। मुहाविरों की भाँति कहावतें भी गढ़ी नहीं जातीं। उनके प्रयोग करने का एक अवसर होता है। मौक़े पर किसी चुभती हुई कहावत का कहना या लिखना बड़ा काम करता है। इनका प्रयोग उपदेश देने, बात को घुमाकर कहने तथा उपालंभ आदि होता है। ऐसे वाक्य अपने विलक्षण अर्थों द्वारा किसी सचाई को प्रकट करते हैं। किसी आम सचाई को लोकोक्तियों द्वारा वर्णन करने से भाषा का सौन्दर्य बढ़ जाता है। कहावतों को मसल, जनश्रुति अथवा किंवदन्ति नामों से भी पुकारते हैं। कहावतें निस्सन्देह भाषा का अलंकार, सभ्यता की द्योतक और ज्ञानोपार्जन की कुञ्जी हैं और उनका ज्ञान रखना कथनोपकथन एवं प्रस्ताव इत्यादि में प्रयोग करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए परमावश्यक है। यहाँ कुछ कहावतें और उनके अर्थ दिये जाते हैं।

संसार में जितनी भी संस्थाएँ हैं उनमें काँग्रेस सबसे श्रेष्ठ है। इस संस्था के अनुयायियों में सुपुत्र और कुपुत्र सभी प्रकार के लोग पाये जाते हैं। सुपुत्र अपने स्वदेश तथा दीन प्रजा के कल्याण का काम करते हैं और जो कुपुत्र हैं वे 'आँख के अन्धे नाम नयन सुख' होकर अपने स्वार्थ में लवलीन होरहे हैं। वे एक दो माह का कारावास भोग चुके हैं इसी से वे 'वे दाल भात में मूसरचन्द' होकर हर बात में अपनी टाँग अड़ाते हैं। ऐसे लोग किसी का भला तो करते नहीं वे 'अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बन कर' अनजान लोगों में अपनी शेखी बघारते हैं। वे उन ग्रामीण लोगों में से 'अन्धों में काना राजा' वाले हैं। उनको कुछ अधिकार भी मिल गये हैं। वे अपने अधिकारों का पालन 'नाच न जाने आँगन टेढ़ा' वाली कहावत के अनुसार करते हैं। वे ऐसे भी कार्य करते हैं जिनमें 'दमड़ी की बुलबुल टका हुसकाई' देते हैं तो भी उनका सरकार के यहाँ आदर होता है। इसका कारण यह है कि उनसे उच्चपद के अधिकारीगण भी 'लकीर के फ़क़ीर' हैं। यह माना 'दीवाल के भी कान होते हैं' लेकिन वे उनकी निंदा काँग्रेस के नाते नहीं सुनते। वे भी यह अच्छी तरह समझते हैं कि 'बहते दरिया में हाथ धोलें' फिर न मालूम हम इस जगह पर रहे या न रहे। अब तो सब प्रकार हमारी 'पाँचों उँगली घी में हैं।'

कुछ कहावतें तथा उनके अर्थ

साँप मरे न लाठी टूटे—आसानी से काम हो जाय और हानि भी न हो।

खोदने को पहाड़ निकलने को मुसरी—बड़े उद्योग का बहुत छोटा फल।

चिराग तले अँधेरा–अपने अवगुण दिखाई नहीं देते।

अकेला चला भाड़ नहीं फोड़ता–कठिन काम अकेले नहीं होते।

का वर्षा जब कृषी सुखाने–जब काम बिगड़ गया तब मिलना और न मिलना बराबर है।

जैसी करनी वैसी भरनी–कर्मों का फल अवश्य मिलता है।

काला अक्षर भैंस बराबर–बिलकुल मूर्ख।

ऊधो की लेनी न माधो की देनी–किसी से सरोकार नहीं।

आगे नाथ न पीछे पगहा–बिलकुल स्वतंत्र।

आग लगने पर कुँआ खोदना–आफ़त आने पर उपाय करना।

मुल्ला की दौड़ मसजिद तक–मनुष्य की गति सीमित होती है।

रस्सी का साँप बनाना–छोटी-सी बात को बहुत बढ़ा देना।

ताली एक हाथ से नहीं बजती–झगड़ा दोनों ओर से होता है।

नदी नाव संयोग—आकस्मिक भेंट।

बैर और प्रेम के आंख नहीं होती–शत्रुता और मित्रता वास्तविकता पर कम चलती है विचारों पर अधिक।

आंख के अंधे और गांठ के पूरे–मूर्ख पर धनवान्।

आप मरे जग परलै–प्राण हैं तो संसार है।

उलटा चोर कोतवाल को डांटे–अपराध करके किसी को डांटना।

ऊँची दुकान फीका पकवान–दिखावटी काम होना।

एक अनार सौ बीमार–जब एक चीज़ के सैकड़ों इच्छुक हों तब कहा जाता है।

एक पंथ दो काज—एक काम करने से दो काम या लाभ होना।

एक करेला दूसरा नीम चढ़ा–एक स्वयं खराब स्वभाववाला होना फिर संगत भी वैसी मिलना।

कोयलों की दलाली में हाथ काला—बुरी संगत में बुराई ही मिलती है ।

घर का भेदी लंका ढाहे—पारस्परिक फूट से घर का नाश होता है ।

चोर की दाढ़ी में तिनका–पापी स्वयं ही डर जाता है ।

जब तक साँसा तब तक आशा–मरने तक आशा लगी रहती है ।

जागे सो पावे, सोवे से खोवे–सावधान रहने से लाभ होता है ।

जैसी करनी वैसी भरनी—कर्मानुसार फल मिलता है ।

जैसा मुँह वैसी चपेट या जैसी तेरी तिल चामरी वैसे मेरे गीत–सामर्थ्य के अनुसार बोझ उठाना चाहिये ।

जैसा देश, वैसा वेश–-जिस देश में रहे वैसी ही रीति ग्रहण करनी चाहिये ।

थोथा चना, बाजे घना–काम न करनेवाला व्यक्ति बकवाद बहुत करता है ।

धोबी का कुत्ता घर का न घाट का–जो एक ठिकाने पर जम कर काम न करे, कभी एक में लगे कभी दूसरे में और किसी में सफल न हो, उसे कहा जाता है ।

नदी में रहकर मगर से बैर–जिसके अधीन होकर रहे उसीसे यदि बैर करे तो गुज़ारा नहीं होता ।

न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी–जिससे नुक़सान हो उनका नाश ही कर देना अच्छा ।

नीम हकीम जान का ख़तरा—अधूरा ज्ञान हानिकर होता है ।

बेकार से बेगार भली–खाली रहने से बिना वेतन काम करना ही अच्छा है ।

मान न मान मैं तेरा मेहमान—ज़बर्दस्ती गले पड़ना।

मियाँ की जूती मियाँ के सिर—किसी व्यक्ति की वस्तु से उसी की हानि करना।

होनहार बिरवान के होत चीकने पात—होनहार के लक्षण पहले ही से दीख जाते हैं।

अभ्यास

१—नीचे लिखी कहावतों के अर्थ बताओः—

नौ नगद न तेरह उधार, तुम डाल-डाल हम पात-पात, अधजल गगरी छलकत जाय, गधे की गौन में नौ मन की झूल, एक मछली सारे तालाब को गन्दा करती है, रस्सी जल गई पर ऐंठ न गई।

२—नीचे लिखी कहावतें किस अवसर पर कही जाती हैं:-

गागर में सागर भरना, जैसे नागनाथ तैसे साँपनाथ, चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाय, घर के मर्द हैं, अंगूर खट्टे हैं, कुछ दाल में काला है, गड़े मुर्दे उखाड़ना, संगति ते गुन होत है, संगति ते गुन जाय; प्रकृति मिले मन मिलत है, अनमिल ते न मिलाय; लात खाय पुचकारिये, होय दुधारू धेनु; वर मरो या कन्या मरो, मेरी गोद में भाड़ा भरो; विष तरुवर हू रोप के, कोउ न काटत हाथ; शिकार को गये खुद शिकार हो गये; समय पाय तरुवर फलैं, कैतिक सींचो नीर; समरथ को नहिं दोष गुसाईं; सावन के अन्धे को हरा ही हरा सूझता है; सूप बोले तो बोले—चलनी भी बोले, जिसमें बहत्तर छेद।

चिह्न-विचार (Punctuations)

जब हम बातचीत करते हैं, तो हमारे शब्द उच्चारण का प्रवाह समस्त भाषण में एकसा ही नहीं रहता। जहाँ-तहाँ इसलिये कहीं-कही ठहरने की आवश्यकता होती है कि सुनने-वाले हमारा अभिप्राय ठीक प्रकार से समझलें। पढ़नेवाले भी उसे इसी प्रकार समझलें, इसलिए लिखने में भी यह बात प्रकट करनी उचित है कि हम कहाँ-कहाँ कितने ठहरे हैं और कहाँ हमारी बात पूरी होगई है एवं कहाँ-कहाँ हम अपने किन-किन मनोभावों को किस गति से प्रकट कर रहे हैं। इस कार्य्य के लिए भिन्न-भिन्न चिह्न नियत किये गये हैं जिनको विराम (विश्राम या ठहराव) चिह्न कहा जा सकता है।

विराम चिह्न निम्नलिखित हैं:—

अल्पविराम (कामा) ,

अर्धविराम (सैमीकोलन) ;

अपूर्ण विराम (कोलन) :

पूर्णविराम (स्टौप या पाई) ।

प्रश्नबोधक ?

विस्मयादिबोधक !

निर्देशक (डैश) —

योजक (हाइफ़न) -

कोष्ट (ब्रैकट) ( )

उद्धरण चिह्न " " या ' '

लाघव चिह्न ०

अक्षर छूट चिह्न ^

१—अल्पविराम—पढ़ते समय जिस स्थान पर बहुत थोड़ा ठहरना हो वहाँ अल्पविराम (,) लगाया जाता है।

(क) जब एक ही तरह के बहुत से पद, वाक्यांश या वाक्य इकट्ठे आ जायँ और उनमें कोई योजक पद न हो तो उनके बीच में अल्पविराम लगाया जाता है। जैसे—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चारों भाई थे।

(ख) सम्बोधन के बाद; जैसे—राधे इधर सुनो! जब सम्बोधन वाक्य के मध्य में होता है तो उसके पूर्व भी अल्पविराम लगाया जाता है। जैसे—देखो, बच्चो आज तुम्हें एक नई कहानी सुनावेंगे!

(ग) जहाँ परस्पर सम्बन्ध रखनेवाले दो शब्दों के मध्य में कोई पद, वाक्यांश या उपवाक्य आकर उन्हें अलग-अलग करदे तो उसके दोनों ओर अल्पविराम लगा देते हैं। जैसे—राजा के लिये, सब लोग, चाहे वे किसी धर्म और जाति के क्यों न हों, एक समान हैं।

(घ) 'वह' 'यह' या नित्य सम्बन्धी शब्दों के जोड़ का यदि दूसरा शब्द लुप्त हो तो वहाँ भी अल्प विराम लगाया जाता है। जैसे—वे, जो न करें, थोड़ा है।

(ङ) उक्ति या उद्धरण के पूर्व भी अल्पविराम लगता है। जैसे—राम बोला, "अब मेरी बात मानो।"

(च) यदि संयुक्त वाक्य का प्रारम्भ, इससे, अतएव, इसलिये, तभी, वरन्, किन्तु, परन्तु, पर और क्योंकि आदि शब्दों से हो तो उसके पहले भी अल्पविराम का प्रयोग होता है। जैसे—वह दुष्ट है, इसलिये सब उससे घृणा करते हैं।

(छ) विषय को स्पष्ट प्रकट करने और सम्बन्ध को विशेषतया स्पष्ट करने के लिए भी अल्षविराम प्रयोग में आता है। जैसे—देखो हिन्दू कोड, सफ़ा तीन सौ पाँच, पैराग्राफ़ दस।

२—अर्ध विराम—यह चिह्न (;) वहाँ लगाया जाता है जहाँ अल्प विराम से अधिक देर तक ठहरना उचित हो

अथवा किसी वाक्य के दो खण्डों में से पहला खण्ड अपने अर्थ में पूर्ण हो और दूसरा उसकी व्याख्या आदि करता हो। जैसे—यह सम्वाद ज्ञात होते ही सर्वत्र आनन्द मनाया जाने लगा; प्रकाश किया जाने लगा ; नृत्य गान होने लगे; प्रीतिभोज दिये जाने लगे।

३—अपूर्णविराम-किसी वक्तव्य को यदि पृथक् प्रकट करना हो तो उसके पूर्व (:) चिह्न का प्रयोग करते हैं। जैसे—निम्नलिखित का अर्थ करो:—करका मनका छांड़िके मनका मनका फेर।

४—पूर्णविराम—प्रत्येक वाक्य की समाप्ति पर पूर्णविराम का प्रयोग होता है। जैसे—हिन्दी भाषा की उन्नति करो। कविता में पूर्वार्द्ध के पश्चात् पूर्णविराम की एक पाइ (।) और समाप्ति पर दो पाई (॥) प्रयोग होती हैं। जैसे—

राम-नाम लीयो नहीं, कियो न हरि से हेत।
ये नर योंही जाहिंगे, मूरा कौ सौं खेत॥

५—प्रश्नचिह्न-प्रश्न का बोध कराने के लिये पूर्णविराम के स्थान पर प्रश्नचिह्न (?) लगाया जाता है। जसे—संज्ञा किसे कहते हैं ?

६—विस्मयादिबोधक—विस्मय, शोक, हर्ष, आश्चर्य आदि भावों को प्रकट करने के लिए जो शब्द आते हैं उनके आगे (!) चिह्न लगा रहता है। जैसे-हाय ! हाय ! मेरा सवस्व लुट गया। सम्बोधन में भी इस चिह्न (!) का प्रयोग होता है किन्तु उसी समय जब किसी को दूर से या मनोविकार (क्रोध, आश्चर्य) आदि के साथ बुलाना हो। साधारणतया यदि किसी को सम्बोधन करना हो तो अल्पविराम से ही

काम लेते हैं। नाटकों में सम्बोधन के पीछे प्रायः विस्मयादि-बोधक चिह्न का प्रयोग होता है।

७—निर्देशक का प्रयोग प्रायः नीचे लिखे स्थानों में होता है :-

(क) विषय-विभाग सम्बन्धी प्रत्येक शीर्षक के पश्चात् और जहाँ उदाहरण देना हो वहाँ; 'जैसे' या 'यथा' आदि शब्दों के आगे।

(ख) वार्त्तालाप विषयक लेखों में वक्ता के नाम के आगे या जहाँ किसी की उक्ति आरम्भ हो, अर्थात् 'कहा', 'बोला', 'पूछा' आदि शब्दों के अनन्तर। जैसे—

राजा—द्वारपाल !

द्वारपाल—जो आज्ञा पृथ्वीनाथ !

अन्त में राजा ने पूछा—क्या इस घटना का तुम्हें पता नहीं है ?

द्वारपाल सँभल कर बोला—नहीं सरकार !

(ग) यदि वाक्य के मध्य में कोई स्वतन्त्र पद, वाक्यांश या वाक्य आ जाय तो उसके दोनों ओर भी इस चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे—राम ने कहा—ईश्वर उसका भला करे—मेरे प्राण बचा दिये।

(घ) वाक्य में किसी पद का अर्थ अधिक स्पष्ट करना हो या किसी बात को दुहराना हो तो भी इसका प्रयोग होता है। जैसे—यह तो बात का मूल्य है—केवल एक बात का।

ऐसे बहुत से-एक दो नहीं—लाखों लफंगे फिरते हैं।

८—योजक—समस्त जोड़नेवाले शब्दों में जहाँ सन्धि या संयोग न हुआ हो वहाँ प्रायः इस चिह्न (-) का प्रयोग

होता है। जैसे–भाई-बहन, आठ-दस, आदर्श निबन्ध-माला।

(क) लिखते समय यदि कोई शब्द पंक्ति में पूरा न लिखा जा सके तो आगे यह चिह्न लगाकर बाकी दूसरी पंक्ति में लिख देते हैं। जैसे—घूमते-घूमते परे-शान हो गया।

६—कोष्टचिह्न—यदि किसी पद या वाक्य का अर्थ रखना हो तो उसे कोष्ट के अन्दर रखा जाता है। जैसे—वह है पूरा हज़रत (शैतान) जो बक दे थोड़ा है। नाटक के अभिनय की प्रक्रिया को प्रकट करने के वास्ते भी कोष्ट का प्रयोग होता है। जैसे—विक्रम—[नैपथ्य में] ए शत्रुओं के रक्त की प्यासी भुजंगिनी निकल ! [दौड़ते हुए प्रवेश] विक्रम– [चौंककर] हैं यह क्या ! मेरे मित्र का सिर।

१०–उद्धरण दूसरे की युक्ति को जहाँ अविकृत रूप में लिखा जाता है वह उसके दोनों ओर ("   ") यह चिह्न लगा देते हैं। जसे—सेनापति बोला—"क़िले की ईंट से ईंट बजादो।"

११–लाघव चिह्न जो शब्द बहुत प्रसिद्ध हो या जिसे बार-बार लिखने की आवश्यकता पड़े, उसका पहला अक्षर लिख कर आगे लाघव चिह्न लगा देते हैं। जैसे—संमत्, मिति, तिथि, दिन आदि। सं०, मि०, ति०, दि० आदि।

१२–अक्षर छूट चिन्ह (‸) ऐसे स्थान पर लगाया जाता है जहाँ विषय लिखते-लिखते कोई अक्षर छूट जाता है तब यह ‸ चिह्न लगाया जाता है। जैसे–राम ने कहा–हे भाई
कोई
लक्ष्मण ! इसमें तुम्हारा ‸ दोष नहीं है। यह सब परमेश्वर की इच्छा है, आदि।

१३–रेखा, जिस वाक्य पर अधिक बल देने या ध्यान आकर्षित

करने की आवश्यकता हो वहाँ उस वाक्य के नीचे रेखा—
———— खेंचदी जाती है।

१४–जब कभी-कभी वाक्यांशों को छोड़ दिया जाता है तब वह यह चिह्न (.........) लगाया जाता है।

अभ्यास

१—अल्पविराम और पूर्णविराम कब लगाना चाहिए ?

२—नीचे लिखे गद्य-खण्डों में विरामदि चिह्नों का उचित प्रयोग करोः–

(क) सखी धन्य है तेरा अनुराग क्यों न हो समुद्र को छोड़ महानदी कहाँ जा सकती है और आम के बिना नये पत्तोंवाली माधवी को कौन ले सकता है।

(ख) प्यारे मोहन तुम कहाँ चले गये तुम्हारे वियोग में हम गोकुलवासी रोते हैं, कलपते हैं बिलबिलाते हैं हाय हमारे भाग्य में यही लिखा था।

(ग) अमर उजाला सम्पादक जीते रहो दूध बताशे पीते रहो। भाँग भेजी सो अच्छी थी फिर वैसी ही भेजना गत सप्ताह अपना चिट्ठा आपके पत्र में टटोलते हुए हरिद्वार कुम्भ स्नान के मेले के लेख पर निगाह पड़ी पढ़कर आपकी दृष्टि पर अफ़सोस हुआ भाई आपकी दृष्टि गिद्ध की-सी होनी चाहिए क्योंकि आप सम्पादक हैं।

३—नीचे लिखे गद्यांशों में जहां गलत विराम आदि चिह्न लगे हों उन्हें ठीक करो :–

(अ) उदयसिंह के चौबीस पुत्रों में से एक शक्तिसिंह भी थे, ये बड़े होनहार और तेजस्वी थे—किसी ज्योतिषी ने शक्तिसिंह के जन्म के समय ही कह दिया था कि ! बड़ा होवे

पर यह बालक अपने देश तथा जाति का द्रोही सिद्ध होगा ?

(ब) देश प्रेम ऐसी चीज़ है, अपने प्राण— प्यारे पुत्र के मारने की आज्ञा पिता के मुख से निकल रही है ? सालुम्ब्रा सरदार ने उदयसिंह के निकट घुटने टेक कर कहा " " (महाराज)—मेरी एक प्रार्थना सुन लीजिये और उसे पूरा करने का वचन दीजिए। महाराणा पहले तो सकुचाये और सोचने लगे कि न जाने वह क्या मांग बैठे। परन्तु सोच विचार कर बोले; (तुम क्या चाहते हो)

(स) प्यारे प्रताप ? महाराणा प्रताप ?? स्वतन्त्रता के सच्चे उपासक प्रताप ??? किधर हो !

तृतीय खण्ड

अनुच्छेद (पैराग्राफ़)

पूरा डेढ़ साल भी नहीं हुआ तब की बात है कि मोहन और उर्मिला नाम के दो बच्चे थे। दुर्भाग्यवश उनके माता-पिता स्वर्गवासी हो गये। दोनों बच्चे अनाथ हो गये और द्वार-द्वार की खाक छानकर रोटी माँग कर अपना पेट भरने लगे।

जब सन्ध्या होती तो कोई न कोई दया करके उन्हें सोने के लिए अपने घर में थोड़ी-सी जगह दे देता। ऐसा कोई स्थान न रह गया जिसे वे अपना कहते और जहाँ अपनी अच्छी मोटी वस्तुएँ रख सकते।

एक दिन भीख माँगते-माँगते जब शाम हो गई तो दोनों

बालक एक साधु की झोंपड़ी पर गये। उन्होंने साधु से कहा—'बाबाजी' दयाकरके हम लोगों को आज रात भर अपने झोंपड़े में पड़े रहने दो। प्रातःकाल होते ही हम चले जायेंगे। साधु ने उनकी बात मानली और रात भर वहीं पड़े रहने दिया।

१—ऊपर की कहानी मोहन और उर्मिला के सम्बन्ध में कही गई है। इसमें तीन अनुच्छेद हैं। हर पैरे में एक नई बात का वर्णन किया गया है। पहिले में मोहन और उर्मिला की स्थिति से परिचय कराया गया है, दूसरे में उनकी दयनीय दशा का वर्णन है और तीसरे में उनके साधु के यहाँ पहुँचने की घटना है। इस प्रकार प्रत्येक मुख्य बात एक दूसरे से अलग है। इन पैराग्राफ़ों को हम अन्य वाक्यों द्वारा बढ़ा भी सकते हैं। पहिले पैरा में उनके जन्म की तिथि, वंश-परिचय, माता-पिता की मृत्यु का कारण आदि बातें बताई जा सकती हैं। दूसरे में उनके बाल्यकाल की अन्य दुर्दशाओं का वर्णन किया जा सकता है और तीसरे में साधु और बच्चों की बातचीत अधिक हो सकती है, परन्तु ये पैराग्राफ़ मिलाये नहीं जा सकते।

२—इस प्रकार किसी कहानी अथवा लेख लिखने में विषय के अनुसार कई पैराग्राफ़ बनाने चाहिए। एक पैराग्राफ़ के मुख्य विचार एक ही होना ठीक है। उससे सम्बन्ध रखनेवाली अन्य बातें आ सकती हैं। परन्तु दूसरा भाव नहीं आ सकता। जसे—किसी की जीवनी लिखते समय पहिले अनुच्छेद में उसकी जन्म-तिथि तथा वंश-परिचय दो। दूसरे में बाल्यकाल और विद्याध्ययन तथा तीसरे में उसके कार्यों का वर्णन करो। यदि कोई घटना का वर्णन करना हो तो उनके लिए भी पृथक्-पृथक् परा बनाओ।

इसी प्रकार उसके चरित्र की आलोचना तथा मृत्यु आदि के सम्बन्ध में नये पैराग्राफ़ बनाने चाहिए।

अनुच्छेद का शीर्षक देना

व्यापार से मनुष्य जाति पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की योग्यता की परीक्षा क्या घर से ही होती है। इङ्गलैंड जर्मनी, जापान और अमेरिका आदि देशों के निवासी व्यापार के ही कारण इतने वैभवशाली हुए हैं। हमारे यहाँ पर आजकल छोटी से बड़ी सभी वस्तुएँ विदेशी ही दृष्टिगोचर होती हैं। आजकल उपर्युक्त देश व्यापार में बड़ी वृद्धि कर रहे हैं। इसी तरह हमारे देशवासियों को भी व्यापार करना आवश्यक है।

उक्त पैराग्राफ़ का प्रत्येक वाक्य व्यापार के सम्बन्ध में कुछ न कुछ कहता है, अतएव शीर्षक 'व्यापार' है। किसी पराग्राफ़ का शीर्षक चुनने के लिए हमें उसे कई बार पढ़ना चाहिए और देखना चाहिये कि लेखक की मंशा क्या है। वह किस बात पर जोर देता है और किसकी ओर बार-बार संकेत करता है। जिस मुख्य भाव को लेकर अनुच्छेद लिखा गया हो वही उसका शीर्षक है। शीर्षक सदैव छोटा होता है शीर्षक फड़कते हुए शब्दों में होना चाहिए, क्योंकि फड़कते हुए शब्द ही मनुष्य को आकर्षित करनेवाले हुआ करते हैं। शीर्षक विषयानुसार ही निर्धारित करना रचना में उत्तम माना जाता है।

लेख का शीर्षक बहुत सोच-समझ कर रखना चाहिए। सबसे मुख्य बात शीर्षक में ही होती है। इसके पढ़ते ही तुरंत पता चल जाता ह कि अमुक लेख में क्या विषय है। इसलिए शीर्षक चाहे छोटा हो चाहे बड़ा परन्तु वह गम्भीर और

भावपूर्ण अवश्य हो। जैसे:—'अनुवाद और व्याख्या' तथा 'वीर केशरी शिवाजी' आदि।

उपर्युक्त शीर्षकों को पढ़ते ही शीघ्र ही पता चल जाता है कि अनुवाद और व्याख्या करने का ढंग है और शिवाजी की जीवनी का वर्णन है।

रचना में शीर्षक चुनने का ज्ञान होना बहुत आवश्यक है क्योंकि बिना शीर्षक के लेख का रचना में कोई आदर नहीं। अतएव शीर्षक रचना का एक आवश्यक अङ्ग है। इसलिए अनुकूल शीर्षक चुनने की योग्यता उत्पन्न करने के लिए अच्छे-अच्छे लेखकों की रचनाओं को पढ़ते समय उनके निश्चित शीर्षक की महत्ता और अनुकूलता तथा उनके औचित्य पर विचार करना चाहिए। अतः शीर्षक बहुत ही आकर्षित शब्दों में रखना चाहिए।

अभ्यास

१—शीर्षक किसे कहते हैं? इसका निर्धारित करना रचना में क्यों आवश्यक होता है?

२—निम्नांकित शीर्षकों में से प्रत्येक दशा में किस वर्णन का आभास मिलता है:—

'काश्मीर—सुषमा', 'हल्दीघाटी का युद्ध' और हिन्दी 'भाषा का इतिहास।'

३—शीर्षक बनाने में किस बात का ध्यान रखना चाहिए?

४—किसी मेले का वर्णन करने के लिए तुम कितने पैराग्राफ़ बनाओगे? प्रत्येक का शीर्षक लिखकर बताओ।

४—नीचे लिखे गद्य को कितने अनुच्छेदों में विभक्त करोगे और लेख का शीर्षक क्या होगा:—

पुष्पों का रस जिसे मधु-मक्खी एकत्रित करती हैं 'मधु' कहलाता है। इसी को शहद भी कहते हैं। मक्खियां पुष्पों पर बैठकर रस को चूस लेती हैं; फिर अपने छत्तों में इकट्ठा करती हैं। जब बहुत-सा मधु एकत्रित हो जाता है, तो बहेलिया अथवा अन्य कोई मनुष्य छत्ते को तोड़ कर उसमें से मधु निचोड़ लेता है। मधु मक्खी झाड़ी; वृक्ष की खोंतर, डाली तथा घरों में कहीं भी जहां वह चाहती है अपना छत्ता रख लेती है। मधु का स्वाद मीठा होता है। यह लाल रंग का द्रवित लसदार पदार्थ है। सर्दी से जम जाता है। मनुष्य दूध या पानी में डालकर पीते हैं तथा दवाई के साथ खाया जाता है।

वाच्यार्थ या अर्थ

दिये हुए शब्दों का जो सीधा-सादा अर्थ निकलता है, उसे वाच्यार्थ कहते हैं। अर्थ में कठिन-कठिन शब्दों के अर्थ अन्वय स्पष्ट कर दिये जाते हैं। क्लिष्ट वाक्यों के गुप्त गम्भीर भावों को सरल वाक्यों में बदल दिया जाता है। उपमा, रूपक आदि अलंकारों तथा मुहावरों को साधारण रीति से समझाया जाता है। वाच्यार्थ में नया भाव लाने की आवश्यकता नहीं है और दिया हुआ कोई भाव छोड़ना न चाहिए। यदि कोई प्रसंग हो तो उसे थोड़ा-सा खोल देना चाहिए। जहाँ तक हो सके ऐसा स्पष्ट अर्थ अपने शब्दों के द्वारा देना चाहिए, जिसमें कोई बात छूटने न पावे। यदि कोई युक्ति-विशेष हो तो उसका साधारण अर्थ दे देना चाहिए। जैसे—(क)

आगे चना गुरु मात दिये ते लिये तुम चाबि हमें नहिं दीने।
श्याम कही मुसकाय सुदामा सों चोरी कि बानिमें हौजु प्रवीने॥

गाँठरी काँख में चापि रहे तुम खोलत नाहिं सुधारस भीने ।
पाछिली बानि अजौं न तजो तुम वैसे ही भाभी के तंदुल कीने ॥

प्रसंग

द्वापुर में सुदामा नामक एक दरिद्री ब्राह्मण थे। वह भगवान् श्रीकृष्ण के सहपाठी थे। श्री कृष्ण भी उन्हें बड़े भाई के सदृश मानते थे। भिक्षा से जब पूर न पड़ी तो सुदामा जी अपनी स्त्री के अनुरोध से द्वारिकापुरी में भगवान श्री कृष्ण के पास पहुँचे। चलते समय उनकी स्त्री ने थोड़े से चाँवल भेंट के लिये बाँध दिये थे क्योंकि और कुछ उनके पास न था चावलों की भेट को तुच्छ-वस्तु समझकर सुदामा जी लज्जावश देते न थे, तब श्री कृष्ण ने उनको उलाहना दिया।

अर्थ

हस कर भगवान् कृष्ण ने कहा कि पढ़ते समय (जब गुरु आज्ञा से जंगल में लकड़ी बीनने गये थे) गुरु माता ने जो चना दिये थे, आपने हमें नहीं दिये थे; चुरा के आपने ही खा लिये थे। आप चोरी करने में बड़े चतुर हैं। आपने पिछली टेव अब तक नहीं छोड़ी। भाभी के दिये हुए अमृत के रस में सने हुए चावलों को भी आप काँख में दवाये हुए बैठे हो, खोलते नहीं हो।

(ख) "आप दुखी न हों, इस राज्य को भरत को दे दें। हम सुख राज्य किंवा प्राण यहाँ तक कि स्वर्ग की भी इच्छा नहीं करते; हम सत्यबद्ध हैं, आपके सत्य को पालन करेंगे। पिता देवताओं से भी अधिक पूज्य हैं सो हम उन पितृदेव की आज्ञा पालन करने में कुछ भी कष्ट नहीं समझेंगे। चौदह वर्ष के पश्चात् लौट कर हम पुनः आप के श्री चरणों की बंदना करेंगे।"

प्रसंग

कैकई से वचन बद्ध होकर कि राजा दशरथ श्री रामचन्द्रजी को वनवास देने में हिचकिचाते हैं। वह बड़े ही व्याकुल हैं। उस समय रामचन्द्र जी उन्हें समझाते हैं :—

अर्थ

"हे पिता ! आप प्रसन्नता पूर्वक भरत को राज्य दे दीजिये। मैं सांसारिक सुख क्या स्वर्ग की भी इच्छा नहीं रखता, यहाँ तक कि मुझे प्राणों की भी परवा नहीं है। मैं सत्य से बँधा हुआ हूँ। सत्य का पालन करूँगा। भला देव तुल्य पूज्य पिता की आज्ञा मानने में कभी दुःख हो सकता है। चौदह वर्ष बाद लौट कर आपके सुन्दर चरणों का पूजन करूँगा।"

अभ्यास

१—नीचे लिखे अवतरणों का वाच्यार्थ लिखो :—

(क) कैसे छोटे नरनि तें, सरत बड़नि के काम।
मढ्यो दमामा जात कहुँ, लै चूहे के चाम॥

(ख) बेर-बेर बेर लै सराहैं बेर बेर बहु,
रसिक बिहारी देत बन्धु कहँ फेर फेर।
चाखि चाखि भाषैं यह बहुते महान मीठौ,
लेहु तौ लषण यों बखानत हैं हेर हेर॥
बेर-बेर देवैं बेर सवरी सुबेर बेर;
तौऊ रघुवीर बेर बेर तिहि टेर टेर।
बेर बेर जनि लखो बेर बेर जनि लावो,
बेर बेर जनि लावो बेर लावो कहैं बेर बेर॥

(ग) प्रीति वही प्रशंसनीय है जो निःस्वार्थ हो। किसी उपकार अथवा

उत्तमता की आशा से प्रीति करना प्रेम का निकृष्ट मार्ग है। निज प्रीति पात्र के अनजान में और उससे अपमानित होने पर जो प्रेम ध्रुव समान अटल रहता है, विबुधों की दृष्टि में वही उत्तम उत्कृष्ट गिना जाता है।

भावार्थ

भावार्थ या भाव का संक्षेपार्थ, आशय, तात्पर्य या तात्पर्यार्थ, मतलब, अभिप्राय, सारार्थ, सरलार्थ भी कहते हैं। इन शब्दों में प्रायः थोड़ा ही थोड़ा अन्तर है। इनमें भाव का ही देना आवश्यक होता है; परन्तु एक-एक शब्द का अलग अर्थ देना आवश्यक नहीं होता। इन सब का अभिप्राय यह है कि दी हुई बात के आशय को लिखा जाये। इन सब में शब्दों के अर्थों की चिन्ता न करनी चाहिए। केवल लेखक के भाव को अपने थोड़े से शब्दों में व्यक्त कर देना चाहिए। लेखक के विचारों को भावार्थ वाला ही स्पष्ट बतला सकता है क्योंकि वह शब्दों की ओर कम ध्यान देता है, वह केवल भावों को ही खोजता है। वह अलङ्कारों आदि की गुत्थियाँ सुलझाने में वाक्यों की क्लिष्टता, अन्तर्कथाएँ व प्रसंगों की दुरूहता दूर करने में बहुत सिर नहीं मारता, वह केवल इन सब के भाव को दो एक शब्दों द्वारा ही प्रकट कर देता है। वह वे भाव जो लेखक के हृदय की बातें, शब्दों के भीतर छिपी हैं, वह स्परूट उन्हें अपने शब्दों में खोल कर रखता है। कोई बात जो वाच्यार्थ से प्रकट नहीं होती वह इन अर्थों में प्रकट करदी जाती है। भावार्थ को जहाँ तक हो सके बड़ा न करना चाहिए। इसको छोटा ही रचना आवश्यक है। जैसे :—

सीस पगा न झँगा तन मैं प्रभु। जानै को आहि, बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी-सी लटी-दुपटी अरु पाँय उपानह की नहिं सामा॥

द्वार खरो द्विज दुर्बल देखि रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम बतावत आपनो नाम सुदामा ॥

भावार्थ—एक क्षीण शरीर ब्राह्मण जो फटे वस्त्र पहिने हुए नंगे पैरों है वह दरवाजे पर खड़ा हुआ दीनदयाल श्रीकृष्णचन्द्र जी का नाम पूछ रहा है और अपना नाम सुदामा बतला रहा है।

अभ्यास

१—नीचे लिखे अवतरणों का भावार्थ लिखो :—

(क) कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीति।
विपति कसौटी जे कसे, तेही साँचे मीत ॥

(ख) सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं ॥
नारद से सुक व्यास रटैं पचिहारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥

व्याख्या

व्याख्या में बहुत कुछ लिखने की आवश्यकता है। इसमें वाक्यार्थ और भावार्थ दोनों ही शामिल हैं। व्याख्या में किसी दिए हुए छन्द या अवतरण का पूर्णरूपेण प्रकरण या प्रसंग बताया जाता है। इसमें जटिल शब्दों और क्लिष्ट वाक्यों के अर्थों को समझाना चाहिए। समझाने में आवश्यकतानुसार अपनी ओर से उदाहरण भी दे देना चाहिए। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का पूर्ण विवरण देना चाहिए। यदि अन्तर कथाओं की ओर संकेत हो तो उन्हें संक्षिप्त रूप से अंकित करना चाहिए। फिर उन गूढ़ार्थों अथवा व्यंग्यार्थों को लिखना चाहिए, जो शब्दों में ऊपर से स्पष्ट नहीं होते अथवा जो लेखक के मन

में गुप्त भाव हैं। व्याख्या का साधारण अर्थ विशद रूप से समझाना है। व्याख्या लिखने में कमी न करना चाहिए। किसी अवतरण अथवा छन्द का आशय अथवा भावार्थ लिखने के उपरान्त उससे किसी प्रकार की यदि शिक्षा मिलती हो उसे भी अंकित करना चाहिए। कभी-कभी भावार्थ अथवा तात्पर्यार्थ पहले लिखकर फिर और व्याख्या की जाती है और कभी-कभी पूर्ण व्याख्या करने के उपरान्त भावार्थ तथा तात्पर्यार्थ आदि लिखना पड़ता है। व्याख्या में विशेष शब्दों का भी विवरण देना चाहिए। व्याख्या करने में जिन-जिन बातों की आवश्यकता पड़ती जाती है उन सब का यथायोग्य ही समावेश करना पड़ता है। व्याख्या में प्रत्येक बात को खोल-खोल कर स्पष्ट किया जाता है। किसी की व्याख्या पढ़ने से पाठकों को उसके सम्बन्ध में कुछ जानने की अभिलाषा नहीं रहती। व्याख्या ही रचना को सौन्दर्य्य देने वाली होती है। अतएव छात्रों को व्याख्या पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

जैसे:—(क) "पुत्रवती युवती जग सोई।
रघुबर भक्त जासु सुत होई॥
नतरु बाँझ भल बादि बियानी।
राम बिमुख सुत ते हितहानी॥
तुम्हरेहिं भाग्य राम बन जाहीं।
दूसर हेत तात कछु नाहीं॥"

व्याख्या:—जब लक्ष्मण जी श्रीरामचन्द्र जी को सीता जी सहित वन जाने के लिए तैयार देखते हैं तो वह श्रीरामचन्द्र से अनुरोध करते हैं कि मैं भी आपके साथ वन चलूँगा। मुझे भी अपने साथ ले चलिए। श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण जी को बहुत समझाते हैं, परन्तु वह प्रेम-वश नहीं मानते। वह बारम्बार वन

ले चलने का ही अनुरोध करते हैं। तब श्रीरामचन्द्र जी उनकी भक्ति देखकर कहते हैं कि अच्छा जाओ तुम अपनी माता से मेरे साथ वन चलने के लिए आज्ञा माँग आओ। इतना सुनते ही लक्ष्मण जी अपनी माता सुमित्रा के पास जाते हैं और वहाँ पहुँच कर अपनी माता से आज्ञा माँगते हैं तब उनकी माता उनको कैसा मनोहर उत्तर देती हैं—वह कहती हैं कि हे पुत्र लक्ष्मण! संसार में पुत्रवाली वही स्त्री है जिसका कि पुत्र श्रीरामचन्द्र जी का भक्त हो (यदि उस स्त्री का पुत्र ऐसा नहीं है तो) उसने तो वृथा ही प्रसूत की पीड़ा को सहन किया अर्थात् व्यर्थ ही पुत्र उत्पन्न किया क्योंकि श्रीरामचन्द्र जी से विमुख रहने वाले पुत्र से उसके हित की हानि होती है (ऐसा पुत्र किसी को सुख नहीं दे सकता और न स्वयं ही सुख पा सकता है) इन सब बातों के होते हुए तुम्हारे लिए दूसरी बात यह अच्छी है कि रामचन्द्र जी तो तुम्हारे भाग्य से ही वन को जा रहे हैं। हे पुत्र लक्ष्मण! उनके वन जाने के तुम्हारे अतिरिक्त और दूसरा कारण नहीं है (देखो, तुम शेषावतार हो, शेष के ऊपर पृथ्वी है और पृथ्वी पर राक्षसों का बोझ बढ़ रहा है। वह राक्षसों को मारेंगे तो तुम्हारा बोझ हलका हो जायगा। इसमें तुम्हारा ही भला है) इससे हे पुत्र! जो तुमने सोचा है वह ठीक है।

उदाहरण—(ख)

"राम इस बात को सुन कर अत्यन्त क्रोधित हुए और कहने लगे—वत्स! तुम हमारे सामने यह बात फिर न कहना, इस बात के सुनते ही, ध्यान आते ही मैं बहुत लज्जित होता हूँ!"

व्याख्या:—अन्तःपुर में सीता के मनोरंजन के लिये जिस समय चित्रकार रामचन्द्रजी के कार्यों का चित्रपट दिखा रहा था, उस समय लक्ष्मण सीता जी के अग्नि-परीक्षा काण्ड की

ओर संकेत करके उसकी चरचा करने लगे। अपने पहिले किए हुए कठोर व्यवहार से दुःखित होकर रामचन्द्र जी लक्ष्मण जी से प्रेम-पूर्वक बोले—"ऐसे सरल और पवित्र स्वभाववाली सीता जी की अति कठोर अग्नि-परीक्षा हुई। हमारे सामने जैसे भ्रातृ भक्त भाई से ऐसी बात कहा जाना ठीक नहीं। इस अग्नि-परीक्षा का जब मुझे ध्यान आता है, मेरा हृदय अत्यन्त दुःख से भर जाता है और बड़ी लाज आती है; अतः अब इस बात को फिर मत कहना।"

अभ्यास

१—नीचे लिखे गद्य की व्याख्या करो :—

दुर्गा अजीतसिंह की ओर संकेत करके—"ज्वर ही नहीं किन्तु आज मेरी दशा ही विचित्र है, प्राणनाथ! आज मुझे मेरा अन्त समय प्रतीत होता है, मेरा प्राण घुटा जाता है।"

२—नीचे लिखे की व्याख्या इस प्रकार करो कि कोई भाव छूटने न पावें:—

(क)

धाम धूम नीर औ समीर मिले पाई देह,
ऐसो घन कैसे इत काज भुगतावेगो ?
नेह कौ संदेसो हाथ चातुर पठैवे जोग,
बादर; कहोजी, ताहि कैसे के सुनावेगो ?
बाढ़ी उत्कण्ठा, जच्छ बुद्धि बिसरानी सब,
वाही सों निहोरयो, जानि काज कर आवेगो।
कामातुर होत है सदाईं मति-हीन, तिन्हें,
चेत औ अचेत माहिं भेद कहाँ पावेगो॥

अर्थ संदर्भादि के भेद

एक ही पद्य में अर्थ, सरलार्थ और भावार्थ आदि का स्पष्टीकरण।

बहुधा परीक्षाओं में पद्यों का कभी अर्थ, कभी सरलार्थ, कभी भावार्थ आदि पूछा जाता है। हमारे अबोध विद्यार्थी सब का एक ही आशय मान कर पद्य का अर्थ मात्र लिख देते हैं और अपनी समझ में सब कुछ ठीक होने पर भी नम्बर बहुत कम तथा कभी कभो बिलकुल नहीं पाते। अतएव हम उनके पथ-प्रदर्शन के लिए एक ही पद्य के विविध अर्थों के नमूने देते हैं।

पद्य

मानुष हौं तो वही 'रसखानि' बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तौ कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तौ वही गिरि को जो धस्यो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तौ बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन॥

संदर्भ

रसखानि कवि कृष्ण-प्रेम में निमग्न हो भगवान् से प्रार्थना करता है।

अर्थ

यदि मैं मनुष्य होऊँ तो वही जिससे ब्रज-मण्डल में गोकुल गाँव के गोपों के साथ निवास करूँ। मैं 'पशु-योनि' में भी उत्पन्न हो सकता हूँ, क्योंकि जन्म लेना मेरे अधिकार में नहीं, परन्तु इतना चाहता हूँ कि पशु होने पर नित्य नंद की गायों में चरता रहूँ। यदि पत्थर काहेना पड़े तो उसी पहाड़

जिसे भगवान् ने इन्द्र के कारण अपने हाथ का छाता बना लिया था। यदि पक्षी बनना पड़े तो यमुना किनारे के कदम्बों की डालियों में बसेरा लूँ।

आशय

रसखानि कृष्ण-भक्ति में तल्लीन है। उसने भगवान् की लीला देखने के लिए पुनर्जन्म की लालसा भी बना रखी है। उसकी इच्छा है कि मैं गोकुल के ग्वालों में जन्म लूँ यदि कर्म-वश जड़ जीवों में भी जन्म लेना पड़े तो नन्द बाबा की गायों में से एक गाय होऊँ। गोवर्द्धन पर्वत का एक पत्थर बनूँ। और कालिंदी के किनारे कदम्बों पर बसेरा लेनेवाला एक पक्षी बनूँ।

अभिप्राय

रसखानि की अंतरात्मा कृष्ण-रंग में रँगी हुई है। वह उनकी चरित्र लीला की दर्शनाभिलाषा से पुनर्जन्म की भी परवाह नहीं करता। वह जड़-चेतन में से किसी भी योनि में जन्म लेना सहर्ष स्वीकार करता है।

सार

रसखानि का हृदय कृष्ण-प्रेम से पपूर्ण है। वह उस प्रेम का आनन्द पुनर्जन्मों में से छूटने के लिए मनुष्य, पक्षी, पशु और पत्थर में से किसी भी योनि में जन्म लेने को तैयार है।

सरलार्थ

रसखानि कवि कृष्ण-प्रेम ही को सब कुछ समझता है। अतः प्रेम का नाता बनाये रखने के लिए वह प्रार्थना करता है कि इस नाशवान् शरीर से अलग होने पर यदि मुझे मनुष्य योनि में

उत्पन्न होना पड़े तो मैं गोकुल के ग्वालों में उत्पन्न होऊँ। मनुष्य बनना भी मेरे अधिकार से बाहर की बात है। इसलिए यदि मनुष्य-शरीर न मिले, कर्मानुसार पशु ही बनूँ तो मेरी प्रार्थना है कि नंद बाबा की गायों में ही रहूँ। यदि पत्थर ही बनूँ तो गोवर्द्धन पर्वत का ही बनूँ, जिसे भगवान् ने स्वयं अपने हाथ में छाते की तरह लेकर इन्द्र-वर्षा से ब्रज की रक्षा की थी, और यदि पक्षियों में जन्म लूँ तो यमुना जी के किनारे के कदम्बों पर बसेरा करूँ, जिससे आपका प्रेम सुलभ हो जाय।

संक्षिप्तार्थ

रसखानि कहता है कि पुनर्जन्म में—मैं यदि मनुष्य होऊँ तो गोकुल के ग्वालों में निवास करूँ। यदि पशु बनूँ तो नंद की गायों के बीच चरता फिरूँ। पत्थर होऊँ तो गोवर्द्धन पर्वत का जिसे उठा कर भगवान् ने इन्द्र-वर्षा में ब्रज की रक्षा की थी। यदि पक्षी बनूँ तो यमुना के किनारे के कदम्बों पर बसेरा करूँ।

भावार्थ

कृष्ण ने गोकुल की गायों के साथ रहकर अपनी लीलाएँ की थीं। नंद बाबा के यहाँ रहकर गायें चराई थीं। गोवर्द्धन पर्वत से ब्रज की रक्षा की थी और कदम्ब के पेड़ों पर चढ़ कर बंशी बजाई थी। क्योंकि इन वस्तुओं का कृष्ण-लीला से विशेष-संबन्ध है। इसलिए रसखानि इनमें से कोई भी वस्तु बनने की इच्छा करके कृष्ण-प्रेम प्रदर्शित करता है।

व्याख्या

रसखानि कृष्ण पर मुग्ध है। वह जानता है कि मैं मर्त्य हूँ, इसलिए मेरी मृत्यु अवश्य होगी। पुनर्जन्म का भी उसे विश्वास

है; अतः कृष्ण से प्रार्थना करता हैं कि यदि मेरा जन्म मनुष्य-योनि में हो तो मैं गोकुल के गोपों के साथ ब्रज में वास करूँ। यदि भाग्य-वश पशु होऊँ तो नंद बाबा की गायों में चरता रहूँ। यदि पत्थर ही बनूँ तो उसी गोवर्द्धन पर्वत का जिसे आपने उठाकर इन्द्र-प्रकोप से होने वाली वर्षा से ब्रज-वासियों की रक्षा की थी। और यदि प्रारब्ध के अनुसार पक्षी ही बनना पड़े तो यमुना किनारे के कदम्बों की डालियों पर घोंसला बनाऊँ।

विशेष

कृष्ण ने गोकुल-वासी गोपों के साथ मिल कर रास क्रीड़ाएँ की थीं, नन्द बाबा के यहाँ रहकर उनकी गायें चराई थीं; और यमुना-किनारे के कदम्बों पर चढ़ कर अनेक बार वंशी बजाई थी। इसलिए इन्हीं वस्तुओं में उत्पन्न होकर उक्त कवि भी कृष्ण-प्रेम की चासनी चाखना चाहता है।

अलङ्कार

'बसौं ब्रज; गोकुल गाँव के ग्वारन; कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन' में क्रमशः ब ग और 'क' का अनुप्रास अलंकार है।

अंतर्कथा

ब्रजवासी इन्द्र की पूजा किया करते थे। कृष्ण ने उसकी पूजा बन्द करा दी। इससे अप्रसन्न होकर इन्द्र ने ब्रज के ऊपर घोर जल-वृष्टि की। ब्रजवासी व्याकुल हुए। तब कृष्ण भगवान् ने गोवर्द्धन को अपनी कनिष्ठा अँगुली पर उठाकर ब्रज की रक्षा की, निदान इन्द्र हार मान कर बैठ रहा।

अभ्यास

नीचे लिखी पद्यों के अर्थ को विविध अर्थों में लिखो :—

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवो निधि को सुख नंद की गाइ चराइ बिसारौं॥
'रसखानि' कबौं इन आँखिन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हौं कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

अनुलेख

अनुलेख का साधारण अर्थ 'बोलकर लिखाने' का है। अनुलेख में अध्यापक या दूसरा कोई आदमी कुछ बोलता जाता है और विद्यार्थी उसे लिखते जाते हैं। याद रखना चाहिए कि जो कुछ हम सुनते हैं वह कान की शक्ति से कम और बुद्धि की शक्ति से अधिक, समझते हैं। जब हम नहीं जानते हों तो उसके शब्द और अक्षर हमें साफ़ नहीं सुनाई देते। इसका कारण यह है कि हम उस भाषा को समझते नहीं हैं। इसलिए अनुलेख की शुद्धि के लिए यह आवश्यक है कि जो कुछ बोला जा रहा है उसे हम समझते हों। इसी को 'इम्ला' तथा 'इबारत' भी कहते हैं।

अनुलेख में जो कुछ लिखना होता है उसे पहले एक बार या दो बार पढ़कर सुना दिया जाता है, ताकि विद्यार्थी लोग उसका विषय समझ लें, तब थोड़ा-थोड़ा करके बोला जाता है। बोलने में इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि जो शब्द-समूह एक बार बोला जाय वह सुसम्बद्ध हो और प्रत्येक शब्द-समूह को तीन तीन बार बोला जाय। परन्तु अध्यापकों को चाहिए कि वह छात्रों से अनुलेख लिखते समय 'न बोलने' की हिदायत कर दें। यदि ऐसा न किया जायगा तो छात्र बीच में बोल उठेंगे

और अनुलेख लिखते त्रुटियाँ करेंगे। अनुलेख में बोलने का ढंग इस प्रकार होना चाहिए जैसे निम्नांकित वाक्य में जितने-जितने अंश एक बार बोलने चाहिए उनके अन्त में एक-एक खड़ी लकीर लगी है—

भरत बड़े धर्मात्मा। और दृढ़ स्वभाव के। व्यक्ति थे। उन को अयोध्या लौटने पर। जब रामचन्द्र जी के वन गम बात। मालूम हुई। तो वह अपनी माता कैकयी से। बड़े रुष्ट हुए। और कहने लगे कि तू। माता नहीं। तू तो सर्पिणी है। तैंने तो बिना अपराध के ही। हम सबों को डँस लिया। मैं भाई की गद्दी पर। कदापि न बैठूँगा !

यदि हम यही वाक्य असम्बद्ध अंशों में इस प्रकार विभाजित करें—

भरत बड़े। धर्मात्मा और दृढ़। स्वभाव के व्यक्ति। थे उन को अयोध्या। लौटने पर जब। रामचन्द्र जी के वन। गमन की बात मालूम। हुई तो वह अपनी। माता कैकेयी से बड़े। रुष्ट हुए और कहने लगे कि तू माता। नहीं तू तो सर्पिणी। है तैंने तो बिना अपराध। के ही हम सबों। को डँस लिया मैं। भाई की गद्दी। पर कदापि न बैठूँगा।" तो इस प्रकार अर्थ का अनर्थ हो जाता है। बोलने में शुद्धि रखना अध्यापक का कार्य है, अतः हम इतना ही कह सकते हैं कि अनुलेख में छात्रों को ध्यान पूर्वक सुनना चाहिए कि कौन से अक्षर सस्वर और कौन से अस्वर बोले जा रहे हैं; जैसे :—

'निरपराध' शब्द में द्वितीय अक्षर 'र' सस्वर बोला जायगा, 'परस्पर' शब्द में 'स' की ध्वनि अस्वर होगी।

अक्षर-शुद्धि और शब्द-शुद्धि का भली प्रकार ज्ञान हो गया है तो अनुलेख में त्रुटियाँ नहीं होंगी।

अभ्यास

१—नीचे लिखे अवतरणों में से एक साथ बोले जानेवाले अंश छाँटोः—

(क) नहीं यह गगन-स्पर्शी धाम,
हीरमय रत्नों से अभिराम,
जहाँ प्रभु ले सकते विश्राम,
दैन्य दुःख छाया यहाँ अपार।
आ गए कैसे करुणागार॥

(ख) श्रीकृष्ण का चरित्र अत्यन्त पवित्र और निष्कलंक था। वे प्रेमी थे, रसिक थे और अपनी मधुर मुरली की तान में गोपों, गोपियों और गौओं को रिझाते थे। दीन, दुर्बलों की सहायता और दुष्टों का दमन करना तो उनका बचपन से ही स्वभाव था।

वार्तालाप

वार्तालाप का साधारण अर्थ 'बातचीत' करने का है। यह रचना का एक मुख्य अंग है। इसके द्वारा भी मनोरंजन किया जा सकता है। इसी के द्वारा जटिल से जटिल विषयों को समझा सकते हैं। इसकी रचना के लिए बड़ी आवश्यकता होती है। इसका अभिप्राय यह है कि दो चार पात्रों में परस्पर बात-चीत कराकर किसी बात का वर्णन किया जाए। साहित्य की सभी बातों में जसे गल्प, उपन्यास, नाटक, कहानी या प्रहसन आदि में वार्तालाप की आवश्यकता होती है। अतएव स्वतन्त्र रीति से छोटे-छोटे वार्तालाप लिखने का अभ्यास

डालना चाहिये। इसी को अंगरेज़ी में Dialogue कहते हैं।

गल्प की तरह से वार्तालाप में भी पहले आधार और कथानक की आवश्यकता होती है। फिर कथानक के पात्रों में आपस में बात-चीत कराकर सम्पूर्ण कथानक के विषय को समझाना पड़ता है। स्थान और स्थिति को आदि में पृथक् अंकित कर दिया जाता है। इसी प्रकार कोई मुख्य घटना होती है, तो उसे कोष्टक से घेर कर उसी जगह पर अंकित कर देते हैं, जहाँ बातचीत के बीच में वह हुई हो।

नीचे नमूने के लिये एक वार्तालाप का आधार, कथानक और थोड़ी सी अधूरी वार्तालाप दी जाती है। इसी प्रकार शेष छात्रों को करनी चाहिए।

आधार—विद्या पढ़ने के लाभ।

कथानक—'कृष्ण' और 'द्रोपदी' दो भाई-बहिन हैं। कृष्ण द्रोपदी को स्कूल में पढ़ने चलने के लिए कहता है। द्रोपदी उसे पढ़ने न जाने के लिए कहती है। कृष्ण द्रोपदी को पढ़ने की उपयोगिता समझाता है। द्रोपदी पढ़ने जाने के लिए तैयार हो जाती है।

वार्तालाप—स्थान—रहने का घर।

(कृष्ण बाहर से आता है)

कृष्ण—(गंभीर वाणी से) द्रोपदी! द्रोपदी!

(द्रोपदी आती है)

द्रोपदी—आ गया भैया! क्यों अभी से पढ़ने चलते हो?

कृष्ण—चलो चलें, दस बजे गये, वहाँ स्कूल खुल गया हुआ

द्रोपदी—अरे! भैया, पढ़ लिख के क्या होगा।

घर चलें। सुना है कल वह राजमहल से आई हैं। एक दिन पढ़ना न हुआ तो न सही।

कृष्ण—हाँ, तुम्हारी दृष्टि से न सही। मैं पढ़ने में नागा करना पाप समझता हूँ।

द्रोपदी—(हँस कर) पाप !

कृष्ण—हाँ पाप ! तुम्हें सन्देह है ?

द्रोपदी—क्या बात है ! एक दिन न पढ़ने से पाप ! यह भी क्या रामायण का पाठ हो गया।

कृष्ण—क्या बच्चों की सी बातें करती हो ? यह नित्य पढ़ने का ही परिणाम है कि तुम अपने यहाँ कितने ही वकील, कितने ही डाक्टर और कितने ही सरकारी नौकर देखती हो ? क्या तुम्हारे भी घर में कोई ऐसा आदमी है ? तुम्हारे यहाँ तो सब मूर्ख और धन-हीन ही दिखलाई देते हैं।

द्रोपदी—और तुम ?

कृष्ण—मैं ? देखती नहीं ? तुम्हारी तरह मैं मूर्ख नहीं ? मैं प्रति दिन पढ़ने जाता हूँ। चिट्ठी-पत्री लिख लेता हूँ, कड़े से कड़ा सवाल निकाल सकता हूँ। इतने दिन हो गये, स्कूल से नागा तो क्या, कभी स्कूल-समय में छुट्टी भी नहीं लेता हूँ। यहाँ तक जितनी परीक्षा हुई ह उन सब में तो प्रथम श्रेणी में पास हुआ हूँ। तुमको तो ‘ काला अक्षर भैंस बराबर है ’ क्यों न ?

द्रोपदी—अरे भाई ! यह सब जो तुम कहते हो, ठीक है परन्तु इसको इतना क्यों बढ़ाते हो कि पास हो गया, हत्या हो गई, ज़मीन फट गई, आसमान टूट पड़ा।

कृष्ण—तुम्हारे तो दिमाग़ में गोबर भरा है। तुम्हारी अक़्ल तो चरने गई है। पढ़ने के सम्बन्ध में एक दिन का आलस्य जो हानि पहुँचाता है, वह दस दिन के पढ़ने से भी पूरा नहीं होता है। उसके नियम में अन्तर डालना, वास्तव में विद्या की हत्या करना, तुम्हारी दृष्टि में पाप नहीं? मेरी अक़्ल तो यही कहती है कि अविद्या जीवन ही संसार का सबसे बड़ा नरक है। उस नरक में झोंकनेवाला काम तुम्हारी दृष्टि में पाप नहीं।

द्रोपदी—हाँ, यह तो ठीक है। क्या विद्या ऐसी वस्तु है? क्या यही जीवन को अच्छा बनानेवाली है?

कृष्ण—हाँ, विद्या ही मनुष्य-जीवन का अलंकार है। इसी की महिमा से मनुष्य संसार में आदरणीय होते हैं। इसी से मनुष्य ऊँचे-ऊँचे पदों पर पहुँचते हैं। विद्या ही जीवन को गौरवशाली बनाती है। विद्या धन की समानता संसार में कोई धन नहीं कर सकता। इसको कोई ले नहीं सकता, छीन नहीं सकता। यह ऐसा अपूर्व धन है जो व्यय करने से दिन दूना रात चौगुना बढ़ता है।

(अपूर्ण)

इस प्रकार वार्तालाप दोनों ही प्रकार की घटनाओं पर, चाहे वह काल्पनिक हों चाहे वह सत्य हों, भली प्रकार रचा जा सकता है। वार्तालाप की रचना में अग्रलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए :—

(क) वार्तालाप की बातों में सुसम्बद्धता तथा स्वाभाविकता हो, मानो वह सचमुच हुई हों। उनमें कृत्रिमता का चिह्न भी न हो।

(ख) भाषा सरल हो, जो जनसाधारण की हो, जो सरलता से समझी जा सके।

(ग) बातें संक्षेप में हों, अधिक लम्बी व्याख्यान के रूप में न होनी चाहिये।

(घ) वार्तालाप से वे बातें साफ़-साफ़ प्रकट हो जायें, जिनको लेखक समझाना तथा प्रकट करना चाहता है।

(ङ) वार्तालाप में पात्रों की स्थिति, उनका कोई काम या भाव—हँसना, क्रोध करना आदि पात्र के नाम के सामने कोष्ठक में बन्द करके अङ्कित कर देना चाहिए।

अभ्यास

१—वार्तालाप करने की आवश्यकता किस प्रकार की रचनाओं में पड़ती है ?

२—वार्तालाप-रचना में किन-किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है, और क्यों ?

३—निम्नांकित आधारों पर वार्तालाप की रचना करो, जो बड़ी सरस, सरल तथा रोचक हों:—

(क) सत्य बोलना (ख) इतिहास पढ़ने से लाभ (ग) कांग्रेस के राज्य में भी रिश्वत का बाज़ार गर्म है।

शैली

लिखना सभी जानते हैं, किन्तु किसी का लेख लोगों के चित्त को आकर्षित कर लेता है और किसी का नहीं। बात यह है कि हर एक का ढंग निराला होता है। रचना में इसी ढंग को शैली कहते हैं। लेखक के पास चाहे जितनी सामग्री हो, लेकिन यदि उसे लिखने का ढंग नहीं आता, तो सब व्यर्थ है। हिन्दी साहित्य में अनेक प्रकार की शैलियाँ प्रचलित हैं, उनका यहाँ पर विस्तृत वर्णन नहीं हो सकता। हम केवल उन्हीं पर विचार करेंगे जो बालकों के लिए आवश्यक हैं। साधारणतया शैली तीन प्रकार की होती है (१) शब्द प्रधान (२) विचार प्रधान (३) वाक्य प्रधान।

१—शब्द प्रधान

सुन्दर साहित्य के लिए अच्छे शब्दों की आवश्यकता है। शब्दों के चुनाव में ही लेखक की योग्यता देखी जाती है। यही कला साहित्य में शैली के नाम से विख्यात है। हमारे सामने शब्द का कोष खुला हुआ रक्खा है। कोई रोकने-टोकने वाला नहीं। हम जितने शब्द चाहें उतने ख़र्च करना कठिन। इसी प्रकार शब्दों का सदुपयोग कठिन है और दुरुपयोग तो बहुत लोग करते ही हैं। प्राय: नवीन लेखक शब्दों का बड़ा अपव्यय करते हैं। वे व्यर्थ शब्दों को दुहराया भी करते हैं। उनके यहाँ शब्दों का कोई मूल्य नहीं। परन्तु ज्यों-ज्यों रचना प्रौढ़ होती जाती है, शब्दों की और कमी विचारों की बढ़ती होती जाती है। एक सिद्धहस्त लेखक इने-गिने शब्दों में ही अपना भाव प्रकट कर देता है। इससे यह न समझना चाहिए कि बहुत

कम शब्द काम में लाये जायँ । वह तो एक प्रकार से दरिद्रता होगी और अल्पज्ञता का ही परिचय देगी । शब्द हों पर्याप्त हों और उनका सदुप[illegible] । उनमें लालित्य हो, मधुरता हो और हो ओज । वे ऐसे हों जो मुर्दा दिलों में जान डाल दें, सोने वालों को जगादें और अत्याचारियों के हृदयों में भय उत्पन्न करदें ।

२—विचार प्रधान

जिस प्रकार शब्दों की मैत्री, उनका लालित्य और संगठन भाषा की सुन्दरता बढ़ाते हैं, उसी प्रकार विचार-प्रकाशन का ढंग भी लोगों के हृदयों में एक विशेष प्रकार का आकर्षण उत्पन्न करता है । किसी उर्दू के शायर ने क्या ही अच्छा कहा है— "कहाँ से लायेगा क़ातिल ज़बाँ मेरी बयाँ मेरा" । सचमुच वह वर्णन का ढंग ही है जो सबको प्रभावित करता है और सब लोग खिंचे चले आते हैं । विचारों का प्रकाशन ही तो मुख्य बात है ; वह जिसे आगया उसे रचना आगई और जिसने इसमें पूर्णता प्राप्त कर ली वही पूरा कलाकार हो गया । प्राय: लोग दो प्रकार से अपने विचार प्रकट करते हैं ; एक अलंकृत भाषा में दूसरे अनलंकृत या सरल भाषा में । अलंकृत रचना कठिन है । उसमें सिद्धहस्त लेखक ही सफलता प्राप्त कर सकते हैं । उसका निर्वाह करना सबके लिए कठिन हो जाता है । यह एक दो दिन का काम नहीं है । उसके सीखने के लिए वर्षों चाहिए । अनलंकृत रचना सुगम होती है । परन्तु जैसा इसका नाम सरल है वैसी यह सरल नहीं है । आख़िर यह भी तो कला ही है । आजकल मान इसी का अधिक है और विद्यार्थियों के लिए यही ग्रहण करने योग्य है क्योंकि जो विचार सरल भाषा में प्रकट किये जाते हैं, उन्हें सब लोग

समझ लेते हैं। प्रसाद इसका मुख्य गुण है और रसकी रचना में बड़ी आवश्यकता है।

३—वाक्य प्रधान

विचारों के प्रकट करने के साधन वाक्य होते हैं। अतएव वाक्यों का संगठन और निर्माण-रचना में एक विशेष महत्त्व रखता है। कुछ लोग बहुत छोटे-छोटे और सरल वाक्य बनाते हैं और कुछ लोग लम्बे-चौड़े और जटिल वाक्य बनाने में ही गौरव समझते हैं। इस दृष्टि से इस शैली को मुख्यतया हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। (१) धाराप्रवाह (२) जटिल। रचना में धाराप्रवाह का होना सर्वोत्तम गुण है। इसी पर विद्यार्थियों को विशेष ध्यान देना चाहिये। जटिल रचना काव्य की दृष्टि से उत्तम हो सकती है किन्तु उसके समझने में देर लगती है और उसके समझनेवाले भी कम होते हैं। अतएव यदि हम हिन्दी को व्यापक भाषा बनाना चाहते हैं तो हमें सुबोध और धारावाही शैली को ही अपनाना चाहिए। कुछ लोग अलंकृत और जटिल रचना के बहाने कृत्रिमता अधिक दिखाते हैं। इसमें परिश्रम अधिक पड़ता है और उद्देश्य भी पूरा नहीं होता, अतएव यह सर्वथा त्याज्य है। हम यहाँ पर कुछ उक्त शैलियों के उदाहरण देते हैं :—

अलंकृत रचना

१—सन्ध्या

भगवान् भुवन भास्कर अन्धकार के अन्याय का साम्राज्य बढ़ते देख सहन न कर सके। वे अपनी अन्तिम अवस्था पर खेद प्रकट कर क्रोध से तमतमाते हुए, पश्चिम जलधि में जा

डूबे। शास्ता की अनुपस्थिति में अत्याचारियों की धूम मच गई। चुग़लख़ोर, चमगीदड़ चोर, और उलूक अपने-अपने निवासों से निकल पड़े। निरीह और निरपराध जीवों पर अत्याचार का आरा चलने लगा। पाशविकता के आगे मनुष्यता ने अपना सर झुका लिया। चन्द्रदेव से यह देखा न गया, वे अपनी चमचमाती हुई कटार को लेकर अन्धकार की प्रियतमा रजनी का गला काटने के लिए निकल पड़े।

२—युवावस्था

युवावस्था मानव-जीवन का वसन्त है। उसे पाकर मनुष्य मतवाला हो जाता है। जवानी एक मदिरा है, जिसमें पागल कर देनेवाली मादकता भरी होती है। यह एक चढ़ती हुई नदी है जिसमें कितने ही डूब जाते हैं, कितने ही फँस जाते हैं और कितने ही बहते रहते हैं। इसके भँवर में पड़ कर विरले ही निकलते हैं। जवानी की उमंग में मनुष्य न जाने क्या-क्या कर डालता है। यह वह अग्नि है जिसकी ज्वालायें बढ़ रही हों, यह वह तलवार है जो म्यान से निकल आई हो और यह वह बवण्डर है, जिसमें वायु के घात प्रतिघात हो रहे हों। जब इसका नशा उतर जाता है, तब न प्रचण्डता रहती है और न मतवालापन। उस समय इसकी धारा शान्त और सुस्थिर हो जाती है।

अनलंकृत या सरल

१—सम्राट अशोक के कार्य

मौर्य सम्राट अशोक ने प्रजा के साथ अत्यन्त सराहनीय बर्ताव किया और उसके सुख तथा ऐश्वर्य के लिए जीवन भर

लगे रहे। समस्त भारत में उनका राज्य था। उन्होंने बड़ी-बड़ी सड़कें बनवाईं, उनके किनारे हरे वृक्ष लगवाये, कुएँ खुदवाये तथा सराएँ बनवाईं, जिससे कि यात्रियों को किसी प्रकार का कष्ट न हो। उन्होंने बड़े-बड़े कर्मचारी नियुक्त किए, जो कि धर्ममहामात्र कहलाते थे और जिनका काम धर्म के नियमों का पालन कराना था। यदि कोई कर्मचारी प्रजा पर अत्याचार करता था, तो उसे कठिन दण्ड दिया जाता था। साम्राज्य में अनेकों अस्पताल . जिनमें मनुष्यों तथा पशुओं की चिकित्सा होती थी। बौद्ध धर्म की उन्नति के लिए अशोक ने सराहनीय प्रयत्न किया और यह उन्हीं के प्रयत्न का फल है कि भारतवर्ष के बाहर आज भी यह धर्म विराजमान है। परन्तु भारतवर्ष में अशोक की मृत्यु के बाद उनका साम्राज्य तथा बौद्ध धर्म दोनों ही छिन्न-भिन्न हो गए।

२—सती सीता

सती सीता का चरित्र पढ़ कर तो आश्चर्य होता है। क्या कोई स्त्री सीता से अधिक पति-भक्ता हो सकती है? एक कोमल शरीर की युवती सुन्दरी, जिसका राजा जनक के राजमहलों में बड़ी धूम-धाम के साथ लालन-पालन हुआ हो और जिसने कभी गाड़ी से नीचे पैर न दिया हो, नंगे पैरों वन में फिरने के लिए तैयार है, क्योंकि वह पति की जुदाई एक क्षण भी नहीं सह सकती। राजा दशरथ ने राम को वनवास दिया था। यह वनवास पूरा नहीं हो सकता था, जब तक सीता उनके साथ न जातीं, क्योंकि सीता तो राम का आधा अङ्ग थी। पिता की पूर्ण आज्ञा तभी पालन हो सकती थी जब राम और सीता दोनों मिल कर वन को जाते। सीता वन को गईं,

उसने हज़ारों प्रकार के कष्ट उठाये। माता सीता को रामचन्द्रजी के साथ रहने में ही आनन्द था। सीता का चरित्र रामायण को बड़ा ऊँचा बना देता है। हिन्दू स्त्रियाँ सीता का नाम लेकर ही अपने आदर्श को ऊँचा बनाती हैं। उनमें एक नया जीवन आ जाता है।

सूचना—ऊपर के चार गद्य-खण्डों में पहिले दो अलंकृत और अन्तिम दो सरल रचना के उदाहरण हैं। पहिले दोनों की भाषा सरल, स्पष्ट और ओजपूर्ण है; भाव अच्छे और समझने योग्य हैं। तीसरा खण्ड वर्णनात्मक और चौथा कथनात्मक है। इनकी भाषा और शैली दोनों प्रसंशनीय तथा ग्राह्य हैं। बालकों को इसी प्रकार की शैली का अनुकरण और अभ्यास करना चाहिए।

बनावटी गद्य

१—कविता

"लोकातीत प्रतिभा-प्रसूत नवरसमयी शब्द माधुरी सुमधुर सुललित सुकवि कल कलित उस सगुन सलौनी मूर्ति में इससे भी बढ़ा-चढ़ा दूसरा विशेष चमत्कार यह भी बढ़ा ही अनुपम विचित्र और अचम्भे का सा दिखाता है कि मानस—प्रत्यक्ष के बिना न तो हम अपनी इस पवित्रतम जलमय आँसू नीच-कीच चिपचिपाती, गीध भरी सहज झिपती झिपाती, कोने झाँकती, लाज भरी मुँह ताकती चमड़े की आँखों से चित्रकार के चित्र की भांति उस परम रमणीय कामु-कमनीय सुजन मन बसकरनी परम सुन्दर कन्दर्पारि सुवन-लावण्य-दर्प-दमनी

अनूपरूप सुन्दरी मूर्ति की रूप छवि का अलभ्य दर्शन ही कर सकते हैं और न इन मधुर, कटु, तीखे फीके, अलौने सलौने, सट्टे बट्टे खारस-लोलुप लुपलपाती, लार टपकती, बार बार सरसती, जन्म भर तरसती, हाहा खाती, बार बार दाँतों तले आती, कुचली जाती, पछताती, छिलमिलाती, बिलबिलाती, जन्म से पीती खाती भी कभी न अघाती, चर्ममयी लोल रसना से. सुधा में सुरस सरस उनके उस नित नव नवरस रसीले सदा अभिनव में अपूर्व स्वादिष्ट शिष्ट सुरसिकों के परम इष्ट अनुपम सुमिष्ट नवरसों का स्वाद ही कभी चख सकते हैं।"

उक्त गद्य खण्ड को एक दो बार पढ़ने पर भी लेखक का भाव स्पष्ट नहीं होता शब्दों की भूल भुलैयों में भाव भटकते फिरते हैं। इसके मुख्य उद्देश्य और विधेय का पता लगाना समुद्र से मोती निकालना है। वाक्य, विशेषण शब्दों द्वारा व्यर्थ बढ़ाया गया है। लेखक ने इसके गढ़ने में बड़ा परिश्रम किया होगा और घण्टों माथापच्ची की होगी तब इसे लिख सका होगा। किन्तु क्या इसका निर्वाह सर्वत्र हो सकता है? कभी नहीं। अतएव ऐसी रचना से दूर ही रहना अच्छा है।

२—'ब' की बहार

बनवारीलाल बेटे के बिरह से व्याकुल हो गया। बेचैनी बराबर बढ़ती ही गई। वनिज व्यापार बिल्कुल बिगड़ गया। बसन्ती भी विलोचनों से वारि-विमोचन कर बेदम हो गई। बनवारी ने बहुत बन्दोबस्त किया, पर बाँका बहादुर बेटा वापिस न आया। वास्तव में बेचारा बहुत ही विचलित हुआ; विपद पर विपद। बवासीर की विकट बीमारी बराबर बढ़ती ही गई। बचने की बात बेढब बोध हुई। बसन्ती बेचारी बेसुध हो गई। विपत्ति से बचानेवाला बस ब्रजबल्लभ वासुदेव ही है।

उक्त पैराग्राफ़ पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी के 'ब' की हार' शीर्षक लेख से लिया गया है। इसमें भी बनावट भरपूर है। 'ब' का अनुप्रास लाने की कोशिश में बनवारी के कुटुम्ब पर विपत्तियों का बवण्डर आगया है। फिर भी भाषा, बोधगम्य और वाक्य-रचना सरल है, अतएव पहिले से बहुत कुछ अच्छी है। शैली सराहनीय है परन्तु अनुकरणीय नहीं।

३—ज़ोरदार तथा ओजपूर्ण भाषा

तू कैसा भारतीय सैनिक है; पड़े-पड़े कैसे काम चलेगा? उठ, आँख खोल। देख, युद्ध आरम्भ होनेवाला है। यह विप्लव वेला है। क्रान्ति की काली-काली घटायें घिरने लगी हैं। कैसा विकराल वातावरण है! दनुज दल मर्दिनी रणचण्डी समरभूमि पर ताण्डव नृत्य करने जा रही है। क्या तुझे उसके लोक प्रकम्पन नूपुरों का छम-छम शब्द सुनाई नहीं देता? उद्भ्रान्त दिशायें थर-थर काँप रही हैं। ब्रह्माण्ड विक्षिप्त हो उठा है। समस्त जीवजन्तु त्रस्त हो उठे हैं। प्रशान्त नभमण्डल के वज्रोपम वक्षस्थल पर विप्लव की रेखायें खचित हो गई हैं। थोड़ी ही देर में तेरे आस-पास नङ्गी तलवारें बिजली की तरह चमकने लगेंगी। सुना है उन तलवारों पर पद-दलित दुर्बलों के गर्म आँसुओं का विषाक्त पानी चढ़ाया गया है। ओह! कितनी भीषण तोपें गम्भीर गर्जना कर धधकते हुए गोले उगलेंगी। उनका ब्रह्माण्ड-भेदी शब्द असहाय दीनों के आर्तनाद का रूपान्तर होगा। तेरे देखते ही देखते यहाँ ज्वलन्त ज्वालामुखी फट पड़ेंगे। कहते हैं, उन अग्नि-गर्भ पर्वतों का निर्माण प्राणावशेष पीड़ित अस्थि कङ्कालों की धुआँधार आहों से हुआ है। कुसुम कलिका से वज्रोत्पत्ति होगी?

उक्त गद्य-खण्ड पं० वियोगीहरि की 'अन्तर्नाद' नामक पुस्तक से लिया गया है। भाषा में ओज है, वर्णन सजीव है और ज़ोरदार है। इसमें हृदय दहला देनेवाली शक्ति है। लेखनी का बल इसे ही कहते हैं।

अभ्यास

१—शैली किसे कहते हैं ? मुख्य शैलियाँ कितने प्रकार की हैं ?

२—तुम किस शैली को पसन्द करते हो और क्यों ?

३—नीचे लिखे गद्य-खण्डों में जिन शैलियों का निर्वाह किया गया हो, उन्हें बताओ :—

(क) गङ्गा स्नान का जैसा सुख वहाँ है अन्यत्र कम देखने में आया। अकेली गङ्गा है, वहाँ तक उसमें यमुना भी नहीं मिली है। जल खूब स्वच्छ है। पक्के घाट का काम नहीं। कच्चे घाटों पर जहाँ चाहो स्नान करो। एक जगह एक घाटिये ने तख़्तों का घाट भी बना रखा है। उसी को वहाँ का प्रधान घाट समझना चाहिये, स्नान सन्ध्या का वहाँ खूब ही आराम है। वहाँ का जल मीठा और पाचक है। गङ्गा जल पीने का वहाँ इतना अभ्यास हो जाता है कि उसके सामने कोई जल अच्छा नहीं मालूम होता। साल में दो बार ही शायद आपको कूप-जल पीने की नौबत आई हो। यह भी गाँव में नहीं वन में।

(ख) अन्त में साधु राजकुमार के पास उसकी परीक्षा लेने आया। उस समय कुँवर साहब अपनी मित्र मण्डली के साथ घूमने जा रहे थे। साधु को देखते ही पहिचान गए। उन्होंने समझा

कि यह सहायता लेने आया है, अतएव अपने सेवकों से कहा—"यह फ़कीर बड़ा धूर्त है। इसके हाथ पैर बाँध दो और चौराहे-चौराहे पर ले जाकर खूब पीटो, अन्त में सिर काट कर सदर फाटक पर लटका दो।" अस्तु, नौकरों ने साधु को पकड़ लिया और पीते हुए ले चले। उस समय साधु न रोता था न हँसता था, यही कहता था—"भाइयो ! मनुष्य का उपकार मत करो। यदि लकड़ी और आदमी साथ-साथ बह रहे हों तो लकड़ी को निकाल लो, मनुष्य को बहने दो। लकड़ी जलाने के काम आयगी, किन्तु मनुष्य बचने पर अपकार ही करेगा।"

(ग) "सघन-घनांधकारिणी, संयोगिजन-मनोहारिणी, हरित शस्य-सम्पत्ति-भूमण्डल शोभा विस्तारिणी, नदी-नद-तड़ाग-गर्तादि-मध्यजल, सञ्चारिणी, ग्रीष्म-भीष्म-सन्ताप-मारिणी, मण्डूक-मण्डल-सम्वादिनी, मयूर-समूह-नादिनी, कृषक-जन-शुभ-भविष्यद्विधायनी वर्षा बीत गई।"

षष्ठम अध्याय

रचना सम्बन्धी ध्यान देने योग्य बातें

१—'इसलिए', 'जोकि' आदि अव्ययों का बार-बार प्रयोग न करना चाहिए। विदेशी भाषाओं के साधारण प्रचलित तथा अत्यन्त आवश्यक पदों का समावेश रचना में करना आवश्यक है। अनावश्यक शब्दों की भरमार न करनी चाहिए। रचनायें अशुद्ध पद, शब्दों का कुप्रयोग, अश्लील और अप्रचलित शब्द न आने चाहिए और अत्यन्त नीच, ग्राम्य अथवा प्रान्तीय भाषा का उपयोग कदापि न करना चाहिए।

२—लम्बे-लम्बे समासों का प्रयोग न करना चाहिए और एक ही भाव को बार-बार दुहराना न चाहिए। भाव को उपयुक्त पदों से व्यक्त करना चाहिए और वर्णनीय विषय के लाघव और गौरव के विचार से छोटे-बड़े पद लाना आवश्यक है। वाक्य-विन्यास और पद-स्थापन-प्रणाली का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

३—बहुत सी असमापिका क्रियाओं द्वारा अधिक वाक्यों को न जोड़ना चाहिए और दो वाक्यों के मिलाने के स्थान में एक बहुत बड़ा और दूसरा बहुत छोटा न होना चाहिए। तत्सम और तद्भव शब्दों का परस्पर समास नहीं होना चाहिए। रचना में क्रोध, विस्मय, विशाद, शील, हर्ष, प्रमाद, निश्चय और ढीठता आदि अर्थवाले पदों के दुहराने में पुनरुक्ति दोष नहीं होता।

४—यमक, अनुप्रास आदि शब्दालङ्कारों के बाहुल्य से रचना को क्लिष्ट न बनाना चाहिए। रचना में अनेक सम-कारक-पद एक वाक्य में आवें तो अन्तिम पद के पूर्व संयोजक या वियोजक अव्यय लाना चाहिए और पहले को छोड़ कर शेष पदों के पहले अल्प-विराम लगाना चाहिए। इन सब बातों का अनुसरण करने से रचना सुन्दर हो सकती है। अतः उपर्युक्त बातों का प्रतिपालन करना रचना के लिए परमावश्यक है।

रचना के अङ्ग

प्रायः देखा जाता है कि लड़के प्रबन्धादि लिखने से बहुत घबड़ाते हैं। वे प्रबन्ध का आरम्भ ही करना जानते हैं और न समाप्त करना। वे विषय के बाहर ही चले जाते हैं। इस तरह वे परीक्षा का अच्छे नम्बर प्राप्त नहीं कर सकते। अतः अब हम बालकों को वही बातें बतलाते हैं कि जिनके द्वारा वे सुन्दर लेख लिखना सीख जावें। निबन्धादि के लिखने में बालकों को पहिले थोड़ी देर तक चुपचाप उस विषय पर मनन करना चाहिए, जिस पर उन्हें कुछ लिखना है। फिर संकेत बना लेने चाहिए और तब लिखना प्रारम्भ करना चाहिए। नये लेखकों को ढाँचा बनाने की बड़ी आवश्यकता है। इससे लेख में सुन्दरता आ जाती है तथा वह नियमित और सुगठित हो जाता है। जब लेख लिखने का अभ्यास हो जाता है तो ढाँचा बनाने की ज़रूरत नहीं रह जाती क्योंकि उस समय यह कठिनाई स्वयम् दूर हो जाती है। प्रत्येक निबन्ध वाह्य रूपरेखा के विचार से तीन भागों में बाँटा जा सकता है। (१) भूमिका (Introduction) (२) विषय (Body) (३) समाप्ति (End)

भूमिका

लेख के प्रारम्भ में कुछ ऐसे वाक्य लिखना, जिससे पाठकों का ध्यान विषय की ओर आकर्षित हो जाय, भूमिका कहलाता है। इसके लिए कोई नियम नहीं बनाया जा सकता है, क्योंकि भिन्न-भिन्न विषयों की प्रस्तावना भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। कभी विषय पर एक छोटी-सी कहानी गढ़ली जाती है और कभी यों ही निबन्ध आरम्भ कर दिया जाता है। कभी विषय की परिभाषा दे दी जाती है और कभी उसकी व्याख्या लिखी जाती है, कभी लेख का प्रारम्भ कहावतसे होता है और कभी किसी विद्वान् की उक्ति को उद्धृत किया जाता है। कभी-कभी प्रकृति-वर्णन से प्रबन्ध लिखना शुरू करते हैं, परन्तु ऐसा प्रायः कहानी और उपन्यास आदि में ही होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जितने विषय हैं उतनी ही भूमिकाएँ हैं। अपनी-अपनी रुचि और अपना-अपना ढंग है। ध्यान केवल इस बात का होना चाहिए कि भूमिका संक्षिप्त हो, विषय के अनुकूल हो तथा पाठकों का ध्यान आकर्षित करने वाली हो।

विषय

किसी विषय पर निबन्ध लिखने के लिए पहिले थोड़ी देर तक विचार करना चाहिए। फिर जितनी बातें याद आवें उनके संकेत मात्र लिख लेना ठीक है। अब देखना चाहिए कि कौन-सी बात विषय से सम्बन्ध रखती है और कौन-सी नहीं, किन बातों पर विशेष ध्यान देना है और किन पर कम। इसके उपरान्त विचारों का क्रम देना बड़ा आवश्यक है। इससे भावों की सीढ़ी बनती चली जाती है और लेखक अन्त में गन्तव्य स्थान तक पहुँच जाता है। लेख में उन्हीं बातों को बढ़ाकर लिखना चाहिए

जो आवश्यक हों। अनावश्यक बातों को बढ़ाकर लिखना प्रबंध का सौन्दर्य कम करना है। सब से बड़ी बात विचारों के उपस्थित करने की है। भाव-प्रकाशन जितना ही सूक्ष्म तथा स्पष्ट रीति से हो उतना ही अच्छा है।

समाप्ति

आरम्भ की भांति लेख की समाप्ति भी होनी चाहिए। नवसिखिये जब लिखने से ऊब जाते हैं, तो क़लम रख देते हैं और वहीं उनका लेख समाप्त हो जाता है। उन्हें चाहिए कि अन्त में दो-चार वाक्यों का एक ऐसा अनुच्छेद बनावें जिसमें लेख का सार हो, उसका निष्कर्ष हो अथवा परिणाम या फल हो। इस समय जो विचार पाठकों के चित्त पर छोड़ा जाता है, उस की हृदय पर अमिट छाप लग जाती है। अतएव उसे प्रभावशाली तथा गौरव पूर्ण होना चाहिए। जिस लेख की समाप्ति ठीक नहीं होती उसमें लेखक और पाठक अलग-अलग भटका करते हैं। अतएव लेख में सफलता पाने के लिए उसका अन्त अच्छा होना चाहिए।

निबन्धों के भेद

यों तो विषय तथा वस्तु के अनुसार लेखों के अनेक भेद हैं परन्तु वर्णन के अनुसार वे मुख्यतया चार भागों में बाँटे जा सकते हैं। (१) वर्णनात्मक (Discriptive) (२) कथनात्मक (Narrative) (३) विचारात्मक (Reflective) (४) आलोचनात्मक (Critical)।

१—वर्णनात्मक

जिनमें किसी वस्तु, समय, स्थान आदि का वर्णन होता है वे वर्णनात्मक निबन्ध कहलाते हैं। इनमें आँखों से देखी या कानों से सुनी हुई घटनाओं के वर्णन रहते हैं। यात्रायें, दैनिक-वृत्तान्त, शहर, प्राकृतिक दृश्य आदि इसी के अन्तर्गत हैं। इस प्रकार के लेख लिखने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वर्णन सजीव हो, सत्य हो तथा रोचक हो। यदि पाठकों के हृदय में उसका चित्र न खिच गया तो लिखना व्यर्थ है। वर्णनात्मक लेख लिखने के लिए पहिले मोटी-मोटी बातों पर ही विचार करना चाहिए और उन्हीं के विस्तृत वर्णन देने चाहिए। उसके बाद सूक्ष्म बातों पर दृष्टि डालनी चाहिए। किन्तु यह स्मरण रहे कि स्थूल बातों का स्थान सूक्ष्म बातें ही न ले लें। कभी-कभी लोग उन बातों का भी वर्णन कर देते हैं, जो उस विषय के शीर्षक से तो सम्बन्ध नहीं रखतीं पर उन विचारों से सम्बन्धित होती हैं जिनका उसमें वर्णन होता है। इनसे लेख में सौन्दर्य आ जाता है तथा लेखक की कुशलता व बहुज्ञता प्रकट करती है। किन्तु ऐसी बातों का परिमाण उतना ही होना चाहिए जितता दाल में नमक होता है।

२—कथनात्मक (विवरणात्मक)

जिन लेखों का मुख्य विषय किसी कथा का वर्णन होता है वे कथनात्मक निबन्ध कहलाते हैं। इनके अन्तर्गत इतिहास, पुराण, जीवन चरित्र, गल्प, उपन्यास आदि हैं। कथा में सब से बड़ा गुण रोचकता है। कहानी ज्यों-ज्यों आगे बढ़े, त्यों-त्यों पाठकों के हृदय में जिज्ञासा बढ़ती रहे कि आगे क्या हुआ। कहानियों का अन्त प्रायः सुखान्त या दुखान्त होता है। अत-

एव वह ऐसा होना चाहिए जो प्रभावशाली हो। कुछ लोग अन्त में कथा का सार लिख देते हैं, अथवा उपदेश देते हैं, और कुछ लोग कहानी की समाप्ति एक ऐसी अवस्था में करते हैं जिससे पढ़ने वालों को स्वयं सोचने का समय मिलता है कि आगे क्या हुआ। यद्यपि ऐसी दशा में लेखक का एक मुख्य भाव होता है परन्तु वह गुप्त रहता है। कथा को रोचक बनाने के लिए दृष्टान्त भी दिये जाते हैं जिससे एक कहानी के अन्दर दूसरी कहानी का-आनन्द मिलने लगता है; परन्तु इसमें इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि लेखक विषय से बहक न जाय।

३—विचारात्मक (व्याख्यात्मक)

जिन लेखों में विचार-शक्ति से अधिक काम लिया जाता है वे विचारात्मक निबन्ध कहलाते हैं। इसके अन्तर्गत चिन्ता, दया, क्षमा, क्रोध आदि भावपूर्ण विषय रहते हैं। बालकों को इन विषयों पर पहिले लेख न लिखना चाहिए; क्योंकि इनमें सफलता उन्हीं को मिलती है जिन्होंने दुनिया देखी है और उसका अच्छा अनुभव प्राप्त किया है। इसके लिए ज्ञान की आवश्यकता है। इन लेखों में उदाहरणों से नियम निकाले जाते हैं तथा नियमों का उपयोग जीवन की अन्य अवस्थाओं में होता है। इसमें विवेचना की अधिक आवश्यकता होती है। अतएव विचारात्मक लेख लिखना हँसी-खेल नहीं है।

४—आलोचनात्मक (तार्किक या विवेचनात्मक)

जिन लेखों में किसी पात्र अथवा लेख के गुण और अवगुणों पर विचार किया जाता है वे आलोचनात्मक प्रबन्ध कहलाते हैं। वाद-विवाद, भाषण, धर्म, सदाचार, नीति आदि

का समावेश इनमें होता है। इस प्रकार के लेखों में तर्क की बड़ी आवश्यकता होती है। जो जितना अच्छा तर्क करना जानता है वह उतना ही शीघ्र अपने विपक्षी को हरा सकता है। इस प्रकार के लेख लिखना भी विद्वानों का ही कार्य है। बालकों को केवल पात्रों के चरित्रों की आलोचना करनी होती है। अतएव उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसी को न तो आसमान पर चढ़ा दिया जाय और न किसी को कुँए में ढकेल दिया जाय। प्रशंसा उतनी ही जितने का वह अधिकारी हो और निन्दा भी उतनी ही जितने उसमें दोष हों। व्यर्थ के लिए एक की स्तुति और दूसरे की निन्दा करना सर्वथा त्याज्य हैं। अतएव समालोचना उचित हो, दोष रहित हो, न्याय संगत हो और युक्ति-युक्त हो।

लेख लिखने की रीति

१—जैसे-जैसे तुम्हारे मस्तिष्क में विचार आते जाएँ उन्हें शीघ्र लिखते जाओ। इन लिखे हुए विचारों पर फिर से दृष्टि डाल लो।

२—जितना समय तुम्हारे पास हो उसका कम से कम छटा भाग ढाँचा तैयार करने में लगाओ। फिर ढाँचे के अनुसार अपने संकलित विचारों को कई भागों में विभाजित करलो और देखो, कौन बात किस भाग में डाली जा सकती है। ऊपर ढाँचे में जो विचार जिस भाग में आये हैं उस भाग में उन विचारों की क्रमसंख्या लिख दी गई है। निबन्ध ढाँचे के अनुरूप ही लिखना चाहिए।

३—निबन्ध की प्रत्येक बात को उसकी आवश्यकता और उप-योगिता की दृष्टि से ही स्थान दो। ऐसा न हो कि अनावश्यक

बातों को अधिक स्थान दे दिया जाये और आवश्यक बातों को कम। विषय से विषयान्तर की ओर जाना चाहिए। स्पष्ट लिखो, जो कुछ लिखो उसका आशय ठीक होना चाहिए।

४—भाषा सरल और व्याकरण के अनुसार बिलकुल विशुद्ध होनी चाहिए। बहुत जटिल शब्द या वे शब्द जिनके अर्थ तुम्हें न ज्ञात हों, मत लिखो और इस बात का प्रयत्न मत करो कि बहुत लिखो, वरन् इस बात की कोशिश करो कि जितना लिखो; बहुत सुन्दर तथा अच्छा लिखो। फिर पीछे पढ़े हुए शीर्षक; विरामचिह्न, अनुच्छेद और शैली आदि प्रकरणों में अध्ययन की हुई बातों को स्मरण रखो और जहाँ जिस बात की आवश्यकता हो उन्हें प्रयोग में लाओ। जब निबन्ध पूरा लिख जावे तब उसे दुबारा पढ़ लेना चाहिए और जो त्रुटि उसमें रह गई हो उन्हें ठीक कर दो। अतएव छात्रों को उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए निबन्ध-रचना करनी चाहिए।

(१) भारतीय घरेलू उद्योग-धन्धे

<u>रूप-रेखा :—</u>

१—पश्चिमीय उद्योगों का प्रभाव। २—जाग्रति। ३—आवश्यकता। ४—योजना। ५—ढङ्ग। ६—लाभ। ७—शिक्षा। ८—उपसंहार।

पश्चिमी औद्योगिक क्रान्ति की लहरें भारत में भी आकर टिक गईं। मशीन-युग प्रारम्भ हो गया। बस, फिर, क्या था,

मशीन निर्मित वस्तुओं का ताँता लग गया। भारत में भी धनी-मानी लोगों ने बड़े-बड़े कारखाने खोल दिए।

गाँवों से कच्चा माल आने लगा। मशीनों ने उससे अनेक वस्तुएँ बना कर बाज़ार भर दिया। फलतः गाँव उजड़ने लगे और नगर व्यापारिक केन्द्र बनने लगे। निर्धन कृषक-वृन्द खेती और अनिश्चित उपज से ऊब गये। अब जुलाहों के करघे ज्यों के त्यों विश्राम लेने लगे। बड़े-बड़े ग्रामीण कारीगर अपने शिल्प-कौशल और शक्ति विश्वास खोकर निठल्ले हो गये। उन्होंने 'मरता क्या न करता' वाली उक्ति के चरितार्थ करते हुए नगरों की शरण ली।

इन व्यापारिक परिवर्तनों की प्रतिक्रिया शीघ्र दृष्टिगोचर होने लगी। मानवता का स्थान दानवता ने ले लिया। इस समय यदि युद्ध न छिड़ जाता तो किसानों, मज़दूरों और बेकारों की जटिल एवम् कठिन समस्या का परिहार करना कठिन ही नहीं, असम्भव सा हो जाता। अब देश के बड़े-बड़े नेताओं ने सारा दोष मशीनों के मत्थे मढ़ा, यद्यपि इस तथ्य में बहुत कुछ सत्य है। यहीं से पुराने कृषि-कर्म और घरेलू उद्योग-धन्धों का पुनरुत्थान प्रारम्भ हुआ।

अब भारत में वह समय है जो किसी समय इङ्गलैण्ड में था। सारे देश में यही ध्वनि प्रतिध्वनित होती थी, (Back to land) 'गाँवों को जाओ'। भारत की बिखरी और भग्नावशेष संस्कृति पर फिर से राजप्रसाद खड़ा किया जा रहा है। गाँव-गाँव में ग्राम-सुधार योजना लागू की जा रही है।

इस समय अनेक धन्धे—जैसे मधु-मक्खियों को पालना, कपड़ा बुनना, मुर्गी तथा सुअर पालना इत्यादि व्यवसाय

बहुत लाभदायक सिद्ध हो रहे हैं। घरेलू उद्योग-धन्धों से न केवल आर्थिक अपितु धार्मिक समस्या के हल होने की भी सम्भावना है।

यह युग विज्ञान का है। घरेलू उद्योग-धन्धों को मशीनों से प्रतियोगिता करनी है। भारतीय नेताओं ने घरेलू उद्योग-धन्धों द्वारा यहाँ की जनता में नवीन स्फूर्ति प्रदान की है। हम पर पाश्चात्य सभ्यता के शिष्टाचार का रङ्ग चढ़ गया है। हमारा मानसिक और शारीरिक अधःपतन हो गया है। परन्तु अन्त में हमें भारत की पुरानी संस्कृति की शरण लेनी ही पड़ेगी। इसम विश्व-बन्धुत्व के कण छिपे हुए हैं।

थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ गाँवों में व्यापारों के अनेक केन्द्र स्थापित हो गए हैं। इस समय सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि गाँवों में न तो धन है और न उन्हें अच्छे पथ-प्रदर्शक ही मिलते हैं। इसके अतिरिक्त मशीन-प्रतियोगिता भी उन्हें आगे बढ़ने से रोकती है। आवश्यकता इस बात की है कि शिल्प कलाविदों को यथेष्ट पुरस्कार दिये जायँ, बड़े-बड़े केन्द्र स्थापित किये जायँ, स्वदेशी को प्रोत्साहन दिया जाय, जनता में अपने देश की बनी हुई वस्तु श्रेयस्कर समझने की क्षमता आ जाय। तभी इन उद्योग-धन्धों की उन्नति हो सकती है।

हमारे देश का कला-कौशल अत्यन्त उच्चकोटि का था। ढाके की मलमल का एक थान दियासलाई के एक छोटे से बक्स में भरा जा सकता था। काशी की रेशम और लखनऊ की चिकन कपड़े के उत्तम केन्द्र थे। चुनार के बर्तन, कालपी का काग़ज़ अपना जोड़ नहीं रखते थे। ताजमहल और मन्दिरों की

कारीगरी भी उच्चकोटि की थी। इस समय यह सारी बातें हव
हो गई हैं।

इस विज्ञान-युग ने सहस्रों मनुष्यों को बेकार बना दिया है।
आलस्य और कायरता ने वह डेरा डाला है कि मालूम न भारत-
वासी कब जागेंगे। अपने देश की उन्नति तभी सम्भव है, जब
घरेलू उद्योग-धन्धों का पुनरुत्थान होगा।

हर्ष का विषय है कि सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित
हुआ है। अब पाठशालाओं में भी इस बात का प्रयत्न किया
जा रहा है कि बालक केवल किताबी न रहें, वरन् कुछ
हस्त-कौशल भी सीखें।

जिस समय हम स्वावलम्बी हो जावेंगे, उस समय देश से
कच्चे माल का निर्यात न होगा। तब हम आर्थिक सङ्कट से दूर
हो जावेंगे। सारे देश में एकता हो जावेगी। ईश्वर करे, वह
दिन शीघ्र देखने को मिले जिस दिन भारत की भी गणना एक
उन्नतिशील देश में हो।

राजनाथ अग्रवाल बी० ए०

२—१५ अगस्त सन् १९४७

(१) भूमिका इतिहास की अद्भुत घटना।
(२) उत्सव का आयोजन।
(३) पुराज्य पर्व दिवस का प्रातःकाल।
(४) झण्डा अभिवादन।
(५) सार्वजनिक सभायें।
(६) रात्रि में दीपमालिका का उत्सव।
(७) सारांश।

शताब्दियों से परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़ी हुई भारत माता की बन्धन-मुक्ति का दिवस आगया। यह वह दिवस है जहाँ इतिहास का नव-निर्माण पुनः प्रारम्भ होगा। साथ ही उसके मुख पृष्ठ पर स्वर्ण अक्षरों में अङ्कित रहेगा '१५ अगस्त सन् १६४७ जिन्दाबाद'। भारतमाता स्वतन्त्र हो गई। यह वह दिवस था जब कि देश ने स्वतन्त्रता की साँस ली। यह वह दिन था जब कि भारतमाता की आँखों के तारे स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर अपने को उत्सर्ग करनेवाले लाड़लों ने माता का बन्धन काट दिया। यह वह दिन था जिसके आह्वान में कितने अमर शहीदों ने अपने को बलिदान कर दिया। यह वह दिन था जिसके लिए ललनाओं ने पतियों को, माताओं ने पुत्रों को आगे बढ़ने के लिए उत्साहित किया था। कितने लोग घरबार से वञ्चित हो गये। कितनों की फूली फुलवारी उजड़ गई। इस प्रकार स्वतन्त्रता का संग्राम जब से आरम्भ हुआ था तब से जनता को न जाने कितने प्रकार के बलिदान करने पड़े। अन्त में स्वतन्त्रता के साधनों की साधना पूर्ण हुई। इतने बलिदानों के बाद आने वाले अद्भुत दिवस पर भला भारतवासी क्यों न प्रसन्नता प्रकट करेंगे?

उस समय जितने स्त्री, पुरुष, बालक, युवा थे; सभी की मुखाकृति पर एक अद्भुत आभा झलक रही थी। यह अद्भुत दृश्य गाँधी जी के चलाए हुए असहयोग आन्दोलन तथा उनके सहकारी कार्यकर्त्ताओं के अधिक परिश्रम के फलस्वरूप उपस्थित हुआ था। इस कारण सभी कांग्रेस के कार्यकर्त्ता फूले नहीं समा रहे थे क्योंकि कल ही स्वतन्त्रता का वह तड़का होगा जिसको देखने के लिए माँ की बलि-वेदी पर उत्सर्ग होने

वाले बालक ने कहा था—

आँख निकाल फेंक टीले पर, करता तब आघात् ।
जिससे सुख से देख सकूँ, मैं भारत स्वाधीन प्रभात् ॥

पर्व-दिवस आने के कई दिन पूर्व से ही जनता ने देश को सजाने का आयोजन करना प्रारम्भ किया था। काग़ज़ की तिरङ्गी झन्डियाँ तथा सजाने के अन्य सभी उपक्रम निश्चित दिन पूर्व ही तैयार कर लिए गए थे। कपड़े के घड़े झंडे तैयार कर लिए गए थे। १४ अगस्त के प्रारम्भ से ही सब लोग बड़ी लगन के साथ स्वतन्त्रता देवी के स्वागत-कार्य में लग गए। कहीं बाँस गाड़ा जा रहा था तो कहीं लकड़ी का खंभा। कहीं केले के फाटक बनाए जा रहे थे, कहीं अशोक की पत्तियों के। कहीं लाल झंडियों के द्वार बनाए जाते थे। कहने का तात्पर्य यह कि भारतीय-भूमि पर निवास करनेवाले सभी मतों के लोग हृदय खोल कर स्वतन्त्रता के स्वागत में लगे हुए थे। गृह द्वार, मन्दिर, प्रमुख स्थानों के वृत्त सभी अपनी अपूर्व आभा से आभासित हो रहे थे। इस प्रकार की सजावट के पश्चात् काग़ज़ की झंडियों को चारों तरफ़ लगा दिया गया था। उसमें कहीं-कहीं काग़ज़ के बने हुए कन्डील लटका दिए गऐ थे। वे इसलिए लटक रहे थे कि सायंकाल के समय उसमें मोमबत्तियाँ रखदी जायँ। इस प्रकार के समस्त आयोजन समाप्त हो जाने के पश्चात किसी द्वार का 'आज़ाद गेट' किसी का 'जवाहर गेट' किसी का 'पद्मधर गेट' किसी का 'भारतमाता द्वार (गेट), किसी का स्वतन्त्रता द्वार' नाम रख दिया गया। मकान, गली, कूँचा, चौराहा प्रायः सभी सजा दिया गया। १४ अगस्त की अर्द्ध रात्रि का समय था। १५ ता० अगस्त की

आरम्भ होने वाली थी। बारह बजे और शंख-ध्वनि तथा घंटा-ध्वनि द्वारा स्वतन्त्रता देवी का आह्वान किया गया। स्वतन्त्रता की इस प्रसन्नता में स्थान-स्थान पर भजन, कीर्तन इत्यादि शुभ-कार्य होने लगा। गीता तथा रामायण का भी मधुर पाठ होने लगा। तन्द्रावस्था में पड़ा हुआ देश आलस्य त्याग कर उठ पड़ा। कर्तव्य और अधिकारी भावना पुनः उसके लाड़लों के हृदयों में जाग्रत हुई।

१५ अगस्त सन् १६४७ के चार बजे थे। प्रभात फेरी की भेरी ने अपने मधुर स्वर से पुनः जागरण का सन्देश दिया। जाग्रत देश को भला नींद कैसे आती ? सब शीघ्र ही एकत्र हो गए। प्रभात फेरीवालों का गान "झंडा ऊँचा रहे हमारा, विजयी विश्व तिरङ्गा प्यारा" की सुमधुर ध्वनि कानों में गूँज उठी। सभी लोग उठे। नित्य-कर्म से अवकाश ले, सुन्दर स्वदेशी वस्त्र धारण कर, राजकीय भवन की ओर चले। रास्ते में एक-एक कर 'भारतमाता की जय' 'स्वतन्त्र भारत की जय' 'वीर जवाहर की जय' 'अमर शहीद की जय' 'सुभाष बोस की जय' 'भारत स्वतन्त्र हुआ' के नारों से आकाश को गुञ्जित कर दिया। प्रभात् फेरीवालों के आगे चक्र-चिह्नित झण्डा था और पीछे स्त्री-पुरुषों की अपार भीड़। ऐसा अनुपम परिवर्तन देश के इतिहास में कहीं और कभी नहीं आया क्योंकि शान्त वातावरण में स्वतन्त्रता का यह प्रथम आगमन था।

दर्शक जनता की अपार भीड़ से राजकीय भवन भरा था। बाहर मैदान में सैनिक डटे हुए थे। जनता इस बात की प्रतीक्षा में थी कि कब १०॥ बजे। १०॥ बजे प्रान्त के शिक्षा-

मन्त्री श्री सम्पूर्णानन्द जी ठीक समय पर आ उपस्थित हुए। झण्डा अभिवादन हुआ। सैनिकों ने झण्डे को प्रणाम् किया और स्वागत् की राजकीय मर्यादा का पालन किया। पुनः एक बार प्रसन्नता के जन-रव से आकाश गूँज उठा।

इसके पश्चात् जनता राजकीय भवन से वापिस लौटी। रास्ते के झण्डों की फरफराहट देख कर चित्त प्रसन्न हो जाता था। आज सर्वत्र तिरंगे झण्डे और झण्डियाँ ही दिखाई पड़ रही थीं। झण्डे हवा में इस प्रकार हिल रहे थे मानो स्वतन्त्रता देवी अपने हाथों से विदेशों को भाग जाने का आदेश दे रही हो। अथवा यों कहें कि झंडा ललकार कर कह रहा है कि विदेशियों! अब तुम इस देश पर अपना अधिकार जमाने का साहस मत करना। यह स्वतन्त्रता का प्रतीक देशवाशियों की रग-रग में स्फूर्ति भर रहा था। देश के सभी घरों की स्त्रियों ने अपने-अपने घरों को राष्ट्रीय झंडे से जाकर दर्शनीय बना दिया था। स्कूल की बालिकाओं ने तो झंडे के रंग की साड़ी से ही अपने को आभूषित किया था! उनको देखने से तो यही प्रतीत होता था कि मानो स्वतन्त्रता देवी अपने अनेक रूप धारण कर अपने आप पर मोहित हो रही है। इसके पश्चात् कितने लोगों ने पुण्य-दिवस-स्मृति पर वृक्षादि आरोपित किए।

सायंकाल ३ बजे के पश्चात् पुनः सार्वजनिक सभाओं की आयोजना हुई। ख्याति प्राप्त स्थानीय तथा बाहर के नेताओं के भाषण हुए। साथ ही नेताओं ने देश के सभी लोगों को इस स्वतन्त्रता की सुचारू रूप से रक्षा करने तथा अपने नागरिक कर्तव्य पालन करने का आदेश दिया। इसके पश्चात् बलि वेदी पर बलिदान हुए अमर शहीदों के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की, जिनके महान त्याग से आज इस पुण्य दिवस के दर्शन हुए।

सूर्यास्त समीप था। लोगों ने अपने-अपने घरों की छत्तों पर दीप रखने के लिए गीली मिट्टी रखना प्रारम्भ किया। सड़क के किनारे-किनारे के बाँसों पर भी यही दृश्य दिखाई पड़ने लगा। तात्पर्य यह कि प्रायः सभी राजकीय तथा जनता के मकानों की छतों पर थोड़ी ही देर में दीपमालाऐं जगमगाने लगीं। सड़क के किनारे लटके हुए कंडीलों में मोमबत्तियाँ जल रही थीं। स्थान २ पर काँग्रेस कार्यकर्त्ताओं के पूर्व कार्यों के चित्र लगे हुए थे जो देखने में उनके त्याग और बलिदानों की कथा को मूक भाषा में प्रकाशित कर रहे थे। चारों तरफ़ प्रकाश का साम्राज्य था। दीपों की पंक्तियाँ ऐसी मालूम होती थीं मानो सँभालने के लिए असंख्य तारे दल-बल सहित अवतीर्ण हुए हों।

मधुर संगीत तथा रेडियो द्वारा गाए गये बन्देमातरम् गान की ध्वनि से आकाश गूँज रहा था। मन्दिरों में लोग कीर्तन आदि कर रहे थे। सभी ख़ुशी मनाने में लगे हुए थे।

भारतीय स्वतन्त्रता का १५ अगस्त जिस समारोह तथा सजधज के साथ मनाया गया है उस प्रकार का आज तक कोई उत्सव नहीं मनाया गया। सभी लोगों का कथन था कि इस प्रकार का अपूर्व दिवस उनके जीवन में कभी नहीं आया। परन्तु सभी को एक बात और मालूम हो जानी चाहिए कि इस प्रकार की अपूर्व स्वतन्त्रता भी किसी देश को नहीं मिली। अभी तक हम परतन्त्र देश के निवासी थे परन्तु अब इस उत्सव को स्वतन्त्रता के वातावरण में मनाया था जिसके लाने में हम अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ कई बलिदान कर चुके थे। भला, उसके आने पर हम भारतीय क्यों न खुशी मनाते। तात्पर्य यह है कि राष्ट्र के स्वर्ण अक्षरों में अंकित उस दिन का हम

लोगों ने हृदय से स्वागत् किया। बालकों को मिठाई बाँटी गई। हर स्थान पर मेला सा लगा था। हर मनुष्य अपने को सजाए हुए था। घर-घर लोगों ने हृदय से स्वागत् किया। इस प्रकार दीन-हीन भारत में स्वतन्त्रता देवी के मार्ग में अपने हृदय के पाँवड़े बिछा दिये गए। हम भारतीयों को अब पूर्ण विश्वास के साथ अपने देश में सुख-समृद्धि के लिए उद्योग करना चाहिए।

४—ग्राम्य-जीवन तथा उसके गुण और दोष

ग्राम जीवन कितना सुन्दर है। कवि जब इस सुन्दर जीवन की कल्पना करता है तो उसकी आवाज़ अनायास ही गूँज उठती है—

> "अहा! ग्राम्य-जीवन भी क्या है?
> क्यों न यहाँ सब का जी चाहे?"

शहर के कोलाहल से दूर प्रकृति की गोद में स्वस्थ्य और सुशीतल वायु में रहने के लिये किसका मन न चाहेगा? भारत के गाँवों की शोभा देखकर ही हमारे राष्ट्र कवि ने कहा था—

सुजलाम्, सुफलाम्, मलयज शीतलाम् शस्य श्यामलाम् मातरम्।
वन्दे मातरम्॥

संसार में राजनैतिक महत्त्व और संस्कृति का दावा करने वाले किसी भी नगर-निवासी से पूछिये कि तुम्हारे मुख पर जो यह स्वास्थ्य की लाली है, क्या तुम्हारी ही है—क्या किसी से उधार ली हुई नहीं है? यह निश्चय है कि वह अपने को गाँव का ही ऋणी बतायेगा।

हमारे गाँव का जीवन किसान का जीवन है। हाँ, उनके पास धन नहीं है—अच्छे-अच्छे वस्त्र नहीं किन्तु यदि नगर के

एक बड़े सेठ से एक ग़रीब की तुलना की जाय तो अधिक शांतिमय जीवन उस किसान का ही मिलेगा। शहर का सारा छल, कपट, वैमनस्य और कोलाहल गाँव के भोलेपन में सिधाई, सच्चाई और मित्र-भाव की सीमा में सीमित हो जाता है। उन्हें इन सब की आवश्यकता ही नहीं है जो केवल कर्म ही करना जानता है और फल की इच्छा परमेश्वर के ऊपर छोड़ देता है।

गाँव में रहनेवाले किसान, लोहार, बढ़ई आदि जितने भी हैं, एक कुटम्बी की भांति रहते हैं और मिलकर काम करते हैं। लोहार और बढ़ई किसान के हल तैयार करते हैं और किसान उन लोगों के लिए अनाज तथा फल। सब एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं तो फिर वैमनस्य कैसा? छल-कपट कैसा? शायद ही किसी गाँव में कोतवाली या कचहरी मिलेगी। उन्हें इन सब की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। यदि आवश्यकता भी होती है तो उनकी पंचायत में सब तय हो जाता है। इस पराधीनता में भी गाँवों में स्वाधीनता की झलक है।

नगर के निवासी धन से सम्पन्न होने पर भी तथा बड़ी-बड़ी इमारतों में रहने पर भी, परमेश्वर की देन से वंचित हैं, नगरों में ऐसे बहुत कम बच्चे हैं जो स्वस्थ दिखाई देंगे। नगर की इमारतें उस स्वास्थ्यदायिनी वायु को नहीं प्रवेश करने देतीं जो मनुष्य को हृष्ट-पुष्ट और फुर्तीला बनादे। नगर में साफ़ हवा सोने के मोल भी नहीं मिलती। किन्तु गाँवों में मुफ़्त प्रातःकाल-सायंकाल जिस समय भी निकल जाइए प्रकृति की शोभा मन मोह लेगी। वसन्त में पीली सरसों के लहलहाते हुये खेत, बरसात में भरे हुये नदी-नाले, हरे-भरे पेड़ किस के चित्त को आकर्षित न कर लेंगे। प्रकृति किसी का भेद-भाव नहीं करती।

किन्तु इन सब के होते हुये भी ग्राम्य-जीवन में विद्या संबंधी उन्नति के साधन कम क्या, बिलकुल नहीं हैं। गाँवों में पुस्तकालय आदि नहीं मिलते हैं। गाँवों की तरफ़ शिक्षा-समितियों का ध्यान ही नहीं जाता और यही कारण है कि वहाँ साक्षरता नहीं है। गाँवों के अधिकतर लोग अशिक्षित ही रह जाते हैं और वे किसी प्रकार की उन्नति नहीं कर पाते। विज्ञान की इतनी उन्नति होने पर भी इस विषय में ग्रामवालों का ज्ञान किंचित् मात्र भी नहीं है। वहाँ न अच्छे चिकित्सालय हैं और न पानी निकलने का प्रबन्ध। वर्षा के दिनों में सड़कों पर कीचड़ हो जाती है और कीट-कीटाणुओं की अधिकता से सारा गाँव नरक हो जाता है। प्रकृति ने जो कुछ भी दिया है वह लोगों की मूर्खता के कारण नष्ट और कलुषित हो जाता है।

ग्राम्य-जीवन के इस दोष की जिम्मेदारी बहुत कुछ शहर वालों के ऊपर भी है। शहरवाले गाँवों की ओर ध्यान नहीं देते। शहर के बड़े-बड़े लोग व्यर्थ में इतना धन गँवा देते हैं। किन्तु वह यह नहीं सोचते कि ग्राम में भी एक पुस्तकालय खोल दिया जाय जिससे कि गाँववाले शिक्षित हो सकें या गाँवों में कृषि तथा अन्य कलाओं की उन्नति की ओर ध्यान दें। वे यह नहीं सोचते कि मानव के विकास में गाँवों का ही हाथ अधिक होगा। प्राचीन ऋषि-मुनियों ने इसे समझा था और इसीलिए वानप्रस्थाश्रम की योजना की थी। प्रो० गिडिग्स लिखते हैं—"हमारी कच्ची वस्तुएँ गाँवों से आती हैं, इसी तरह अछूते मौलिक विचार और मौलिक भावनाएँ भी गाँव वालों की देन है।"

४—अपने जीवन के भविष्य के सम्बन्ध में दो विद्यार्थियों का संवाद लिखना
(सन् १६४८)

मोहन—भाई सोहन ! कल हम लोगों का वार्षिक परीक्षा-फल निकलने वाला है। हाई स्कूल पास करके इन्टरमीजियट में कौन-कौन से विषय लोगे ?

सोहन—भाई, मैं तो इन्टरमीजियट में इतिहास, नागरिकशास्त्र और अर्थशास्त्र लूँगा।

मोहन—क्यों, किस लाइन में जाने का विचार है ?

सोहन—भाई मोहन ! मैं तो वकालत करूँगा। स्वतन्त्र पेशा है। किसी की नौकरी नहीं, रुपया भी कमाने का मौक़ा काफ़ी मिलता है।

मोहन—भाई वकालत के पेशे से मुझे तो बहुत घृणा है। इसमें बहुत झूठ बोलना पड़ता है। फिर यह पेशा स्वयं बुरा। पुराने ज़माने में वकालत का पेशा नहीं था।

सोहन—यह सब ठीक है, लेकिन एक वकील अपने भाइयों की सेवा तथा देश की सेवा खूब कर सकता है। देखो, हमारे देश के जितने त्यागी पुरुष हुए हैं वे सब वकील थे और हैं; जैसे स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू, महात्मा गाँधी जी, पं० जवाहरलाल नेहरू, पं० गोविंद वल्लभ पन्त, स्वर्गीय भूलाभाईदेसाई आदि सभी किसी समय वकील थे। इसमें स्वतन्त्रता रहती है।

मोहन—यह तो ठीक है ; पर एक डाक्टर, मास्टर भी तो किसी न किसी तरह देश की सेवा करता है।

सोहन—हाँ मोहन ! तुम ठीक कहते हो। प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ मानव-सेवा कर सकता है। पर हमारा देश इस

समय बड़ी गिरी दशा में है। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि देश में बड़े त्यागी पुरुष हों जो कि अपना तन-मन-धन सब कुछ देश पर अर्पित कर दें। मैंने तो यही सोचा है कि वकालत में बहुत-सा रुपया पैदा करके पं० मोतीलाल नेहरू की तरह, सारे धन को भारतमाता के चरणों पर अर्पित कर दूं। वह धन गरीबों और असहाय लोगों के काम आयेगा। स्वयं मैं तो राजनीति में भाग लेकर देश को दुनिया की आँखों में ऊँचा उठाऊँगा।

मोहन—सोहन, वास्तव में तुम्हारे विचार बहुत ऊँचे हैं। यदि सचमुच देश में ऐसे त्यागी पुरुष हो जायँ तो देश का कल्याण हो जाय।

सोहन—मैंने राजनीति में भाग लेना इसीलिए उचित समझा क्योंकि देश की राजनैतिक उन्नति पर सब प्रकार की उन्नति निर्भर है। यद्यपि हमारा देश अब स्वतन्त्र हो गया है तथापि अभी हम युवकों को देश को शक्ति-शाली बनाना है। इसके लिये हमें व्यक्तिगत सुखों को छोड़कर देश के सुख की ओर ध्यान देना चाहिये। नेताजी सुभाष को देखो, गाँधी जी को देखो, जवाहरलाल नेहरू को देखो। इन लोगों ने अपना तन-मन-धन सब कुछ देश पर अर्पण कर दिया। सरदार वल्लभभाई पटेल और राजगोपालाचार्य भी एक गिन्ती के महान् पुरुष हैं जिनका सारा धन देश-सेवा के कार्यों में ही व्यय होता है। सच्चे जीवन का आनन्द इसी में है कि भविष्य जीवन में उसी पथ को अपनाऊँ। परन्तु मोहन! तुम अपने जीवन को किस साँचे में ढालोगे?

ईश्वर की कृपा से पिता की अपार सम्पत्ति के तुम्हीं मालिक होगे। तुम्हें तो नौकरी करने की आवश्यकता भी नहीं। मेरी राय तो यह है कि तुम भी राजनैतिक जीवन बिताओ।

मोहन—सोहन ठीक है। पर तुम्हें यह कदाचित् नहीं मालूम कि जिस प्रकार हमारे शरीर में पृथक्-पृथक् अंग पृथक्-पृथक् कार्य करते हैं और प्रत्येक अंग सारे शरीर की सेवा में तत्पर रहता है, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य देश सेवा, अपने ढंग से अपनी रुचि के अनुसार करता है।

सोहन—कैसे ?

मोहन—देखो, यदि मैं साहित्य की सेवा करूँ तो एक प्रकार से मैं देश की सेवा कर रहा हूँ। क्या सूर, तुलसी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, प्रेमचन्द आदि ने साहित्य सेवा कर देश की भी सेवा की ? मैंने भी यही विचार किया है कि मैं अपना जीवन साहित्य सेवा ही में बिताऊँगा। इससे अपनी आत्मा का भी कल्याण होगा तथा साहित्य और देश की सेवा होगी।

५—'सठ सुधरहिँ सतसंगति पाई'

गोस्वामी तुलसीदास जी ने इन शब्दों से गागर में सागर भर दिया है। अच्छी संगति नीच मनुष्य को भी देवता बना देती है। यदि हम संसार के इतिहास पर दृष्टि डालें तो हमें विदित होगा कि किस प्रकार दुष्ट से दुष्ट लोगों ने सत्संग से देवत्व को प्राप्त किया। हमारे देश में बाल्मीकि जी की कथा किसे नहीं मालूम। जिस प्रकार नीचों की संगति से मनुष्य नीच

बन सकता है उसी प्रकार अच्छे मनुष्यों की संगति से मनुष्य अच्छा भी बन सकता है।

जब तक बच्चा घर में रहता है घर का वातावरण उस पर सदैव अपना असर डालता रहता है। जिस प्रकार हमारा शरीर पुष्ट पदार्थों से बन पाता है उसी प्रकार हमारी आत्मा सत्संग से बली बनती है। संस्कृत में एक श्लोक है जिसका अर्थ यह है कि संगति से ही दोष, गुण पैदा होता है।

यदि एक नीच और दुष्ट मनुष्य को सत्संग का लाभ दिया जाय तो वह अवश्य उस अच्छी संगति का लाभ उठायेगा। मनोविज्ञान यह कहता है कि मनुष्य अनजाने में दूसरों की प्रवृत्ति ग्रहण करता है। तो यह स्पष्ट है कि नीच मनुष्य अच्छे मनुष्यों की संगति से उनकी अच्छी बातों को ग्रहण करेंगे। आगे चलकर दूसरों की प्रवृत्ति ग्रहण करने का कार्य एक आदत में परिवर्तित हो जाता है। चरित्र-निर्माण के लिए संगति की बहुत आवश्यकता है। एकान्त में, मनुष्यों से दूर, जंगल में जहाँ विचारों का आदान-प्रदान न हो सके; विचारों और भावों का सम्पर्क न हो; वहाँ चरित्र-निर्माण नहीं हो सकता।

अच्छे गुणी और साधू मनुष्यों के व्यक्तित्व में एक प्रकार की विदित रहती है, एक प्रकाश रहता है जो अपना-अपना प्रभुत्व, असर अवश्य डालता है। इङ्गलैंड में एक बहुत बड़ा शिक्षा-प्रचारक डाक्टर आर्नोल्ड हो गया है। उसके व्यक्तित्व से ही उसके स्कूल के लड़के बहुत प्रभावित हो जाते थे। उसकी जीवनी लिखनेवाला लिखता है—"डाक्टर आर्नोल्ड के व्यक्तित्व में एक प्रकार का जादू था जो अपने असर से एक नया वातावरण पैदा कर देता था, जिससे आत्मा ऊपर उठ

आती थी।" अच्छे मनुष्यों की संगति दोहरा काम करती है एक तो बुरी प्रवृत्ति का दमन करना दूसरे अच्छी प्रवृत्ति का पैदा करना। संगति का प्रभाव तो इतना पड़ता है कि यदि कोई मनुष्य अपने कमरे में महापुरुषों के चित्र लगावे तो भी उसका बड़ा अच्छा असर पड़ता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अच्छी सङ्गति का असर दुष्टों को सुधारने में बहुत बड़ा कार्य करता है। माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चों को सदैव अच्छी सङ्गत में रखने की चेष्टा करें। साधारण से साधारण मनुष्य जब गाँधीजी, नेहरू जी तथा ऐसे ही अन्य वीरों के त्यागमय जीवन पर दृष्टि डालते हैं तो उनके हृदय में स्फूर्त्ति पैदा हो जाती है। जब ऐसे वीरों के सत्सङ्ग का सुअवसर प्राप्त हो तो फिर कहना ही क्या?

५—प्राकृतिक दृश्य

फाल्गुन का महीना था और प्रभात का समय। ऋतुराज के आगमन के आनन्द में ऊषा ने प्राची क्षितिज को कुंकुम से लाल कर रखा था। कुसुम-कुञ्ज और लता-द्रुमों को सुसज्जित करने के लिये प्रकृति सुन्दरी ने अपना अलङ्कार मंजूषा को मुक्त-हस्त हो रिक्त कर डाला था। बसन्ती वायु मन्द मन्द गति से सुगन्ध वितरण कर रही थी।

ऐसे शुभ अवसर पर मैं अनेकों विचारों में मस्त था। दरवाजा खटका। नौकर, दलीप आया है बाबू जी। अनेकों विचारों से ग्रस्त होने के कारण मैंने जल्दी से पूछा कौन दलीप? बाबूजी वही आपका पुराना मित्र! हाँ, ध्यान आया। उसको बुलाओ। दलीप ने अन्दर प्रवेश किया। दलीप को देखते ही मैं उठ पड़ा और उसे आदर सत्कार से बैठाया।

दलीप :—मित्र मोहन ! आज से स्कूलों की छुट्टियाँ हो गई हैं। कहो, कहीं सैर करने का विचार किया है क्या ? अच्छा अवसर है। चलो कहीं पर घूमने चलें। मोहन बोला—मित्र मैं अभी इसी विषय पर विचार कर रहा था कि यकायक प्राकृतिक दृश्य देखने की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई। इतने ही में चार पाँच मित्र और आ गये। सबने मिल कर हरिद्वार चलने के लिये परामर्श किया। कल हम लोग हरिद्वार को प्रस्थान करेंगे, यह इससे बड़ा प्रसन्न था और "कल" की प्रतीक्षा इतना विकल कर रही थी कि एक-एक मिनट घण्टों-सा प्रतीत होता था। दिन किसी प्रकार काट दिया। रात्रि भी एक एक तारे गिन कर काट दी।

फिर क्या था। प्रातः ही रेल में बैठ कर देहली की ओर चल पड़े। राह के प्राकृतिक दृश्य सब सामने आते गये। हृदय प्रसन्न होने लगा। ठण्डी ठण्डी वायु हृदय को विदीर्ण करने लगी हृदय चञ्चल हो पड़ा। थोड़े समय बाद गाड़ी ठहरी और हम लोग उतर पड़े। दो तीन दिन विश्राम किया, फिर वहाँ से प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लूटने के लिए पैदल ही चलना अच्छा समझा। प्रातःकाल होते ही हरिद्वार की ओर चल पड़े। राह के प्राकृतिक दृश्यों को देखकर मन कितना प्रसन्न होता था, यह वर्णन करना कठिन ही है। ऐसा प्रतीत होता था कि ईश्वर ने सृष्टि के रचने में अपनी सारी मस्तिष्क-शक्ति लगा दी होगी और इन्हीं वस्तुओं को देखकर ईश्वर की महिमा प्रकट होती थी।

कहीं सरिता, तड़ाग, पोखर हैं तो कहीं बाग़-बगीचे तो कहीं वाटिकायें हैं। कहीं पक्षी बोल रहे हैं तो कहीं कोयल की मधुर और हृदय को लुभानेवाली कूक भी सुनाई दे जाती

थी। रंग-बिरंगे फूल कैसे भले मालूम होते थे। इस प्रकार छः सात दिन बाद हम सब लोग अपने निश्चित स्थान पर पहुँच गये। सन्ध्या हो गई थी। सूर्य्य भगवान् अस्ताचल को प्रस्थान कर चुके थे। मन्द-मन्द वायु बह रही थी। चन्द्र भगवान् निकलने वाले ही थे। रात्रि होने वाली थी। इसलिए एक सराय में ठहर गए। प्रातःकाल होते ही गङ्गा स्नान को चल दिये। गङ्गा के दोनों ओर पहाड़ों की ऊँची-ऊँची श्रेणियाँ अपनी अनूठी छठा दिखा रही थी और अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती थीं। जल-प्रपात क्या ही हृदय को मुग्ध कर रहे थे! बात की बात में दो तीन घण्टे का समय मिनटों की भांति कट गया।

दूसरे दिन प्रातः होते ही हम लोगों ने आगे की ओर प्रस्थान किया। रास्ता बात की बात में कट जाता था। चारों ओर घूम घूम कर प्राकृतिक दृश्यों का निरीक्षण करने लगे। गङ्गाजी तथा जल-प्रपातों का कलकल शब्द सङ्गीत से भी भला मालूम होता था। पहाड़ों के ऊपर पड़ी बर्फ हंसों की पंक्तियों को भी लज्जित कर रही थी। तोतों के झुण्ड के झुण्ड मँडराये हुये फिर रहे थे। कहीं कहीं चट्टानों पर पड़ी ओस की बूंदें मोतियों जैसी प्रतीत होती थीं। स्थान की शोभा मनमोहक तथा हृदय को प्रसन्न करनेवाली थी। हम लोगों को यह स्थान स्वर्ग से भी बढ़ कर प्रतीत होने लगा। चारों ओर रङ्ग-बिरंगे फूल खिल रहे थे। मैना का मधुर शब्द अनोखी स्मृति पैदा करता था। जलाशयों का ऊँचे शिखर से गिरना ऐसा मालूम होता था कि मानों चाँदी की बड़ी बड़ी शिलाएँ चट्टानों से खिसक रही हों! इन दृश्यों को देख कर सहसा यह पता लग जाता था कि ईश्वर की सत्ता किसे कहते हैं और वह कैसा प्रतापी है! इस

प्रकार हमने अनेकों प्राकृतिक दृश्य देखे। पन्द्रह दिन सहसा ही कट गये। हृदय तो लौटने के लिये नहीं करता था, परन्तु छुट्टियाँ समाप्त हो चुकी थीं इसलिए लौटना ही पड़ा।

सब लोगों ने प्रातः ही दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया। सन्ध्या हुई। रास्ते में एकदम काली घटा छा गई। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। वायु तीव्रता से चलने लगी, ठंढ सताने लगी। हम लोग घबरा गए। सब वहीं पर बैठ गए और भाग्य को कोसने लगे। एकदम वायु का वेग थम गया, भारहीन बादल व्योम पर ठहरने लगे। सौदामिनी दामिनी ने दमक कर पथिकों की पैनी दृष्टि को एकवाटिका की ओर आकृष्ट किया। द्वार पर पहुँचे कपाट बंद थे। कुन्डी खटखटाई। "कौन" अन्दर से आवाज़ आई 'पथिकहैं' क्या चाहते हो ?'आश्रय' कपाट खुले। थोड़ा सा जल पिया और विश्राम किया तथा प्रातः ही चल पड़े। थोड़े समय बाद दिल्ली पहुँच गए। वर्षा से रेल में बैठ कर और रास्ते के प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लूटते हुए अपने घर पहुँचे।

प्रत्येक व्यक्ति को प्राकृतिक दृश्य देखने चाहिए। प्राकृतिक दृश्य देखने से अनेकों लाभ हैं। प्राकृतिक दृश्य देखने से मनुष्य की बुद्धि का विकास होता है। हृदय बहलाव का भी अच्छा साधन है। ईश्वर ने संसार में क्या क्या सौन्दर्य पैदा किया है यह इन्हीं को देख कर ज्ञात हो सकता है। इससे सांसारिक ज्ञान भी हो जाता है। जो प्राकृतिक दृश्य नहीं देखते वह मूर्ख मनुष्य के समान हैं क्योंकि प्राकृतिक दृश्यों के देखने में और उनकी प्रशंसा में भाग लेना चाहिये। आप कहेंगे कि प्रशंसा से क्या तात्पर्य है। यही कि आपको यह बताने लगे कि इस दृश्य में और फलाँ दृश्य में क्या भेद, तथा अनोखी बातें भरी हैं।

६—बिहारी की कविता

कविवर बिहारीलाल उस समय उत्पन्न हुये थे जब भारत पर मुसलमानों का शासन पूर्णरूप से स्थापित हो चुका था। मुसलमानी शासन में भोग-विलास की पराकाष्ठा हो गयी थी। राजपूत राजा तथा हिन्दू जनता भी विलासिता के इन्द्रजाल में फँस कर अपनी स्वतन्त्र सत्ता को भूल गई थी। उर्दू कविता श्रृंगारिक भावनाओं तथा वैचित्र्य की भरमार हो रही थी। उसके प्रभात से हिन्दी-काव्य भी नहीं बच सका। भक्ति-काल की भक्त-मन्दाकिनी अब लुप्त हो चली थी और उसके नायिका भेद, नख-शिख वर्णन औ ऋतु-वर्णन वर्षा काल की गँदली सरसी की भांति हिन्दी-काव्य-से उमड़ रहे थे।

कविता में उक्ति-वैचित्र्य का विशेष ध्यान रक्खा जाता था और दोहों में छोटे-छोटे भावों को अलङ्कारों से सुसज्जित करके काव्य-शास्त्र की कसौटी पर कस कर काव्य-रसिकों के सम्मुख रखना काव्य-कौशल का चिह्न माना जाता था। बिहारी की कविता पर उनके युग का पूर्णरूप से प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभा का प्रथम परिचय राजा जयसिंह को एक दोहा लिख कर दिया। जयसिंह अपनी नवविवाहिता पत्नी के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर, भोग-विलास में लिप्त होकर राज्य-कार्य के उत्तरदायित्व को भूल चुके थे। तब बिहारी ने यह दोहा उनको सुनाया—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बँध्यों, आगे कौन हवाल?

इसके पश्चात् बिहारी राजा जयसिंह के यहाँ राज-कवि के रूप में रहने लगे। उन्होंने अनेक दोहे बनाये जिनमें से ७०० उपलब्ध है, जो 'बिहारी सतसई' में संगृहीत हैं।

यों तो बिहारी ने अपनी सतसई में नीति, प्राकृतिक रहस्य, गणित ज्योतिष आदि विभिन्न विषयों पर प्रकाश डाला है परन्तु उनका मुख्य विषय शृङ्गार है। शृङ्गार के दोनों पक्षों-संयोग, विप्रलम्भ का सुन्दर चित्रण हमें 'बिहारी सतसई' में मिलता है। बिहारी ने अपने दोहो द्वारा गागर में सागर भरने का प्रयास किया है। वे ऐसे उच्च भाव को अपने काव्य-कौशल द्वारा दोहा जैसे छोटे छन्द बाँध कर अत्यन्त सरस शब्दों में हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। इन दोहों में कला की प्रधानता है और अलङ्कारों की भरमार पायी जाती है। परंतु ये अलङ्कार में कहीं भी अस्वाभाविकता अथवा भद्दापन दृष्टिगत नहीं होते। कहीं-कहीं पर तो एक-एक दोहे में अनेक अलङ्कारों की सफल योजना हुई है।

बिहारी का शृङ्गार-वर्णन तुलसी आदि भक्ति-कालीन कवियों की भांति मर्यादा पूर्ण नहीं है। तत्कालीन राज-समाज की रुचि के अनुकूल उनके दोहों में शारीरिक सौन्दर्य का नग्न चित्रण किया गया है। नख-शिख वर्णन करते हुये उपमा आदि देने में कवि ने आस्मान के कुलावे मिलाने का प्रयत्न किया है। नायिका को कटि सूक्ष्म ब्रह्म की भांति अलग बताई गई है।

नायक-नायिकाओं का आधार लेकर कुत्सित भावनाओं का अनेक स्थानों पर प्रदर्शन किया गया है। उक्ति-वैचित्र्य की इतनी भरमार है कि कहीं-कहीं पर वास्तविक भाव में कोई विशेषता न होते हुए भी पाठक उर्दू कविताओं के प्रेमियों की भांति 'वाह वाह' करने लगते हैं। इस प्रकार भाव-गम्भीर के

दृष्टिकोण से बिहारी की कविता उच्च कोटि की नहीं ठहराई जाती। परन्तु कला की दृष्टि से वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

बिहारी ने अपने दोहों में कोरी कला का ही प्रदर्शन नहीं किया है वरन् उनमें अपने लोक-सम्बन्धी अनुभव को भी स्वाभाविक रूप से व्यक्त किया है। नायक-नायिकाओं के एक दूसरे के प्रति कथनों में कवि ने सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं की बड़े वैज्ञानिकों ढंग से अभिव्यक्ति की है। रीति सम्बन्धी भावों, विभावों तथा अनुभावों का वर्णन करने में कवि ने बड़ी सूक्ष्म-दर्शिता से काम लिया है। बिहारी ने भक्ति तथा नीति संबन्धी दोहे भी लिखे हैं। भक्ति-सम्बन्धी दोहों में भी उन्होंने अलंकारों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। श्री राधा से अपनी भव-बाधा को मिटाने के लिये प्रार्थना करते हुये वे श्लेष अलंकार द्वारा बड़ा चमत्कार उत्पन्न कर देते हैं :—

मेरी भव–बाधा हरो, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परे, स्यामु हरित दुति होइ॥

बिहारी की कविता ब्रज-भाषा में है। कहीं-कहीं पर बुन्देल-खंडी, उर्दू तथा फ़ारसी आदि भाषाओं के शब्दों को भी स्वाभाविक रूप से अपनाया गया है। बिहारी की भाषा अत्यंत परिष्कृत तथा परिमार्जित है और उसमें माधुर्य-गुण पाया जाता है।

इस प्रकार बिहारी रीति-कालीन कवियों में अग्रगण्य हैं और हिन्दी साहित्य में तुलसी तथा सूर्य के पश्चात् तृतीय पद के अधिकारी हैं।

७—तुलसी की कविता

कवि अपने युग का प्रतिनिधि होता है। यह कथन जितना

कबीर के लिए उपयुक्त है, सम्भवतः उससे भी अधिक तुलसी के लिए। तुलसीदास जी के समय में भारत में मुसलमानों का शासन सुदृढ़ हो गया था। कबीर आदि सन्त कवियों की वाणी का हिन्दू जनता पर जो प्रभाव पड़ा उससे उसकी रुचि कर्मकाँड तथा अन्य धार्मिक क्रिया-कलाप की ओर से हट गई थी। उसमें हिन्दू धर्म के प्रति श्रद्धा बढ़ती जाती थी। निराश हिन्दू जनता के लिये कोई ऐसा महान् सन्देश नहीं था जिसके आधार पर वह अपने में शक्ति संचित कर सकती। अनेक हिन्दुओं ने इस्लाम को स्वीकार कर लिया था और अनेक राजपूत राजाओं ने अकबर की कुटिल नीति को अपना कर उससे विवाह-सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे।

सूरदास जी तथा अष्टछाप के अन्य कवियों ने भक्ति की मन्दाकिनी प्रवाहित की जिससे जनता की रुचि ईश्वर-भक्ति का ओर आकृष्ट होने लगी थी, परन्तु सूरदास जी ने जनता के सम्मुख कोई धार्मिक अथवा सामाजिक व्यवस्था नहीं रखी जिसका अनुसरण करके वह अपने को सुसंगठित कर सकती। कबीर की निर्गुणोपासना तथा वल्लभाचार्य और रामानन्द द्वारा सम्पादित सगुणोपासना के कारण साधारण जनता में बड़ा असन्तोष फैला हुआ था, वह अपने मार्ग को निश्चित रूप से निर्धारित नहीं कर सकती थी। शव और वैष्णवों की प्रतिद्वन्द्विता ने भयंकर रूप धारण कर लिया था। भक्ति, ज्ञान, और वराग्य मार्ग एक दूसरे से पृथक् हो चले थे। उनके अनुयायिओं में पारस्परिक द्वेष प्रारम्भ हो गया था। वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था भिन्न-भिन्न हो चली थी। ऐसी अवस्था में किसी ऐसे महान् पुरुष की आवश्यकता थी जो अपने सन्देश द्वारा इन विभिन्न दशाओं में सामंजस्य स्थापित करके धर्म तथा समाज को सुव्यवस्थित कर सके।

गोस्वामी तुलसीदास ने इस आवश्यकता की पूर्त्ति की। उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी के जीवन का आधार लेकर अपने 'रामचरितमानस' में मानव-जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का सुविस्तृत वर्णन किया। निराश हिन्दू जनता को उन्होंने विश्वास दिलाया कि राम दुखी दीन मनुष्यों की सहायता के लिए तथा भक्त और साधू पुरुषों की रक्षा के लिए बार-बार संसार में अवतार लेते हैं। उन्होंने अपनी कविता में भक्ति-पयस्विनी को प्रवाहित करके सन्त कवियों की नीरस वाणी से अतृप्त हिन्दू जनता के हृदयों में सरसता का संचार किया। शंकर के अद्वैतवाद का आधार लेते हुए यद्यपि उन्होंने यह बताया कि समस्त विश्व में ब्रह्म की ही सत्ता है, तथापि स्वामी रामानन्द के अवतारवाद का समर्थन करते हुए यह भी बताया कि वही निर्गुण ब्रह्म सन्तों तथा भक्तों की रक्षा के लिये सगुण रूप में संसार में अवतीर्ण होता है।

इस प्रकार उन्होंने सगुण तथा निर्गुण के भेद को मिटा कर निराश हिन्दू जनता के उद्धार का आश्वासन दिलाया। अनेक स्थलों पर राम के द्वारा शिव की तथा शिव के द्वारा राम की उपासना करके उन्होंने शैव और वैष्णवों के भेद-भाव को मिटा कर उनमें पारस्परिक प्रेम की भावना उत्पन्न की। भक्ति, ज्ञान और वैराग्य में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध स्थापित करके उन्होंने बताया कि बिना भक्ति के ज्ञान और वैराग्य निरर्थक हैं, बिना ज्ञान के भक्त तथा वैरागी अपनी चरम साधना तक नहीं पहुँच सकते और बिना वैराग्य के भक्त तथा ज्ञानी सांसारिक बन्धन से मुक्त नहीं हो सकते। अतएव प्रधान रूप से किसी एक को अपनाते हुए भी साधक को तीनों की आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त तुलसीदास जी ने वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था को स्थापित किया । उन्होंने अपने मानस में समाज के अनेक सम्बन्धों का वर्णन करते हुए बताया कि पुत्र का माता-पिता की ओर, भाई का भाई के प्रति, पत्नी का पति के प्रति, शिष्य का गुरू के प्रति, बधू का सास-श्वसुर के प्रति क्या कर्तव्य होना चाहिये और इस बात का विवेचन करते हुये तुलसीदासजी ने राजनीति पर भी अपने विचार प्रकट किये हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि उन्होंने अपने मानस में जीवन सम्बन्धी सभी आवश्यक बातों पर प्रकाश डाल कर धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्था स्थापित की और हिन्दू जनता को जाग्रति का सन्देश दिया ।

कला की दृष्टि से भी तुलसीदास जी ने अपनी कविता में अद्वितीय सफलता प्राप्त की । उनके सामने भाषा पद्य की कई शैलियाँ प्रचलित थीं । तुलसीदास जी ने अपनी महान् प्रतिभा के द्वारा सभी शैलियों में सफलतापूर्वक कविता की । उन्होंने अवधी तथा ब्रजभाषा दोनों पर ही समान अधिकार दिखाया । अवधी के साहित्यिक सौन्दर्य की पराकाष्ठा उन्होंने अपने भाषा 'मानस' में कर दी और 'गीतावली' तथा 'कृष्ण गीतावली' में ब्रजभाषा का प्रयोग करके उन्होंने उसमें वही माधुर्य भर दिया जो हमें सूर की कविता में मिलता है । साथ ही साथ संस्कृत का पुट देकर उन्होंने अपनी कविता की भाषा को पूर्ण रूप से साहित्यिक तथा परिष्कृत कर दिया । भाषा की प्रांजलता, स्वाभाविकता तथा शुद्धता में तुलसी ने हिन्दी साहित्य में अद्वितीय सफलता प्राप्त की ।

परन्तु "तुलसी की गम्भीर वाणी शब्दों की कलाबाजी" उक्तियों की झूठी तड़क-भड़क आदि खेल-वाणों में नहीं उलझी

है वह श्रोताओं और पाठकों को ऐसी भूमियों पर ले जाती है जहाँ से जीते जागते जगत् की रूपात्मक और क्रियात्मक सत्ता के बीच भगवान् की भावमयी मूर्ति की झाँकी मिल सकती है।"

तुलसी की सबसे बड़ी विशेषता है प्रबन्ध-पटुता जिसके कारण उनका 'मानस' इतना लोकप्रिय हो सका। शील निरूपण तथा चरित्र-चित्रण में भी उनका स्थान सर्वोच्च है। 'मानस' में राम, भरत, लक्ष्मण, दशरथ रावण आदि का चरित्र-चित्रण ही स्वाभाविक हुआ है। तुलसी का प्रकृति निरीक्षण भी उच्च कोटि का है। प्रकृति की चंचलता, सजीवता, नीरवता आदि के बहुत स्वाभाविक चित्र उनकी कविता में प्राप्त होते हैं। पुष्प-वाटिका में प्रकृति-निरीक्षण की अभिव्यक्ति अत्यन्त ही सुन्दर हुई है। तुलसीदास जी की भावुकता मर्यादा का आवरण पहन कर बहुत ही आकर्षक रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होती है। 'मानस' के मर्मस्पर्शी स्थानों के विशद् वर्णन को पढ़ते समय हम उसमें तन्मय हो जाते हैं और तब तुलसी की भावुकता का हमें भली-भांति परिचय मिल जाता है।

तुलसी के भावों का स्वाभाविक उद्वेग उनके स्वाभाविक अलंकारों के सामंजस्य से और भी चमत्कृत हो जाता है। जैसे–

उदित उदयगिरि मंच पर, रघुवर बाल पतंग।
विकसे संत सरोज बन, बिहँसे लोचन भृंग॥

यों तो उन्होंने अलंकारों का प्रयोग किया है, परन्तु उनकी कविता में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा अनुप्रास का ही आधिक्य मिलता है। साहित्यिक रसों की मन्दाकिनी तो उनकी कविता में सर्वत्र प्रकाशित है। 'कवितावली' में वीर और भयानक की; 'गीतावली' में करुणा की; 'पार्वती मंगल'; 'जानकी मंगल', 'बरवै रामायण' में शृङ्गार की, 'विनय पत्रिका' में शान्त की और

'मानस' में तो सभी रसों की अपूर्व छटा देखने को मिलती है; 'परन्तु गोस्वामी जी की किसी भी कृति में रसात्मकता का तूफ़ान नहीं। गोस्वामी जी की गहरी भावनायें विस्फोट की झकझोर नहीं है' उनके शृङ्गार वर्णन में भावों की अनूठी हिचक है जैसा कि निम्नलिखित दोहे से प्रदर्शित है :—

'उठी सखी हँसि मिसु करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुवर के भये उनींदे नैन॥

इस प्रकार क्या जीवन की विस्तृत व्याख्या में और क्या कला के प्रदर्शन में। तुलसी हिन्दी के अन्यान्य कवियों से कहीं ऊँचे उठ जाते हैं। अतः हम निश्चयात्मक रूप से कह सकते हैं कि तुलसीदास जी हमारे काव्य के श्रेष्ठ कवि हैं।

८—सम्राट् अशोक

निबन्ध की सूची :—

(१) वंश परिचय। (२) बाल्यकाल। (३) युवावस्था। (४) विजय। (५) आकस्मिक परिवर्तन। (६) जीवन के महान् कार्य।

सम्राट् अशोक

१—वंश परिचय

भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास देखने से पता चलता है, कि सर्वप्रथम जिस शक्तिशाली वंश ने सफलतापूर्वक एक महान् साम्राज्य स्थापित किया था, वह मौर्य वंश था। इस वंश की नींव चन्द्रगुप्त ने डाली थी। ऐसा कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त मुरा नामक एक शूद्र कन्या से उत्पन्न हुआ था, इसी कारण इस वंश का नाम "मौर्य वंश" पड़ा। इसी वंश में

अशोक जैसे महाप्रतापी सम्राट् ने जन्म लिया जिसने महान् कीर्त्ति को प्राप्त कर अपने नाम को चिरकाल के लिए अमर बना दिया।

२—बाल्यकाल

बाल्यकाल में अशोक को वही शिक्षा मिली जो परम्परागत क्षत्रिय-राजकुमारों को मिला करती थी। धनुष बाण चलाने और आखेट तथा शत्रुओं का वीरतापूर्वक सामना करने वह दक्ष था। साहित्यिक शिक्षा के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि संस्कृत की शिक्षा उसे दी गई थी, परन्तु इसका उस समय अधिक प्रचार न होने के कारण पाली को—जो उस समय की प्रचलित भाषा थी—उसने अपनाया। राजकुमार की अवस्था बढ़ने पर उसके पिता ने, जो उस समय भारत के सम्राट् थे, यह इच्छा प्रकट की कुमार को भी राज-काज में भाग लेना चाहिए। कुमार भी पूर्णतया सहमत हुए। राजकुमार के प्रयत्न से वे अनेकों देश, जो मगध साम्राज्य के बाहर थे, इस बात पर विवश किए गए कि वे साम्राज्य का आधिपत्य स्वीकार करलें।

३—युवावस्था

युवावस्था में सम्राट् कुमार से बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे तक्षशिला का सूबेदार नियुक्त किया। इसके बाद यह मालवा तथा उज्जैन का भी सूबेदार बनाया गया। इन स्थानों पर कुमार ने अपनी प्रतिभा, शक्ति और राज-कार्य करने की योग्यता का पूर्ण परिचय दिया। सम्राट् के देहान्त के बाद अशोक ही भारत का महाराजाधिराज हुआ और उसने मगध के सिंहासन को सुशोभित किया। इस समय तक ऐसा प्रतिभा-

शाली तथा महात्मा राजा मगध के सिंहासन पर आरूढ़ नहीं हुआ था।

४—विजय

अपनी शिक्षा का प्रभाव प्रत्येक मनुष्य पर पूर्णरूप से होना प्रायः स्वाभाविक ही कहा जा सकता है, परन्तु साथ ही साथ यह भी है कि कभी-कभी ऐसी घटना भी उपस्थित हो जाती है जो जीवन-मार्ग बदल देती है। ऐसा ही आकस्मिक परिवर्त्तन हमें गोस्वामी तुलसीदास के जीवन में भी मिलता है। अशोक गद्दी पर बैठने के समय अपनी शिक्षा के अनुसार महाक्रूर तथा उद्दंड था। दया के भावों का तो उसके हृदय में अभाव ही था। सिंहासनारूढ़ होने के कुछ ही समय बाद उसने कलिङ्ग पर आक्रमण करने का विचार किया और हाथी, घोड़े, रथ तथा असंख्य पैदल सेना लेकर वह उस पर टूट पड़ा। कलिङ्ग इस असंख्य सेना के बीच क्षणभर में उसी प्रकार नष्ट होगया जिस प्रकार कि भयङ्कर अग्नि में एक पतङ्ग जल जाता है। रण-भूमि में लाशों के ढेर लगे थे, रक्त की नदियाँ बह रही थीं और आहतों की कराह से भूमण्डल गूँज रहा था।

—आकस्मिक परिवर्त्तन

ऐसे हृदय-विदारक दृश्य का अवलोकन करते ही अशोक का हृदय पसीज उठा और उसके मन में अनेकों विचारों का आविर्भाव-तिरोभाव होने लगा। उन्होंने सोचा कि मनुष्य महत्त्व की आकांक्षा क्यों करता है? अपने को उच्च पद देने के लिए वह दूसरों को खाने के लिए क्यों दौड़ता है? जब कि वह जानता है कि उसका जीवन क्षणभंगुर है और संसार

में उसका कोई अस्तित्व नहीं है, तब भी वह अपने को ऊँचा बनाने के लिए क्यों फटफटाया करता है? इसी प्रकार के अनेकों विचारों ने उसके हृदय में एक घोर आन्दोलन मचा दिया। अशोक ने यकायक युद्ध रोकने की आज्ञा दी और उसी समय से यह प्रतिज्ञा की कि आज से कभी युद्ध करके किसी प्राणी को दुःख न दूँगा, बल्कि अब धर्म विजय करूँगा। ऐसा सोच कर वे शीघ्र ही मगध वापस आए और उन दुःखितों और घायलों को पूर्ण सहायता पहुँचाई जो कि युद्ध में घायल हुए थे।

६—जीवन के महान् कार्य

इस युद्ध के पहले महाराज को आखेट से अत्यन्त प्रेम था। उनके दरबार में मांस आदि का पूर्ण रूप से प्रचार था, और सुख की अनेकों सामग्रियाँ आठों याम उपस्थित रहा करती थीं। मधुर से मधुर गानेवाली, सुन्दर से सुन्दर नर्त्तकियाँ वहाँ पर उपस्थित रहा करती थीं। सम्राट स्वयं बड़ी सजधज तथा ठाट-बाट से रहा करते थे और स्त्रियां ही उनकी रक्षक बनी चौबीसों घण्टे उनको चारों ओर से घेरे रहती थीं। परन्तु कलिंग के युद्ध का सम्राट् के हृदय पर ऐसा गम्भीर प्रभाव पड़ा कि बात की बात में उन्होंने इन सब बातों को त्याग दिया और "अहिंसा परमोधर्मः" को अपना मूल मंत्र बना लिया।

उस दिन से सम्राट ने प्रजा के साथ अत्यन्त सराहनीय बर्ताव किया, और उसके सुख तथा ऐश्वर्य के लिये जीवन भर लगे रहे। समस्त भारत में उनका राज्य था। उन्होंने बड़ी-बड़ी सड़कें बनवाईं, उनके किनारे हरे वृक्ष लगवाये, कुएँ खुदवाए तथा सराएँ बनवाईं जिससे कि यात्रियों को किसी प्रकार का कष्ट न हो। उन्होंने बड़े-बड़े कर्मचारी नियुक्त किए जो कि धर्म

महामात्र कहलाते थे, जिनका काम धर्म के नियमों का पालन कराना था। यदि कोई कर्मचारी प्रजा पर अत्याचार करता था तो उसे कठिन दंड दिया जाता था। साम्राज्य में अनेकों अस्पताल खुले हुए थे जिनमें मनुष्यों तथा पशुओं की चिकित्सा होती थी। बौद्ध धर्म की उन्नति के लिए अशोक ने सराहनीय प्रयत्न किया, और यह उन्हीं के प्रयत्न का फल है कि भारतवर्ष के बाहर आज भी यह धर्म विराजमान है। परन्तु भारतवर्ष में अशोक की मृत्यु के बाद उनका साम्राज्य तथा बौद्ध धर्म दोनों ही छिन्न-भिन्न हो गए।

रूप-रेखाओं की सहायता से निबन्ध लिखना

किसी विषय पर निबन्ध लिखने के लिए उसकी रूप-रेखा का बनाना और फिर उसकी सहायता से लेख बढ़ा लेना चाहिए। हम यहाँ पर कुछ निबन्धों की रूप-रेखाएँ देते हैं। विद्यार्थियों को चाहिए कि उनकी सहायता से वे लेख बढ़ा कर लिखें।

१—मित्रता का आदर्श

१—मित्रता किसे कहते हैं ? मनुष्य-मनुष्य में क्यों मित्रता हो जाती है ?

२—सामाजिक जीवन में मित्रता का स्थान।

३—प्राचीन आख्यानों में राम और सुग्रीव की मित्रता, कृष्ण और सुदामा की मित्रता आदि से हमें मित्रता का क्या आदर्श मिलता है ?

४—मित्रता की क्यों आवश्यकता है ?

५—मित्र का चुनाव।

६—मित्रता और स्वार्थ ।

७—आधुनिक भौतिकवाद के युग में साधारणतया कैसे मित्र होते हैं ?

८—सच्चे मित्र में कौन-कौन गुण होने चाहिए ?

२—ब्रह्मचर्य तथा उसका जीवन पर प्रभाव

१—परमात्मा में विचार करना—समस्त इन्द्रियों का संयम् रखना ।

२—ब्रह्मचर्य के लाभ—जीवन को सुन्दर तथा निरोग बना देता है । मुख पर कान्ति लाता है—स्मरण-शक्ति तथा प्रखर बुद्धि हो जाती है—चित्त एकाग्र हो जाता है और ज्ञान की प्राप्ति होती है—क्रोध-क्षोभ ईर्ष्या आदि पर विजय ।

३—किसी ब्रह्मचारी के जीवन का उदाहरण भीष्म पितामह—महात्मा गाँधी आदि ।

३—जिसकी लाठी उसकी भैंस

इस विषय के पक्ष में बोलने के लिए व्याख्यान

किसी विषय के पक्ष में बोलने के लिए निम्नलिखित ढङ्ग से अपना वक्तव्य तैयार करना चाहिये :—

'श्रीमान् सभापति', से ही सम्बोधन करना चाहिये। वाद-विवाद में अपने तर्क-वितर्क 'सभापति' से ही सम्बोधन करना चाहिये। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस'—यह बड़ी पुरानी कहावत है जिसका अर्थ है कि शारीरिक शक्तिवाला ही सदा विजयी होता है। इसमें शरीरिक शक्ति की ही महत्ता का आभास मिलता है। इसमें हिंसा और युद्ध की भावना है किन्तु

आधुनिक सत्य और अहिंसा का सन्देश हमारे स्वर्गीय महात्मा गाँधी जी ने दिया है। इसलिए यह कहावत अब निरर्थक है।

व्याख्यान में तर्क-वितर्क के साथ इस कहावत की पूर्ण समीक्षा करना चाहिये तथा अन्त में अपना मत देना चाहिये। आरम्भ में 'देवियो और सज्जनो' आदि लिखना ठीक नहीं। यदि वाद-विवाद के अतिरिक्त किसी सभा में व्याख्यान दे तो देवियो और सज्जनो से सम्बोधन होना चाहिये।

४—वीर–पूजा

१—प्रत्येक जाति अथवा देश के मनुष्य अपने देश के ऐतिहासिक वीरों की पूजा करते हैं, उन वीरों ने उनकी जाति अथवा देश की उन्नति में विशेष प्रयत्न किया है; वीर अपनी कृतियों के द्वारा अपनी कीर्त्ति को संसार में अमर कर जाते हैं।

२—वीर–पूजा के द्वारा जाति अथवा देश में जागृति पैदा होती है; वीर–पूजा के आधार पर अनेक त्योहारों की उत्पत्ति हुई है। जैसे—दशहरा आदि।

३—वीर–पूजा धर्मांधता अथवा असभ्यता का चिह्न नहीं है वरन् देश का अपने पूर्व-पुरुषों के प्रति आदर और सम्मान का प्रतीक होता है।

४—वीर–पूजा में उदारता और सहिष्णुता का भाव होना चाहिये; प्रत्येक धर्म, जाति अथवा देश के वीरों और महापुरुषों के लिये श्रद्धा होनी चाहिये। परस्पर द्वेष और वैमनस्य हानिकारक है।

५—भारत में पौराणिक वीरों की पूजा का अधिक प्रचार है—राम, कृष्ण, तथा अन्य देवी-देवताओं की पूजा।

ऐतिहासिक वीरों की पूजा—शिवाजी, राणा प्रताप, दयानन्द, महात्मा बुद्ध आदि भी अत्यन्त आवश्यक हैं।

६—वीर-पूजा देशवासियों के भीतर नये-नये आदर्श तथा उच्च नैतिक विचारों को पैदा करती है।

५—आत्म-सम्मान

१—आत्म-सम्मान का अर्थ है अपने को सदा ऊँची दृष्टि से देखना—अहंकार और आत्म-सम्मान का मूल नम्रता, शिष्टता और विनय है।

२—अपने पर ही केवल अभिमान न होना चाहिए वरन् अपने देश, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपने पूर्व-पुरुषों तथा वर्तमान महा-पुरुषों को सम्मान और अभिमान के साथ देखना चाहिये—इससे राष्ट्रीयता के भाव उदय होते हैं।

४—आत्म-सम्मान में जब अहंकार आ जाता है तो परस्पर ईर्ष्या और वैमनस्य का प्रादुर्भाव हो जाता है।

५—आत्म-सम्मान के अभाव में व्यक्तिगत तथा राष्ट्र अथवा समाज के प्रति हानियां।

६—पराधीनता, दरिद्रता और अविद्या आत्म-सम्मान को कुचल देती है—समाज में ऊँच-नीच का भेद-भाव तथा धन का अव्यव-स्थित रूप से वितरण अधिकांश में मनुष्यों के भीतर अव्यय-सम्मान को नष्ट करने का मूल कारण है।

७—आत्म-सम्मान की शिक्षा बच्चे को आरम्भ से ही देनी चाहिये—बचपन से ही आदत पड़ जाने पर मनुष्य आगे चल कर अपना तथा दूसरों का सम्मान करता है।

६—आदर्श अध्यापक

१—अध्यापक किसे कहते हैं ? अध्यापक और विद्यार्थी का क्या सम्बन्ध है।

२—अध्यापक में आदर्श होने के लिए किन-किन गुणों की आवश्यकता है ? अध्यापक के कुछ गुण ये हैं, जैसे—सरलता किन्तु व्यक्तित्व में प्रभावशीलता और आकर्षण नम्रता, किन्तु अपराधी के दण्ड देने की क्षमता तथा विद्यार्थियों में संयम स्थापित करने की शक्ति, सहृदयता और प्रेम किन्तु समय और पात्र के अनुसार इनका प्रदर्शन हो, बालकों के साथ हिलमिल कर रहने की प्रवृत्ति, पाठशाला की कूटनीति आदि से पृथक् रहनेवाला, स्वस्थ तथा खेल-कूद में भाग लेनेवाला होना चाहिये।

३—आधुनिक अंग्रेजी स्कूलों के अध्यापकों की प्राचीन काल के गुरुओं से संक्षेप में तुलना।

४—अपने किसी एक अध्यापक का संक्षिप्त तथा मनोरञ्जक वर्णन।

७—समाचार-पत्र

१—भूमिका—समाचार-पत्रों की उपयोगिता।

२—समाचार-पत्रों का इतिहास तथा उनका विकास।

३—समाचार-पत्रों का प्रकाशन तथा प्रचार।

४—समाचार-पत्र से लाभ :—(१) विज्ञापन (२) व्यापारिक-उन्नति (३) सरकार तथा जनता के मध्य का सम्बन्ध (४) राष्ट्रीय उत्पादन का साधन।

५—हानि—साम्प्रदायिक मतभेद।

६—समाचार-पत्रों का भविष्य।

७—सारांश तथा प्रस्ताव, समाचार-पत्रों का महत्व।

८—महात्मा गाँधी

१—अंग्रेज़ी राज्य में आविर्भाव।

२—जन्म-तिथि तथा पारिवारिक परिचय।

३—अध्ययन, विवाह, तथा इङ्गलैन्ड-यात्रा।

४—वकालत तथा अफ्रीक-यात्रा और सत्याग्रह का आरम्भ।

५—बोअर तथा जूलू विद्रोह।

६—चम्पारन, खेड़ा तथा योरपीय महायुद्ध।

७—असहयोग आन्दोलन, साइमन कमीशन, गाँधी-इरविन समझौता, गोलमेज परिषद् तथा भारत छोड़ो आन्दोलन।

८—उपसंहार।

९—साँच बरोबर तप नहीं झूठ बरोबर पाप

१—भूमिका—सत्य तथा झूँठ की वास्तविकता।

२—सत्य ही महान तप है।

१—सद्विचार तथा आत्म चरित्र की दृढ़ता। (२) चरित्र-निर्माण में सहायक अङ्ग (३) प्रतिष्ठा तथ अलौकिक सुख का अनुभव।

३—झूठ बड़ा पा। है (१) आत्मिक विनाश (२) चारित्रिक भ्रष्टता दुःख का कारण है।

४—कुछ आदर्श पुरुषों का उदाहरण।

५—सत्यवादी होना ही महान् गुण है।

१०—भारतीय स्त्री-समाज

१—प्रस्तावना—समाज तथा स्त्रियों का सम्बन्ध।

२—समाज में स्त्रियों के कर्त्तव्य।

३—आदर्श स्त्री-समाज ही देश तथा राष्ट्र के निर्माण में सहायक होता है।

४—अनमेल सम्बन्ध से जीवन का कण्टकित होना।

५—उपसंहार।

११—रेडियो

१—प्रारम्भ।

२—रेडियो का आविष्कार।

३—रेडियो की उपयोगिता।

४—रेडियो और प्रचार।

५—रेडियो और मनोरंजन।

६—रेडियो से व्यापार में सहायता।

७—दुरुपयोग।

८—भारत में प्रचार की आवश्यकता।

९—उपसंहार।

कतिपय निबन्धों के विषय

वर्णनात्मक

१–कोई मेला २–उद्यान के आनन्द ३–किसी बुड्ढे मनुष्य की आकृति का विनोद पूर्ण वर्णन ४–हिमालय वर्णन ५–प्रातः–

का भ्रमण ६–चाँदनी रात में नौका विहार ७–गाँव का अस्पताल ८–वर्षाऋतु ६–ग्राम-पञ्चायत १०–कोई त्यौहार।

कथनात्मक

१–कहानियाँ २–विद्यार्थी जीवन के आनन्द ३–आत्म-कथा ४–पौराणिक कहानियाँ तथा आख्यायिकायें ५–सम्भाषण।

ऐतिहासिक

१–विक्रमादित्य २–अशोक ३–अकबर ४–हल्दी घाटी का युद्ध ५–शासन-सुधार ६–पं० जवाहरलाल नेहरू ७–बौद्ध-धर्म पानीपत का युद्धस्थल।

भावात्मक

१–भारत के साधू और भिखारी २–परीक्षा ३–सत्यभाषण ४–अध्ययन ५–क्रोध ६–स्वावलम्बन ७–व्यापार धन की कुञ्जी है ८–बादल।

आलोचनात्मक

१–रामायण में राम का चरित्र-चित्रण २–जहाँ सुमति तहँ सम्पत्ति नाना। ३–साहित्य में सूर का स्थान ४–किसी कवि या लेखक की समालोचना ५–किसी के चरित्र की आलोचना ६–कवि अपने युग का प्रतिनिधि होता है।

निबन्धों के अन्य विषय

१–किसी यात्रा का वर्णन २–महाराज शिवाजी १–सदाचार आदर्श है ४–बसन्त ऋतु ५–रुपये की आत्म-कहानी ६–जीवन का परिश्रम का महत्व ७–एक पन्थ दो काज ८– छुट्टियाँ कैसे बिताओगे? ६–युद्ध का विश्वव्यापी प्रभाव

१०–कांग्रेस जन रिश्वत लेकर कांग्रेस की जड़ खोखला कर रहे हैं ११–भावी चुनाव में प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य १२–हिन्दी ही देश की राष्ट्र-भाषा हो सकती है १३–निरक्षरता देश में रोड़े अटकाये है १४–शान्ति के लिए युद्ध आवश्यक है १५–बेसिक शिक्षा-प्रणाली १६–भारतीय किसान १७–होली १८–पार्वतीय-यात्रा १९–दीपमालिका २०–पुस्तकालयों की उपयोगिता २१–कवि-सम्मेलन २२–छात्रावास २३–वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के गुण-दोष २४–ग्रामीण जीवन ही श्रेयस्कर है २५–कांग्रेस में सुधार की आवश्यकता है।

पत्र-लेखन

पत्र-लेखन में पहले दाहिनी ओर ऊपर जिस स्थान से पत्र लिखा जा रहा है वहाँ का पूरा-पूरा पता लिखना चाहिये तथा बाँई ओर प्रशस्ति अथवा आदर या सम्बोधन सूचक शब्द या वाक्य के बाद ही उसी पंक्ति में अभिवादन-सूचक लिखना चाहिये। जैसे :—

१३ बहादुरगंज,
प्रयाग
१७–४–४८

प्रियवर मित्र महेश !

इसके पश्चात् अपनी कुशलता आदि की सूचना देते हुये जो बातें लिखना है उन्हें आरम्भ कर देना चाहिये। जब पत्र समाप्त हो जाय तो उचित समाप्ति-सूचक विशेषण देते हुये दाहिनी ओर अपना नाम लिखना चाहिये। जैसे :—

तुम्हारा स्नेही,
'श्री निवास'

जो कुछ लिखा जाय वह साफ़-साफ़ लिखा हो, पैराग्राफों में विभाजित हो तथा संक्षेप में हो। भाषा और शब्द रोचक हों तथा व्यर्थ की बातें न लिखी हों। मित्र के पत्र में मनोरंजकता के साथ-साथ हृदय की सुकुमार तथा गूढ़ से गूढ़ बातें व्यक्त की गई हों। पत्र समाप्त हो जाने पर बांई ओर निम्नलिखित ढङ्ग से पते का नमूना भी देना चाहिये :—

टिकट

श्री सेठ महेशचन्द जी,
मास्टर हीरालाल-सदन,
छिपैटी,
अलीगढ़।
(उत्तर प्रदेश)

प्रेषक—
श्री निवास शर्मा
१२ बहादुरगंज,
इलाहाबाद।

सम्बन्धियों के पत्र चाहे भले ही कुछ बढ़ जायँ परन्तु व्यवसायिक तथा राजकीय एवम् आवेदन-पत्र लिखते समय संक्षेप में लिखना चाहिये। इससे समय की पर्याप्त बचत हो जाती है। इस प्रकार पत्र-लेखन-प्रणाली को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—१—पारिवारिक २—व्यवहारिक और ३—राजकीय।

१—पुत्र को

१०५—मोतीकटरा,
आगरा ।
१०-११-४६

प्रिय मोहन,

आयुष्मान्भव !

तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ। समाचार ज्ञात हुआ। तुम्हारे गर्म कपड़ों के लिये मैं आज १००) भेज रहा हूँ इससे तुम शीघ्र अपने लिये कपड़ों का प्रबन्ध कर लेना। पढ़ने में ध्यान रखना क्योंकि परीक्षा निकट है। बड़े दिन की छुट्टियों में अवश्य घर आना क्योंकि शीला तुम्हारी याद करती है। तुम्हारी माता जी तुम्हें प्यार करती हैं। शेष कुशल।

तुम्हारा शुभेच्छु,
प्रभूदयाल 'तिवारी'

पता—

मोहनलाल शर्मा, कक्षा ६ बी० किशोरीरमण इन्टर कालेज मथुरा ।

२—पिता को

किशोरीरमण इन्टर कालेज,
मथुरा ।
८-११-४६

पूज्य पिताजी,

चरण वन्दना !

आपका कृपा पत्र मिला, तत्पश्चात् १००) का मनिआर्डर भी प्राप्त हुआ। आपकी आज्ञानुसार मैंने गर्म कपड़े बनवा लिए हैं।

मेरी परीक्षा आरम्भ हो गई है। अभी तक के प्रश्न-पत्र आपके आशीर्वाद से अच्छे हुए हैं। आशा है कि शेष प्रश्न-पत्र भी अच्छे ही होंगे। छुट्टी से पूर्व ही परीक्षा-फल भी ज्ञात हो जायगा। तत्पश्चात् मैं शीघ्र ही सेवा में उपस्थित हूँगा। पूजनीया माताजी को मेरा चरण स्पर्श तथा शीला को प्यार।

आपका आज्ञाकारी पुत्र,
मोहनलाल शर्मा

पता—

श्री प्रभूदयाल 'तिवारी'
१०५—मोतीकटरा,
आगरा।

३—मित्र को

भरतपुर,
३ जनवरी ४६ ई०

मित्रवर—वन्दे,

आप तो ऐसी खर्राटे की नींद सोए कि पत्रों की कानों पर भुनभुनाहट भी न मालूम पड़ी। दो-तीन पत्र भेज चुका, किन्तु आपने तो कुम्भकर्ण की तरह छः महीने की रात कर दी कि कानों पर ढोल बजते ही रहे। ऐसा नहीं है तो क्या आप मुझ से अप्रसन्न हो गए या भाभीजी ने पत्रोत्तर के लिए भी मनाई कर दी और या आपको हम जैसे अनावश्यक व्यक्तियों को पत्र लिखने के लिए समय नहीं मिलता। भाई क्षमा करना और भाभीजी से मेरी ओर से क्षमायाचना कर लेना।

यहाँ तो कोई नई बात नहीं हुई और जो कुछ भी थी पहले के पत्र में लिख चुका। अब आप अपने शहर के समाचार लिखना। पत्रोत्तर शीघ्र ही देना।

आपका अभिन्न,
जगदीशस्वरूप मिश्र

४—मित्र को (उत्तर)

१०, महाराजा रोड,
ग्वालियर।
१५—१—४६

मित्रवर !

खूब व्यङ्ग किया। यहाँ तक कह डाला कि 'भाभीजी से क्षमायाचना कर लेना' पत्र में तो अब क्या लिखूँ। मैं एक विशेष कार्य-वश भरतपुर आ ही रहा हूँ। वहाँ जितने आपने पत्र भेजे हैं उतने ही दिन ठहर कर आपकी नाक में दम कर दूंगा। बस।

आपका अभिन्न मित्र,
रामसहाय शर्मा

५—स्त्री की ओर से पति को

बरौलिया बिल्डिङ्ग,
बेलनगंज, आगरा।
२०-१-४६
१० बजे रात्रि।

मेरे मन मन्दिर के आराध्य देव,

सप्रेम नमस्ते !

जिस प्रकार पपीहा स्वाती बूँद के लिए, कुमुद चन्द्रोदय के लिए, कमल अरुणोदय के लिए, मयूर मेघ-मण्डली के लिए,

धान विपुल वारि के लिए लालायित एवम् उत्कण्ठित रहता है, उसी प्रकार मेरा चित्त-चकोर भी आपके पत्र-शशि को पाने के लिए व्यग्र रहता है। आप बाहर जाकर मुझ को भूल-सा गए हैं। मैं किस प्रकार आपको भूल सकती हूँ। आप ही मेरे जीवन के रत्न हैं, मेरे प्राण के आधार हैं एवम् मेरे ऐहिक सुख के दाता हैं। आपके मधुर स्मरण में सारी रात शय्या पर पड़े-पड़े यों ही गुज़र जाती है। कभी आपके फोटो की ओर देख कर चित्त को सान्त्वना देती हूँ तो कभी आपकी पुस्तकों की ओर ध्यान को आकर्षित करती हूँ, पर सब कुछ व्यर्थ हो जाता है। केवल आपके सुन्दर मुख-मण्डल को देखने की लालसा बनी रहती है। पर करूँ तो क्या करूँ ? आप बम्बई में पधारे हैं; और मैं आगरे में। यदि मैं वैज्ञानिक होती तो मैं अवश्य एक ऐसा यन्त्र का अविष्कार करती कि जिसके द्वारा आगरा में बैठे-बैठे आपके दैनिक कार्य-कलाप का पता चलता रहता। पर सब ओर से मैं सामर्थ्यहीन हूँ। मैं नहीं जानती हूँ कि अब किस प्रकार से अपने उत्कण्ठित चित्त को आश्वासन दूं। आज हिन्दू-समाज में कुल ललनाओं की ऐसी ही विषम परिस्थिति है। कोई बेचारी विरह-विधुरा होकर कालक्षेप कर रही हैं, कोई सास-ससुर की व्यङ्ग्यपूर्ण बातों की बौछार सहकर जीवन-यापन कर रही हैं और कोई बाल्यकाल में विवाहिता होने के कारण वैधव्य दुःख को भोग रही हैं। क्या ईश्वर ने भारत की स्त्रियों को इसीलिए बनाया है ? भगवन् ! सुनने में आता है कि तुम दुखियों के दुःख दूर करने वाले दीनानाथ हो। फिर आप इनके दुःख दूर करने का मार्ग न सुझायेंगे तो ये अबलायें किस प्रकार अपने जीवन को रख सकती हैं। अब कृपया मुझे यह बतलाने की कृपा करें कि जिस उद्देश्य से आप बम्बई गये हैं उसकी सिद्धि हुई या नहीं ?

आपका इन दिनों पूर्वापेक्षा स्वास्थ्य कैसा है? बम्बई का जल-वायु आपकी प्रकृति के अनुकूल है या प्रतिकूल? बम्बई में कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं की कैसी प्रगति है? सुनने में आता है कि भारतीय व्यापार-क्षेत्र में बम्बई प्रथम स्थान रखता है। आजकल वहाँ के व्यापार की कैसी दशा है?

परिवार में सब कोई आनन्दपूर्वक हैं। मुरलीधर नित्यप्रति नियमित रूप से पाठशाला जाया करता है। शारदा भी घर ही में पढ़ती है। चाचाजी उसको बड़े प्रेमपूर्वक पढ़ाते हैं। अक्षरों का ज्ञान हो गया है, अब अक्षर योजना बतला रहे हैं। मैं भी अवकाश के समय वही इण्डियन प्रेस से प्रकाशित 'महाभारत' को पढ़ा करती हूँ। बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। योगिराज श्रीकृष्ण का परिज्ञान होता है तथा उस समय की सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का भी सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है। मेरी इच्छा है कि मैं आगामी वर्ष प्रयाग महिला विद्या पीठ की 'विदुषी' परीक्षा के लिए तैयारी करूँ। आपकी क्या सम्मति है? यदि अनुकूल हो तो कुछ पुस्तकें भेज दीजिये।

इति शुभ। शेष पुनः।

आपके चरणों की दासी

बिमलाकुमारी गुप्त

१—व्यवसायिक-पत्र

मथुरा

सेवा में— १२-६-५०

मैनेजर,

पी० सी० द्वादश श्रेणी एण्ड कम्पनी लिमिटेड,

बड़ा बाज़ार,

अलीगढ़।

महोदय,

कृपया निम्नलिखित पुस्तकें वी० पी० द्वारा उचित कमीशन काट कर शीघ्र भेज कर कृतार्थ कीजिये। मेरा पता पुस्तक सूची के नीचे अङ्कित है।

(१) हिन्दी साहित्य-विमर्ष (विशेष हिन्दी) द्वितीय भाग, एक प्रति, पं० एन० आर० सूतल कृत।

(२) चक्रवर्ती अङ्कगणित एक प्रति, यादवचन्द्र चक्रवर्ती कृत।

(३) हिन्दी-साहित्य का इतिहास, एक प्रति, पं० रामचन्द्र शुक्ल कृत।

(४) प्रेम-पचीसी, एक प्रति, बा० प्रेमचन्द्र कृत।

भवदीय,

मनोहरलाल,

छत्ता बाज़ार,

मथुरा।

२—श्रीयुत सम्पादक जी !
दैनिक सैनिक,
सैनिक प्रेस,
आगरा।

महाशय,

स्थानीय ग्राम-पञ्चायत ने १५ मई सन् १९५० को दस गुना लगान सरकार को देने के सम्बन्ध में एक विराट सभा किसानों की बड़े समारोह के साथ की गई। उसमें किसानों को दस गुना लगान देकर भूमिधर बनने के लाभ समझाए गए। साथ ही सरकार की इस लाभप्रद योजना की प्रशंसा की गई······आदि। सभा की समस्त कार्यवाही आपकी सेवा में प्रेषित की जा रही है। आशा है इसे आप अपने दैनिक सैनिक में प्रकाशित करने की पहली कृपा करेंगे और इस प्रकार सहायता प्रदान कर हम लोगों के उत्साह को बढ़ाते रहेंगे।

भवदीय,
भगवानदास शर्मा
अदालती पंच
ग्राम-पंचायत कुन्डौल,
तहसील आगरा,
आगरा।

प्रार्थना-पत्र

श्रीयुत प्रधानाध्यापक महोदय,
सेन्टजोन्स हाई स्कूल,
आगरा।

प्रिय महोदय,

मेरे एक निकट सम्बन्धी के यहाँ ता० ८ मार्च १९५० का विवाह है जिस में मेरा भाई सुरेन्द्र कुमार, जो आप के स्कूल में नवीं कक्षा वर्ग अ में पढ़ता है, सम्मिलित होगा। अतः आप उसे ७ मार्च से ११ मार्च तक की छुट्टी देने की कृपा कीजिये।

४५११, कूँचा साधूराम
आगरा
६ मार्च सन् १९५० ई०

प्रार्थी,
राजेन्द्रप्रसाद शर्मा

राजकीय-पत्र

प्रेषक;

डारेक्टर,
शिक्षा-विभाग राजस्थान,
बीकानेर।
दिनाङ्क १२ मई सन् ५० ई०

पत्राङ्क ११२ डी० ई

श्रीयुत,
मैनेजर तथा प्रकाशक
पी० सी० द्वादश श्रेणी एन्ड कम्पनी लिमिटेड,
अलीगढ़।

महाशय,

आपकी सेवा में यह सूचना देते हुये हर्ष होता है कि आपकी पुस्तक 'बुनियादी प्राइमर' को शिक्षा-विभाग ने बेसिक स्कूलों

कक्षा प्रथम के लिये जौलाई सन् १६५० ई० से स्वीक
किया है।

प्रकाशित पुस्तक विद्यार्थियों को १५ जून १६५० से पह
उपलब्ध होनी चाहिये।

भवदीय,
डरिक्टर
शिक्षा-विभाग राजस्था
बीकानेर।

अभिनन्दन-पत्र

सेवा में—

श्रद्धास्पद माननीय सर सीताराम जी महोदय सभापति
संयुक्त प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा।

महानुभाव,

आज का दिन हमारी संस्था के जीवन का एक परमोज्ज्व
दिवस है जब कि हमें आपके स्वागत का सौभाग्य प्राप्त हुआ
है। अपने में आपको देख कर आज हमारे आनन्द का ठिका
नहीं है।

आपके विस्तृत-ज्ञान, विवेक-बुद्धि, विशाल-अनुभव औ
देश-प्रेम ने देशवासियों के हृदय को अपनी ओर खींच लिय
है। सज्जनता, सरल सहृदयता, सर्वप्रियता और आस्तिकत
के आप अनुकरणीय आदर्श हैं। इतना ही नहीं, आप में ए
उच्चकोटि के शासक के भी गुण वर्तमान हैं। संयुक्त प्रान्ती
व्यवस्थापिका सभा के सभापति के रूप में एक लम्बी अवधि
से आप अपनी राजनीतिक योग्यता और अर्थ कुशलता क
परिचय दे रहे हैं। विभिन्न नीतियों, विचारों और स्वभावों
बुद्धिमान् सदस्यों को अनुशासन के सूत्र में बाँध रखना तथ

प्रजा-सरकार का सम्मान रूप से विश्वास-पात्र होना ... जसे सुयोग्य, न्याय-प्रिय, निष्पक्ष और निर्भीक महा... काम है। इन्हीं उच्चगुणों के कारण हमें आपके ऊपर ...

विनीतभाव से आपका स्वागत करते हुए हम आ... फ-लता और उन्नति की हृदय से शुभकामना करते हैं।

आपके विनीत ...

अग्रवाल विद्य...

१५-५-३६] अध्यापक और ...

श्रीहरिः

(क) निमन्त्रण-पत्र

विराट कवि-सम्मेलन

श्रीमान्..जी

सेवा में सादर निवेदन है कि इस वर्ष अग्रवाल इण्टर-मीजियट कालेज में एक विराट कवि-सम्मेलन की ... १० दिसम्बर सन् १६५० सन्ध्या के चार बजे ... बा० बालमुकुन्द वैश्य एम० एस० सी० ने सभापति ... स्वीकार कर लिया है। प्रान्त के अनेक सुप्रसिद्ध क... सम्मिलित होने का वचन दिया है। कवि-सम्मेलन की ... आप ही ऐसे महानुभावों की कृपा पर अवलम्बित है।

आशा है कि आप अपने इष्ट मित्र कवियों ... इस अवसर पर पधार कर तथा अपनी सुमधुर रचना... कविता-प्रेमियों को परितृप्त तथा हमें कृतार्थ करेंगे।

विषय—

(१) नयन।

(२) पावसऋतु ।

(३) श्रद्धा कांग्रेस से क्यों हटती जाती है ? (समस्या)

(४) किहि कारण भारत गारत भा ? (समस्या)

भवदीय,
श्यामलाल शर्मा
मन्त्री
कवि-सम्मेलन
अग्रवाल इण्टरमीडियेट कालेज
आगरा ।

नोट—कवियों को अपनी स्वतन्त्र रचनाएँ सुनाने का भी समय दिया जायगा।

(ख) निमन्त्रण-पत्र

श्री गणेशायनमः

गौरी गणपति सुमिर के, साधत हौं यह काज ।
अपनो कर्तब कुछ नहीं, ईश सँभारैं लाज ॥

प्रिय महोदय,

सेवा में सविनय निवेदन है कि पारब्रह्म परमात्मा की असीम अनुकम्पा से हमारी सौभाग्या-कांक्षिणी कन्या शीला-कुमारी का पाणिग्रहण संस्कार मेरठ निवासी श्री पं० बलवीरसिंह जी के जेष्ठ पुत्र चिरंजीव धर्मवीरसिंह जी के साथ होना निश्चित हुआ है।

अतः आपसे सादर अनुरोध है कि मिती जेष्ठ वदी सप्तमी बुधवार तदनुसार तारीख २४ मई को सायंकाल ५ बजे बारात

का स्वागत कर तथा २५ मई बृहस्पतिवार को सायंकाल सात बजे सकुटुम्ब प्रतिभोज में सम्मिलित होकर हमें कृतार्थ कीजिए।

ग्राम भटौना,
बुलन्दशहर
ता० २०-५-५०

दर्शनाभिलाषी
होशियारसिंह,
बुद्धीनाथ,

परिचय-पत्र

बुलन्दशहर,
१० फ़र्वरी, १९५०

प्रियवर रामनिवास,

मुझे अपने सुहृद् मित्र भगवत स्वरूप जी का परिचय आपसे कराते हुए बड़ा हर्ष होता है। ये मेरे अनन्य मित्रों में हैं। काव्य-रसिक और विनोद प्रकृति के हैं। अलीगढ़ की प्रदर्शिनी देखने आरहे हैं, ३-४ दिन वहाँ ठहरेंगे। आजकल आप के यहाँ भीड़ तो होगी; क्योंकि आप का आतिथ्य सब जानते हैं, तोभी मुझे विश्वास है, इन्हें अन्यत्र सुविधा न होगी। नगर के साहित्य प्रेमियों से भी यदि इनका कुछ परिचय करा सकें तो विशेष अनुग्रह होगा। आशा है आप सब सानन्द होंगे।

अपका अपना,
रमेश।

अभ्यास

१—अपने पिता को एक पत्र लिखो ; जिसमें तुम्हारी परीक्षा का विस्तृत विवरण हो।

२—अपने मित्र को पत्र लिखो, जिसमें तुम्हारी यात्रा का वर्णन हो।

३—एक बुकसेलर की ओर से एक ग्राहक को पत्र लिखो कि जो पुस्तकें तुमने मंगाई हैं वह दुकान में नहीं हैं। इङ्गलैण्ड से आने पर भेज दी जाँयगी।

४—एक पड़ोसी को अपनी बहिन के विवाह में सम्मिलित होने के लिये निमंत्रण-पत्र लिखो।

५—हेड मास्टर को फ़ीस माफ़ होने के लिए प्रार्थना पत्र लिखो।

६—जिस घर में तुम रहते हो, उसके मालिक को पत्र लिखो कि वर्षा आरही है, मकान टूटा हुआ है, मरम्मत करादी जाय।

७—आपके नगर में पधारने पर प० जवाहरलाल नेहरू को अभिनन्दन पत्र अपने स्कूल के विद्यार्थियों तथा अध्यापकों की ओर से दीजिये।

८—सेक्रेटरी हाई स्कूल एन्ड इण्टरमीजियट, एजूकेशन बोर्ड यू० पी० इलाहाबाद को पत्र लिखिए—मानो तुम्हारा छोटा भाई दसवीं कक्षा में २ नम्बरों से फेल हो गया है उसकी दुबारा कापियाँ जंचवाने की प्रार्थना हो।

९—अपने नगर वासियों को सूचना पत्र लिखो—मानो आपके नगर में राष्ट्रपति बा० राजेन्द्रप्रसाद कल पधार रहे हैं उनका व्याख्यान सुनने के लिए वे अमुक स्थान पर ठीक समय पधारें।

१०—आप ने अपने नगर में कवि सम्मेलन कराना है। उसके उद्देश्यों को उल्लेख करते हुए किसी कवि को निमन्त्रित करो।

चतुर्थ खण्ड

सप्तम अध्याय

अपठित

(क) हिन्दी अनुवाद

उदा० १—मनुष्य प्रगतिशील है। स्वस्थ मनुष्य और स्वतन्त्र जातियाँ उन्नति और विकास की पराकाष्ठा तक पहुँचने की कोशिश करती हैं। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती हैं। हर एक धर्मका मान ने वाला अपने धर्म को सार्वभौम धर्म कहता है। इसका कारण यह है कि सब धर्म वाले परमात्मा की सर्वव्यापक, अप्रतिहत शक्ति में विश्वास रखते हैं। इस विश्वास के कारण वे समझते हैं कि एक शासक, एक नियन्ता के राष्ट्र में एक ही तरह का कानून चलना चाहिए। राष्ट्र में रहने वाले व्यक्ति एक ही धर्म के मानने वाले होने चाहिए।

(क) रेखाङ्कित शब्दों और वाक्यों का अर्थ समझाइये।

(ख) ऊपर दिये हुए अवतरण का आशय लिखिये।

(ग) "मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती हैं" यह बात दृष्टान्त देकर समझाइये।

उत्तर—(क) प्रगतिशील = संसार की प्रगति के साथ-साथ उन्नति की ओर अग्रसर होने वाला, उन्नतिशील।

स्वस्थ······कोशिश करती हैं=शारीरिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ मनुष्य तथा स्वतन्त्र जातियाँ इस बात की ओर प्रयत्नशील रहती हैं कि वे अपनी समस्त शक्तियों को विकास तथा उन्नति को चरम सीमा तक पहुँचा सकें।

सार्वभौम धर्म—विश्वव्यापी धर्म।

सर्वव्यापक······शक्ति=वह शक्ति जो सारे विश्व में व्याप्त है और जिसको कोई रोक नहीं सकता।

(ख) मनुष्य स्वभाव से ही उन्नतिशील प्राणी है। संसार की सभी जातियाँ अपने को सभ्यता तथा उन्नति की ऊँची से ऊँची सीमा तक ले जाने की कोशिश में लगी हैं। मनुष्य की यह उन्नति-सम्बन्धी स्वाभाविक प्रवृत्ति हमें जीवन के अनेक क्षेत्रों में दिखाई देती है। धर्म के ही क्षेत्र में, सब धर्मों के अनुयायी एक ही ईश्वर की सत्ता पर विश्वास करते हैं, और उसी को समस्त विश्व का एक मात्र शासक मानते हैं। इस प्रकार वे विश्व नियन्ता की सृष्टि में एक ही प्रकार के नियमों द्वारा शासित होने तथा एक ही धर्म के अनुयायी होने की ओर संकेत करते हैं।

(ग) मनुष्य स्वाभाविक रूप से प्रगतिशील है। वह अपनी प्रगति-सम्बन्धी प्रवृत्तियों को अनेक रूपों में व्यक्त करता है। वह संसार में शान्ति की स्थापना चाहता है और समस्त विश्व में पारस्परिक प्रेम-सम्बन्धी भावनाओं के प्रसार के लिये प्रयत्नशील है। धर्म के क्षेत्र में संसार के समस्त मनुष्य एक ही ईश्वर में विश्वास करते हैं, और इस प्रकार उसकी सृष्टि में पारस्परिक प्रेम-सम्बन्ध

स्थापित करना चाहते हैं। राजनीति में भी संसार की सारी जातियाँ एक राष्ट्र-संघ स्थापित करने की ओर प्रयत्नशील हैं जो संसार में शान्ति स्थापित कर सके और देश-काल की परिस्थितियों के अनुकूल समस्त संसार में समान नियम स्थापित कर सके।

उदा० २—नवाभ्यासी कवियों को सद्यः कविता के चक्कर में पड़कर पथ भ्रष्ट न करना चाहिये। पहले कविता सम्बन्धी ग्रन्थों का अभ्यास करें; प्राचीन कवियों की कृतियों का निरन्तर अनुशीलन करें; किसी सत्कवि से परामर्श लेते रहें; अपनी रचना को बार-बार समालोचक दृष्टि से देखते रहें; उसमें आवश्यकतानुसार काट-छाँट और परिवर्तन करते रहें। इस प्रकार सतत् अभ्यास से जब कविता में चमत्कार-चारुता और बंध-सौष्ठव आजाय तब इस अखाड़े में उतरें। कवि-सम्मेलन कविता की एक प्रदर्शिनी है।

१—रेखांकित वाक्यांशों के भावस्पष्ट करिए।
२—ऊपर के गद्यांश का सार अपनी भाषा में लिखिए।
३—कवि बनने के लिए किन-किन बातों की आवश्यकता है?
४—ऊपर के गद्यांश का उपयुक्त शीर्षक क्या हो सकता है?

उत्तर—(१) नवाभ्यासी·········न करना चाहिए=जो लोग कवि बनना चाहते हैं, वे शीघ्र ही कविता करना आरम्भ न कर दें। निरंतर·········करें=सदैव ध्यान पूर्वक पढ़ें और सोचें। चमत्कार·········सौष्ठव=कविता में सौन्दर्य और पद-मैत्री आजाय। कवि सम्मेलन······प्रदर्शिनी है=कवि सम्मेलन में लोग अच्छी कविताएँ सुनते हैं, भद्दी कविताओं की ओर ध्यान भी नहीं देते।

(२) सार—जो लोग कवि बनना चाहते हैं, उन्हें प्राचीन काव्यों को भली भाँति पढ़ना चाहिए; वर्तमान कवियों से परामर्श लेना चाहिए।

(३) कवि बनने के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं :—

(अ) प्रारंभ से ही कविता न प्रारंभ की जाय।

(ब) काव्य-ग्रन्थों का अभ्यास आवश्यक है।

(स) प्राचीन-काव्य का अध्ययन भली भांति हो।

(द) वर्तमान अच्छे कवि से संशोधन कराया जाय।

(फ) अपने काव्य की आलोचना आवश्यक है।

(य) बार-बार काट-छाँट होनी चाहिए।

(र) काव्य में सौन्दर्य और पद-मैत्री आवश्यक है, जिससे कवि सम्मेलन में लोग सुनें और उसका आनन्द लें।

(४) उपर्युक्त गद्यांश का उपयुक्त शीर्षक 'नव-कवि' हो सकता है।

नोट:—नीचे हम कुछ गद्यांश देते हैं, इनके सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर देते हुए निम्नलिखित विवरण भी दीजिए :—

अभ्यास १

संसार में भिन्न-भिन्न जातियों का सदैव उत्थान-पतन होता रहता है। परन्तु कुछ समय के बाद एक दूसरी ही जाति पहली का स्थान ले लेती है। प्राचीन काल में जो जातियाँ उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच गयी थीं, उनका गौरव अब अतीत काल की कथा मात्र है। काल के अनन्त स्रोत में उनकी जीवनधारा लुप्त हो गयी है; परन्तु काल के वक्षःस्थल पर वे अपना अक्षय-चिह्न छोड़ गयी हैं। संसार से उनका अस्तित्व उठ गया; परन्तु

संसार की गति को उन्होंने जिस ओर परिवर्तित कर दिया, उसी ओर उसको अग्रसर होना पड़ा। जिन मार्गों पर चलकर मानव-जाति वर्तमान अवस्था को प्राप्त हुई, वे मार्ग उन्ही के द्वारा निर्दिष्ट किये गये थे। संसार के ज्ञानागार में उनकी भी सम्पति रक्खी हुई है। आधुनिक सभ्यता का भवन उन्हीं की निर्मित भित्ति पर स्थापित है।

(अ) रेखांकित अंशों का अर्थ सरल भाषा में लिखिये।

(इ) आधुनिक सभ्यता के निर्माण में प्राचीन विनष्ट जातियों का क्या हाथ है? कुछ ऐसी जातियों के नाम बताइये।

(उ) उपरि लिखित वाक्य-समूह का भाव अपने शब्दों में, संक्षेप में प्रकट कीजिये।

सहायक पाठ

उत्थान—पतन=उत्कर्षापकर्ष; उन्नति और अवनति। गौरव=ऐश्वर्य। कथामात्र है=कहानी के रूप में रह गया है। जीवनधारा=जीवन की गति; अस्तित्व। अक्षय-चिह्न=अमिट निशान। निर्दिष्ट=निश्चियत; बतलाये गये। ज्ञानागार=ज्ञान-भंडार। आधुनिक=वर्तमान। स्थापित है=अवलम्बित है।

(२)

रामचरितमानस में रावण का जितना चरित हमारी दृष्टि में पड़ता है, उसमें आदि से अन्त तक उसकी एक विशेषता हमें दृष्टिगत होती है। वह है घोर भौतिकता। कदाचित् आत्मा की उपेक्षा करते हुये भौतिक शक्ति का अर्जन ही गोसाईं जी राक्षसत्व का अभिप्राय समझते थे। उसका अपार बल, विश्व-

विश्रुत वैभव, उसकी धर्महीन शासन प्रणाली जिसमें ऋषि मुनियों से कर वसूल किया जाता था, उसके राज्य भर में धार्मिक अभिरुचि का अभाव, ये सब उसके भौतिकवाद के द्योतक हैं। प्रश्न उठ सकता है कि वह बड़ा तपस्वी भी तो था? किन्तु उसके तप से उसकी भौतिकता का ही परिचय मिलता है। वह तप उसने अपनी आध्यात्मिक उन्नति या मुक्ति के उद्देश्य से नहीं किया, वरन् इस कामना से कि भौतिक सुख को भोगने के लिये वह इस शरीर से अमर हो जाय।

(क) गोस्वामी-तुलसीदास का अभिप्राय राक्षसत्व से क्या था?

(ख) तपस्वी होते हुये भी रावण क्यों राक्षस कहा गया है?

(ग) रेखाङ्कित अंशों का अर्थ सरल भाषा में लिखिये।

सहायक पाठ

भौतिकता=सांसारिक सुख को प्राप्त करने की कामना। आत्मा की उपेक्षा करते हुये=आत्मिक उन्नति पर ध्यान न देकर। विश्व-विश्रुत वैभव=जगत्-प्रसिद्ध ऐश्वर्य। शासन-प्रणाली=शासन करने की रीति। आध्यात्मिक उन्नति=आत्मिक उत्कर्ष।

(३)

प्रेमचन्द्र का यथा समय भारतीय साहित्य में वही सम्मान होगा जो डिकेन्स और टालसटाय को युरोपीय साहित्य में प्राप्त है। भारत का हृदय कलकत्ते की गलियों में नहीं है, न वह शिक्षित बंगालियों की अट्टालिकाओं में है। उनका हृदय दिहात में है, किसानों के टूटे-फूटे झोंपड़ों में है। हरे-भरे खेतों

को देख कर उसे शान्ति मिलती है; अनावृष्टि से वह सूख जाता है। उस हृदय का मार्मिक चित्र जिसने खींचा है, वह देश भर का धन्यवाद पात्र है। अभी भारतीय किसानों में शिक्षा का अभाव है। अभी तक उन्हें मालूम नहीं है कि उन्हीं के समान किस सरल-प्रकृति तथा अस्वस्थ व्यक्ति ने शारीरिक और मानसिक वेदनाएँ झेलते हुए उनके दुःखों और आशाओं की कथा कही है। जब वे शिक्षित हो जाँयगे, जब उनकी आँखें खुलेंगी, और अपने पूर्वजों का जीता-जागता चित्र जब वे प्रेमचन्द के उपन्यासों में देखेंगे, तब इनके विधाता की पूजा होगी। हाँ, अभी कुछ समय तक नहीं।

(क) रेखाङ्कित अंशों का अर्थ सरल हिन्दी में लिखिये।

(ख) इस गद्य-खण्ड में प्रेमचन्द का क्या महत्व दिखाया गया है?

(ग) प्रेमचन्द का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

सहायक पाठ

अट्टालिकाओं में = विशाल भवनों में। अनावृष्टि = वर्षा न होने से। शारीरिक = शरीर सम्बन्धी। मानसिक वेदनाएँ = मन-सम्बन्धी पीड़ाएँ। अपने पूर्वजों ...... चित्र = भारतीय कृषकों के जीवन का कितना युक्ति-युक्त और स्वाभाविक रूप।

(४)

यह प्रायः देखा जाता है कि बहुत से युवक जो जीवन-संग्राम में पुस्तकों पर बोझ लादे बिना प्रवेश करते हैं; अपनी व्यावहारिक कार्य-शीलता के कारण अपने उद्देश्यों में सफलता

प्राप्त करते चले जाते हैं। उन्हें कोई शिक्षित मनुष्य अपनी भाषा में अपढ़ भले ही कह ले, परन्तु ऐसे ही मनुष्य अपने साहस और अपनी स्वाभाविक समय तथा कार्य-संलग्नता के कारण डिग्री-प्राप्त किन्तु अकर्मण्य युवकों में बाज़ी मार ले जाते हैं। ऐसे मनुष्य फूँक-फूँक कर पैर रखते हैं, परन्तु उनमें आत्म-विश्वास रहता है, अपने उद्देश्यों में वे विचलित नहीं होते और सफलता उन्हें मदान्ध नहीं करती। इनके विपरीत ऐसे मनुष्य चाहे वे बहुत-कुछ पढ़े लिखे और कुशाग्र-बुद्धि ही क्यों न हों, जो अपनी अक्ल के नशे ही में चूर रहते हैं, जो अपना उद्देश्य स्थिर नहीं कर सकते, प्रायः जीवन संग्राम में विफल रहते हैं; और इस विफलता का दोष वे ईश्वर या समाज के माथे मढ़ते हैं।

(क) रेखांकित अंशों का अर्थ सरल हिन्दी भाषा में लिखिये।

(ख) किन दो प्रकार के मनुष्यों की तुलना इस गद्य-खंड में की गयी है? एक की सफलता और दूसरे की विफलता के कारण बताइये।

(ग) दृष्टान्त देकर गद्य-खंड में प्रकट किये गये मत को पुष्ट कीजिये।

सहायक पाठ

१—जीवन-संग्राम में=कर्म-क्षेत्र में। पुस्तकों का बोझ लादे बिना=बिना विद्या प्राप्त किये हुए। प्रवेश करते हैं=पदार्पण करते हैं। फूँक-फूँक........रखते हैं=बहुत सावधानी से किसी कार्य को करते हैं। विचलित नहीं होते=अटल रहते हैं। विफलता=असफलता।

(५)

अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान बहुधा हमारे संकुचित

व्यवहारों का सुधारक होना है। जब हम राह भूल कर भटकने लगते हैं, तब यही ज्ञान हमारा विश्वसनीय पथ प्रदर्शक बन जाता है। पत्र-सम्पादक अपनी शान्ति-कुटी में बैठा हुआ धृष्टता और स्वतन्त्रता के साथ अपनी प्रबल लेखनी से मंत्रि-मण्डल पर आक्रमण करता है। परन्तु ऐसे अवसर भी आते हैं, जब वह स्वयम् मन्त्रि-मण्डल में सम्मिलित होता है। मण्डल के भवन में पग धरते ही उसकी लेखनी कितनी मर्मज्ञ, कितनी विचार शील, कितनी न्याय परायण हो जाती है, इसका कारण उत्तरदायित्व का ज्ञान है। नवयुवक युवावस्था में कितना उद्दण्ड रहता है। माता-पिता उसकी ओर से कितने चिन्तित रहते हैं। वे उसे कुल-कलङ्क समझते हैं। परन्तु थोड़े ही समय में परिवार का बोझ सिर पर पड़ते ही वही अव्यवस्थित चित्त उन्मत्त युवक कितना धैर्यशील, कैसा शान्त चित्त हो जाता है यह भी उत्तरदायित्व के ज्ञान का फल है।

(क) रेखांकित अंशों का अर्थ सरल हिन्दी में लिखिये।

(ख) ऊपर दिये हुए अवतरण में किस बात पर विशेष बल दिया गया है और वह हमारे दैनिक जीवन में कितनी उपयोगी हैं ?

(ग) उत्तरदायित्व का सरलार्थ क्या है ? उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न हो जाने पर मनुष्य के स्वभाव में अन्तर क्यों हो जाता है ?

सहायक पाठ

उत्तरदायित्व = जुम्मेदारी। सुधारक होता है = प्राचीन त्रुटियों में सुधार कर लेते हैं। विश्वसनीय पथ प्रदर्शक-विश्वास के

योग्य मार्ग दिखाने वाला। धृष्टता और स्वतन्त्रता=ढीठता तथा स्वच्छन्दता के साथ। अव्यवस्थित चित्त=अत्यन्त चंचल स्वभाव का।

६)

सन्तोष की बात है कि हिन्दी भारत के मद्रास और आसाम जैसे सुदूर प्रान्तों में भी अपना घर करती जा रही है। अब भारत का कोई ऐसा नगर नहीं रह गया है जहाँ हिन्दी का बोलबाला करने वाले नागरिक न मिल सकें। यों हिन्दी का राष्ट्रीय अधिकार बढ़ रहा है। परन्तु खेद है कि हिन्दी भाषा का जिस प्रकार उत्तरोत्तर प्रचार हो रहा है, उस प्रकार हिन्दी-साहित्य की निधि नहीं बढ़ रही है। निकट भविष्य में हमारा काम उस पूँजी से ही न चल सकेगा जो सूरदास और तुलसीदास हमारे लिये छोड़ गये हैं। हिन्दी साहित्य का काव्यांग ही यथेष्ट पुष्ट है; परन्तु अन्य अङ्ग राष्ट्रीय सेवा का गुरुतर भार सम्हालने योग्य नहीं है। भावी युग में अंग्रेज़ी का प्रचार कम होने पर अहिन्दी भाषा भारतीय हिन्दी इसलिये ही न सीखेंगे कि काशी और दिल्ली के सामाजिक मनोविनोद में सम्मिलित हो सकें, वे हिन्दी माध्यम से अपने ज्ञान-भण्डार की वृद्धि करना भी चाहेंगे। हिन्दी साहित्यिकों के सामने इस समय सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यही है कि किस प्रकार शीघ्राति-शीघ्र वे अपने साहित्य के निर्बल अंगों की पुष्टि करें, एकांगी को सर्वाङ्ग पूर्ण कर सकें।

(क) उपर्युक्त अवतरण के रेखांकित वाक्यांशों का अर्थ सरल हिन्दी में लिखिये।

(ख) सूरदास और तुलसीदास जी साहित्यिक पूँजी हमारे लिए छोड़ गये : उसका संक्षिप्त विवरण दीजिये।

(ग) किस प्रकार हिन्दी राष्ट्रीय पद पाने योग्य हो सकती है?

(घ) ऊपर के गद्यांश का उपयुक्त शीर्षक क्या हो सकता है?

(ङ) उपरिलिखित वाक्यांश का भावार्थ लिखिये।

सहायक पाठ

घर करती जा रही है = स्थान प्राप्त करना। सामाजिक = समाज-सम्बन्धी। मनोविनोद = मनबहलाव। एकांगी = एक अंग से ही। सर्वाङ्ग पूर्ण है = सब प्रकार पूर्ण है।

(७)

वर्तमान युग में भारतीय विद्वानों का ध्यान राष्ट्र-लिपि की आवश्यकता की ओर आकृष्ट हो चुका है। बहुमत देव-नागरी लिपि के पक्ष में ही मालूम होता है, तथापि कभी-कभी एकाध ऐसे बुद्धिमान देखने में आते हैं जो सरासर उल्टी गंगा बहाने का प्रयत्न करते हैं। तुर्की भाषा का उदाहरण और अंत-राष्ट्रीयता की दुहाई देकर वे रोमन लिपि को भारत की राष्ट्र-लिपि प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं। यदि तुर्की ने रोमन लिपि को अपनाया, तो उसके पास चारा ही क्या था? वहाँ तुर्कों की कोई अपनी लिपि तो थी ही नहीं। यदि प्रचलित अरबी लिपि के विरुद्ध उन्होंने रोमन लिपि को अपनाया, तो उसका कारण था अरबी लिपि की अवैज्ञानिकता और रोमन लिपि के अखण्ड योरपीय साम्राज्य से उनके देश की सन्निकटता। योरप से हजारों मील दूर भारतवर्ष को क्या आवश्यकता कि

वह संदिग्ध, अपूर्ण और विलष्ट रोमन लिपि को राष्ट्रीय पद दे जब अपनी देवनागरी लिपि स्वयं स्वरों की बहुलता तथा स्वाभाविक वैज्ञानिकता में आज भी अपना सानी नहीं रखती ?

(क) उपर्युक्त अवतरण के रेखाङ्कित वाक्यांशों का अर्थ सरल हिन्दी में लिखिये।

(ख) आधुनिक तुर्की ने रोमन लिपि को क्यों अपनाया है ?

(ग) देवनागरी और रोमन लिपियों के पक्ष-विपक्ष में आपके क्या विचार हैं ?

सहायक पाठ

उल्टी गङ्गा बहना = प्रचलित विचार-धारा के प्रतिकूल कार्य करना। उसके पास चारा ही क्या था = अन्य कोई मार्ग न था। अखण्ड = सम्पूर्ण। सन्निकटता = अत्यन्त निकट है। बहुलता = बहुत अधिक है। अपना सानी नहीं रखती = अद्वितीय सिद्ध हो चुकी है।

(८)

भारत के सौभाग्य-सूर्य की प्रथम रश्मियाँ हमें अब दिखाई देने लगी हैं। बहुमत से हिन्दी भारत की राष्ट्र-भाषा मानी जा चुकी है और यह निश्चित है कि भावी भारत में शिक्षा और संस्कृति का अधिकांश प्रसार हिन्दी द्वारा ही होगा। परिवर्तित परिस्थिति में भारतवासियों का अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण पुष्ट करने के लिए एवम् विदेशों में भारतीय संस्कृत का प्रचार करने के लिये यह आवश्यक होगा कि हिन्दी के विद्वान् विभिन्न

देशों की संस्कृति और विचार-धारा पर हिन्दी में मौलिक ग्रन्थ लिखें और विदेशियों के सामने उन्हीं की भाषा में भारतीय संस्कृति का सच्चा चित्र रक्खें। यह अन्तराष्ट्रीय सांस्कृतिक विनमय तभी हो सकता है जब हिन्दी के विद्वान् उपर्युक्त सेवा के लिये निर्दिष्ट विदेशी भाषाओं और उनके साहित्य का अध्ययन[2] करें। इस महत्वपूर्ण सेवा-कार्य की तैयारी अभी से आवश्यक है। संयुक्तप्रान्त प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति का केन्द्र रहा है। इस प्रान्त की पावन-भूमि में ही राम, कृष्ण, बुद्ध और तुलसीदास ने जन्म लिया है। यहाँ की मातृ-भाषा को ही राष्ट्र-भाषा का पद प्राप्त है। अतएव[3] संयुक्तप्रान्त के हिन्दी प्रेमी युवक-युवतियों पर इस भावी सेवा-कार्य का गुरुतर भार विशेष मात्रा में है।

(क) उपर्युक्त अवतरण के रेखाङ्कित वाक्यों का अर्थ सरल हिन्दी में लिखिये।

(ख) विदेशी भाषाओं का अध्ययन हमारे लिए क्यों आवश्यक है?

(ग) संयुक्तप्रान्त की जिन विभूतियों के नाम उपर्युक्त अवतरणों में आये हैं उनमें से किन्हीं दो का भारतीय संस्कृति में स्थान निश्चित कीजिये।

(घ) जिन शब्दों के ऊपर संख्या है उनकी शब्द-निरुक्ति कीजिए।

सहायक पाठ

प्रथम रश्मियाँ = पहली किरणें। परिवर्तित परिस्थिति में = बदली हुई हालतों में। अन्तर्राष्ट्रीय = संसार के अन्य देश।

अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक विनिमय=एक दूसरे देश के सुधरे हुए विचारों की परस्पर जानकारी। विनिमय=एक दूसरे से बदलना, Exchange। गुरुतर भार=बड़े बोझ को।

(६)

अमेरिका के निवासी अपनी मौलिकता और नूतन अविष्कारप्रियता के लिए समस्त संसार में प्रसिद्ध हैं, परन्तु अनुकरण करने में भी उनसे बढ़कर कोई नहीं मिल सकेगा। फल यह होता है कि नये व्यवसाय या आविष्कार की छीछालेदर उसका दुरुपयोग[1] और पतन जितना वहाँ होता है उतना अन्यत्र नहीं होता वहाँ संसार का छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा व्यापार नवीनता और मौलिकता के आकर्षक वस्त्रों में ढक दिया जाता है। ज्यों ही उस व्यापार में एक दो नहीं, सहस्रों मनुष्य कूद पड़ते हैं, वहाँ का व्यापारी जन-समुदाय समुद्र के ज्वार-भाटा की भांति बड़े वेग से एक ही ओर दौड़ पड़ता है और अन्त में सबके सब किसी चट्टान से टकरा कर दिवालिये बन जाते हैं। आज भारतवर्ष के कई नगरों में वकीलों के व्यवसाय और नौकरी की भी प्रायः यही दशा है। किसी मनुष्य की बुद्धि के द्वारा ढूँढ़े गये किसी लाभकारी उद्योग[2] में इस प्रकार की भीड़ करने से उसमें होने वाली आय बहुत अधिक घट जाती है और उसकी अधोगति[3] हो जाती है। यह आवश्यक नहीं है कि विश्व विजयी होने के लिए कोई नैपोलियन किसी सिकन्दर की पुरानी तलवार ढूँढ़ता फिरे।

(क) इस अवतरण का सारांश लिखिये।

(ख) ऊपर के अवतरण में जिन अंशों के नीचे रेखा खिंची है उनका आशय स्पष्ट कीजिये।

(ग) संख्या वाले शब्दों का सन्धि-विच्छेद कीजिये।

सहायक पाठ

नवीनता = नयापन, नूतनता। मौलिकता = स्वयं निर्मित्त की हुई, नवीनता। विश्व विजयी = संसार के ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए। पुरानी तलवार को ढूढ़ँता फिरे = पुराने सफल व्यापारी के ही पगों का अनुसरण करता हुआ उसी के ढंग पर चले।

(१०)

प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के हृदय का आदर्श रूप है। जो जाति जिस समय जिस भाव से परिपूर्ण या परिप्लुत रहती है वे सब उसके भाव उस समय के साहित्य की समालोचना से भली-भाँति विदित हो सकते हैं।

मनुष्य का मन जब शोक-संकुल, क्रोध से उद्दीप्त अथवा अन्य किसी प्रकार की चिंता से दो चिता रहता है तथा उस की मुखच्छवि तमसाच्छन्न, उदासीन और मलीन रहता है। उस समय उसके कण्ठ से जो ध्वनि निकलती है वह भी या तो फुटही ढोल के समान सुर ताल और लय के सहित या करुण-पूर्ण गद्‌गद् तथा विकृत-स्वर संयुक्त होती है। वही चित्त जब आनन्द लहरी से उद्वोलित हो नाच उठता है और आँसों उछलने लगता है तब मुख विकसित कमल सा प्रफुल्लित मानों हँसता सा, अङ्ग-अङ्ग स्फूर्ति से फिरहरी नाईं फरका करते हैं। कण्ठ-ध्वनि भी नव-बसन्त-मद-मस्त कोकिला के कण्ठरव से भी अधिक मधुर और सुहावनी मन को भाती है। मनुष्य के सम्बन्ध में इस अनुल्लङ्घनीय नैसर्गिक नियम का अनुसरण प्रत्येक देश का साहित्य भी करता है।

(क) उक्त अवतरण में "साहित्य समाज का आदर्श (दर्पण) है"—इसको सिद्ध करने के लिए किन-किन युक्तियों का प्रयोग किया गया है ? विस्तार पूर्वक स्पष्ट कीजिये।

(ख) इस अवतरण का सारांश लिखिये।

(ग) करुणपूर्ण, आनन्द लहरी, कण्ठरव, नैसार्गिकनियम, इनके समास बतलाइए।

(घ) तमसाच्छन्न, उद्वेलित, प्रत्येक, अनुल्लङ्घनीय—इनका सन्धिविच्छेद कीजिये !

सहायक पाठ

परिपूर्ण या परिप्लुत = भली प्रकार सम्पन्न या भरी हुई। शोक-संकुल = अत्यन्त उदास या चिन्तित। क्रोध से उद्दीप्त = अत्यन्त क्रोधी होना। मुखाच्छवि = मुख की शोभा। तमसाच्छन्न = अत्यन्त मलिन। उदासीन = चिन्तिक। प्रफुल्लित = खिला हुआ। नैसर्गिक = प्राकृतिक। अनुसरण = नक़ल।

(११)

आर्य सभ्यता के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य है उसके द्वारा इहलोक में सर्वाङ्गीण अभ्युदय और परलोक में परम निःश्रेयस। ऋषियों की दृष्टि में विद्या वही है जो हमें अज्ञान के बन्धन से विमुक्त करदे—सा विद्या या विमुक्त ये। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में 'अध्यात्म विद्या विद्यानाम्' वह इसी सिद्धान्त का समर्थन किया है। इसी उद्देश्य से आर्य जाति के पवित्र हृदय और समदर्शी त्रिकालज्ञ ऋषियों ने चार आश्रमों की सुन्दर

व्यवस्था की थी। ब्रह्मचारी विद्यार्थी संयम की व्यवहारिक शिक्षा के साथ ही साथ लौकिक और पारलौकिक कल्याणकारी विद्याओं को पढ़ कर सब प्रकार से शरीर, मन, और वाणी से स्वस्थ और संयमी होकर गुरुकुलाश्रम से निकलता था और तब गृहस्थ में प्रवेश कर क्रमशः जीवन को और भी संयमय और त्यागमय बनाता हुआ अन्त में सर्वत्याग करके परमात्मा के स्वरूप में निमग्न हो जाता था। यही आर्य संस्कृति का स्वरूप था।

(क) रेखाङ्कित वाक्यांशों का सरलार्थ लिखिये।
(ख) आर्यसभ्यता के अनुसार शिक्षा का क्या उद्देश्य है?
(ग) सभ्यता और संस्कृति का तात्पर्य समझा कर लिखिए।

सहायक पाठ

सर्वाङ्गीण=शारीरिक, मानसिक, साम्पत्तिक और नैतिक। परमनिःश्रेयस=मोक्ष की प्राप्ति। चार आश्रमों=ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। समदर्शी=सब को समान दृष्टि से देखने वाले। त्रिकालज्ञ=तीनों कालों के ज्ञाता, भूत, वर्तमान और भविष्य की बातें जानने वाले।

(१२)

कवि अपनी कल्पना के पंखों से, इसी विश्व के गीत लेकर अनन्त आकाश में उड़ता है और उन्हें मुक्त व्योम में बिखरा कर अपने भाराक्रान्त हृदय को हलका कर फिर अपने विश्वनीड़ में लौट आता है। इसी से कवि को विश्राम और स्वास्थ्य मिलता है और स्वस्थ होकर वह नूतन प्रभात में नूतन हृदय से नित्य

नूतन संसार का स्वागत करता है। यदि ऐसा न हो तो कवि भी अन्य सांसारिक प्राणियों की भाँति ही, विश्व के कोलाहल में अपने आप को खोदे तथा उसके द्वारा संसार को वे अमृत-गीत न मिलें, जिनके सरल शीतल स्रोत में बहकर मानव जगत अपने सन्तप्त प्राणों को कुछ क्षण जुड़ा लेता है।

(क) रेखाङ्कित पदों का अर्थ स्पष्ट कीजिये।

(ख) उपर्युक्त गद्यांश का भावार्थ अपनी भाषा में लिखिए।

(ग) भाराक्रान्त विश्वनीड़, अमृतगीत शब्दों के सविग्रह समास लिखिए।

(घ) स्वागत, सन्तप्त शब्दों की सन्धि-विच्छेद कीजिये।

(ङ) नूतन, द्वारा अनन्त, स्रोत, कोलाहल शब्दों की पद-व्याख्या कीजिये।

सहायक पाठ

मुक्तव्योम में = स्वच्छन्द आकाश में। नीड़ = घोंसला। स्रोत = सोता। सन्तप्त = जले हुए अत्यन्त दुःखी। जुड़ा लेते हैं = आराम कर लेते हैं।

(ख) इङ्गलिश से हिन्दी अनुवाद

हमारे पाठ्य विषयों में अंग्रेज़ी से हिन्दी अनुवाद करना भी आवश्यक है। बहुधा देखा जाता है कि छात्र-गण शाब्दिक अनुवाद करके रख देते हैं; यद्यपि अनुवादक का कार्य लेखक की अपेक्षा कठिन होता है। लेखक अपने विचारों के लिए स्वतन्त्र होता है, परन्तु अनुवादक को लेखक के भावों पर

दृष्टि रखनी पड़ती है। फिर भी प्रत्येक विद्यार्थी को चाहिए कि मूल गद्यांश को समझ कर अपने शब्दों में व्यंजित करे।

अनुवाद या भाषान्तर करते समय इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि शब्दों का चुनाव ठीक ढङ्ग से हो, पद-मैत्री अच्छी हो। प्रायः देखा जाता है कि बहुत से शब्द ऐसे होते हैं, जिनके ठीक-ठीक प्रतिशब्द दूसरी भाषा में नहीं मिलते, ऐसी दशा में मूलभाव लेकर अपने शब्दों में विचार प्रकट करना चाहिए। भाषा में धारा प्रवाह होनी चाहिए। वह मुहावरेदार हो जो सुनने वालों को प्रिय लगे।

१—शब्दानुवाद—जब किसी भाषा का दूसरी भाषा में शब्द प्रतिशब्द अनुवाद किया जाता है, तो उसे शब्दानुवाद कहते हैं, जैसे :—

उदा०—The faithfulness of the horse is well known. Boys and young students have all read about the horses of Alexander the Great and Rana Pratap of Chittore.

शाब्दिक—घोड़े की स्वामिभक्ति अच्छी तरह जानी जाती है, लड़कों और जवान विद्यार्थियों ने महान सिकन्दर और चित्तौर के राणा प्रताप के घोड़ों के सम्बन्ध में पढ़ा है।

मुहावरेदार-हिन्दी—घोड़े की स्वामिभक्ति भली-भांति विदित है। बालक और सयाने विद्यार्थियों ने महान् सिकन्दर और चित्तौर के राणा प्रताप के घोड़ों के सम्बन्ध में अच्छी तरह पढ़ा है।

२—भावानुवाद—जब किसी अनुच्छेद या वाक्य का भाव लेकर अन्य भाषा में अनुवाद करते हैं, तो उसे भावानुवाद कहते हैं. जैसे :—

Errors are like a straw upon the surface floor, those who seek pearls must dive-below.

अनुवाद—तिनकों की भांति त्रुटियाँ धरातल पर मिलती हैं। जो मोती ढूँढ़ते हैं, उन्हें गोता लगाना चाहिए।

भावानुवाद—दोष सरलता से मिल जाते हैं, किन्तु गुण बड़ी कठिनता से प्राप्त होते हैं।

उक्त उदाहरणों के देखने से विदित होता है कि भावानुवाद हमारे लिए उचित नहीं है। इसलिए शब्दानुवाद मुहावरेदार हिन्दी लिखना चाहिए।

उदाहरण (१)

Bharata entreated Rama to return to Ayodhya and ascend the throne. 'My dear brother' said Bharata 'My heart aches to see you wanderng here. It is all the work of cruel Kaikey. I am ashamed to call her my mother. Pray, come back and take up the kingdom which is yours by birth and which you are the fittest to rule. Rama would not move an inch from his fathers word.' The aged monarch's word, he said to Bharata, "binds both you and me alike. He owed a debt to Kaikaeyi and here in he has only inpaid it. How can we disobey his commands and leave his debt unpaid ?"

अनुवाद

भरत ने श्री रामचन्द्र जी से अयोध्या को लौटने और राजसिंहासन पर बैठने के लिये प्रार्थना की। उन्होंने कहा 'प्रियबन्धु' मेरा हृदय आपको यहाँ पर घूमते देख कर पीड़ित

होता है। यह सब कठोर कैकेई का कृत्य है। मुझे उसको अपनी माता कहते हुए लज्जा आती है। मेरी प्रार्थना है कि आप लौट चलें और राज्य को स्वीकार करें, जिस पर आपका जन्मसिद्ध अधिकार है और जिस पर शासन करने के लिए आप ही सर्वोपयुक्त हैं। राम अपने पिता के शब्द से तनिक भी विचलित न हो सके। उन्होंने भरत से कहा, "वृद्ध सम्राट् का शब्द तुमको तथा मुझको समानरूप से पालनीय है। उन पर कैकेई का एक ऋण था और यहाँ उन्होंने केवल उसको चुकाया है। हम किस प्रकार से उनकी आज्ञाओं का पालन न करने उनके ऋण को बिना चुकाये हुए छोड़ सकते हैं?"

उदाहरण (२)

Padmini was the wife of Rana Ratan Singh, king of Mewar, a descendanot of the famous sisodia class who boast of a purer descent than any other Rajput. The story is that she was the doughter of a Rajput ceylen whose name is now forgotten. Ratan Singh had heard stories of her great beauty from travllers and trades who came from that country to Mewar, and he eanged incessantly to gain the hand of this princess It is said that he went upon the quest of this beauty in the grab of a beggar and won her often among hardships.

अनुवाद

पद्मिनी मेवाड़ के राणा रतनसिंह की स्त्री थी, जो अपने को अन्य राजपूतों की अपेक्षा अधिक विशुद्ध मानने का स्वाभिमान रखने वाले सुप्रसिद्ध सीसोदिया कुल के वंशज थे।

कहानी है कि वह सिंहलद्वीप के एक राजपूत राजा की पुत्री थी जिसका नाम अब विस्मृत हो गया है। रतनसिंह ने उस देश से मेवाड़ को आने वाले यात्रियों तथा व्यापारियों से उसके अपूर्व सौन्दर्य की कथाएँ सुनी थीं और वे इस राजकुमारी का पाणि-ग्रहण करने के निरन्तर इच्छुक रहने लगे। कहा जाता है कि वे इस सुन्दरी की खोज में भिक्षुक के वस्त्र पहन कर गये और अनेक कठिनाइयों के पश्चात् उसको वरण किया।

अभ्यास

Nanak at the early age of twentyeight abandoned all his wordly connections and put on the grob of a faquir, The considrations of home and family did not matter much to him his friends and relatives could not persuade him to stay at home. In him was surging a strong disire to serve humanity wirth truth, and bring peace and contentment to hearts of the distressed and the poor. He had drunk at the bonution at clinine knowledge and wanted other to taste the sweetness of the nectar of truth.

सूचना—राष्ट्रीय भाषा हिन्दी होने के कारण उत्तर प्रदेश के शिक्षा-विभाग ने द्वितीय प्रश्नपत्र में अंग्रेज़ी से हिन्दी अनुवाद करवाने की अपेक्षा संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद करवाना अनिवार्य कर दिया है। इसलिए दो एक वर्ष से संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद करना आने लगा है। उसकी जानकारी के लिए हम कतिपय उदाहरण संस्कृत के हिन्दी अनुवाद के देते हैं।

(ग) संस्कृत से हिन्दी अनुवाद

उदा० १—चलितं चित्तं चलितं वृत्तम् चलितं जीवन योवनम् ।
चलाचलं हि निखिल मेको धर्मः सुनिश्चलः ॥

शब्दानुवाद-चित्त भी चंचल है, धन भी चंचल है, और जिन्दगी तथा यौवनावस्था भी चंचल है, संसार की लगभग सभी सुन्दर वस्तुएँ चलायमान हैं परन्तु केवल एक धर्म ही ऐसी वस्तु है, जो स्थिर है ।

भावानुवाद-संसार में सभी वस्तुएँ चलायमान और क्षणभंगुर हैं परन्तु एक धर्म ही स्थिर और तीनों कालों में रहने वाला है ।

उदा० २—क्रोधात्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

शब्दानुवाद-क्रोध से (मनुष्य) अज्ञानी हो जाता है । अज्ञान से स्मरण शक्ति नष्ट होती है स्मरण शक्ति के नाश से बुद्धि नष्ट हो जाती है बुद्धि के नष्ट हो जाने से पर (मनुष्य) नष्ट हो जाता है ।

उदा० ३—

विशङ्कमानोभवतः पराभवं नृपासन स्थोऽपि वनाधिवासिनः ।
दुरोदरच्छद्मजितां समीहते नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः ॥

भाषाऽर्थ—राज सिंहासन पर बैठा हुआ दुर्योधन, वन में घूमते हुए भी आप लोगों से अनिष्ट की शङ्का करता हुआ, कपट-पाश से जीती हुई दुनियाँ को राजनीति से अपने वश में करना चाहता है ।

उदा० ४—

इमामहं वेद न तावकीं धियं विचित्ररूपाः खलुचित्तवृत्तयः ।
विचन्त यन्त्या भवदापदं परां रुजन्ति चेतः प्रसवंभमा धयमः ॥

भाषार्थ—हाय ! आपकी इस दुर्गति को मैं नहीं समझ सकती, आदमियों की चित्तवृत्ति भी भिन्न-भिन्न होती है। आप की इस विपत्ति को सोचते हुए मेरे दिल को, मनोव्यथा (दिल दर्द) दुखाती है। किन्तु आप को तो ज़रा भी मालूम ही नहीं होता।

उदा० ५—सुख दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पाप मवाप्स्यसि॥

भाषार्थ—अर्जुन को युद्ध के लिए उपदेश देते हुए भगवान् कृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन ! सुख-दुख, हानि लाभ, विजय और पराजय को समान समझ कर युद्ध के लिए तैयार हो जा। इस प्रकार तुझे दुःख नहीं प्राप्त होगा।

अभ्यास

संस्कृत अनुवाद

६—येषां न विद्या न तपो न दानम्, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः। ते मृत्यु लोके भुवि भार भूताः, मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति॥

७—अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

८—दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्यया भूषितोऽपिसन।
मणिनालंकृतः सर्पः किमसौ न भयङ्करः॥

९—परिभ्रमँल्लोहित चन्दनोचितः पदातिरन्तर्गिरि रेणुरूषितः।
महारथः सत्य धनस्य मानसं दुनोति नो कच्चिदयं वृकोदरः॥

१०—विद्वत्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

११–ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्ते न भुञ्जीथाः मागृधः कस्यस्वित्धनम् ॥

१२–परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥

१३–मदमानसमुद्धतं नृपं न वियुङ्क्ते नियमेन मूढ़ता ।
अति मूढ उदस्यते नयान्नयहीनाद परज्यते जनः ॥

१४–शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे ।
साधवो नहि सर्वत्र चन्दनं न वने वने ॥

१५–अभिमानवतो मनस्विनः प्रिय मुच्चैः पदमारुरुत्ततः ।
विनिपातनिवर्तनत्तमं मतमालम्बनमात्म पौरुषम् ॥

अष्टम अध्याय

काव्य-विभाग

(रस-अलङ्कार आदि)

काव्य—'रमणीय अर्थ प्रति पादक शब्द' अथवा 'रसात्मक वाक्य' को काव्य कहते हैं।

काव्य-भेद

काव्य दो प्रकार का होता है। एक को 'गद्य-काव्य' और दूसरे को 'पद्य-काव्य' कहते हैं।

गद्य-काव्य-जिसकी रचना व्याकरण के नियमों के अनुसार हो। गद्य-काव्य में मात्रा और वर्णों की नियमित संख्या तथा गति और यति का विचार नहीं होता। जैसे—

सती-शिरोमणि श्रीसीता देवी को लंकेश ने वन में से हर ले जाकर वर्ष पर्यन्त अपनी राजधानी में रक्खा था। श्री राम चन्द्रजी को सीता की सतीत्व रक्षा पर पूर्ण विश्वास था और उसे सर्व-साधारण प्रकट करने के लिए लङ्का ही में अग्नि-परीक्षा की गई थी।

पद्य-काव्य-जिसमें व्याकरण के नियमों से बाध्य न होकर छन्द-शास्त्र के नियमों का पालन किया जाय। जैसे—

सादर सुन्दर बदनु निहारी। बोली मधुर बचन महतारी।

(तुलसीदास)

काव्य के अङ्ग

कविता और पद्य में वही भेद है, जो मनुष्य की आत्मा और शरीर में है। काव्य आत्मा है और पद्य शरीर।

काव्य पद्यमय हो सकता है, परन्तु पद्य का काव्यमय होना आवश्यक नहीं।

रस

काव्य को सुनकर मनुष्य अपने को भूल जाय, उसका चित्त उसी में रम जाय, जिसका कवि वर्णन करता है, और जिसमें एक विशेष आनन्द का अनुभव हो—उसी लोकोत्तर आनन्द को रस कहते हैं।

काव्य में नव रस होते हैं :—

(१) शृङ्गार (२) हास्य (३) करुण (४) रौद्र (५) वीर (६) भयानक (७) वीभत्स (८) अद्भुत (९) शान्त।

१—शृङ्गाररस—प्रेम या रति उत्पन्न करता है; जैसे—

(क) सहज सुभाव सुभग तन गोरे।
नाम लषन लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी।
पिय तन चितै भौंह करि बाँकी॥
खँजन मंजु तिरीछे नयननि।
निज पति कह्यौ तिनहिं सिय सैननि॥

(तुलसी.)

(ख) राघव बोले देख जानकी के आनन को—
'स्वर्गंगा का कमल मिला जैसे कानन को?
'नील मधुप को देख वहीं उस कञ्ज-कली ने
स्वयं आगमन किया'—कहा यह जनक-लली ने।

(जयशङ्कर प्रसाद)

२—हास्यरस—विनोद और हँसी के भाव उत्पन्न होते हैं, जैसे-

(क) कर त्रिशूल अरु डमरु विराजा,
चले बसह चढ़ि बाजहिं बाजा।
देखि सिवहिं सुर-तिय मुसकाईं,
बर लायक दुलहिन जग नाहीं॥

(ख) घोड़ा गिरयो घर बाहर ही महाराज,
कछू उठवावन पाऊँ।
ऐंड़ो परयो बिच पैंड़ोइ माँझ,
चलै पग एक न कैसेचलाऊँ॥
होय कहारन को जुपै आयसु डोली,
चढ़ाय यहाँ लगि लाऊँ।
जीन धरौं कि धरौं तुलसी मुख,
देहु लगाम कि राम कहाऊँ॥
(अज्ञात कवि)

(ग) हैफ़ होता है कि खोई उम्र मजनू बाँध-बाँध।
ऐसी बन्दिश से तो बहतर था कि छप्पड़ बाँधता॥

३—करुण—जो शोक, रंज और दया उत्पन्न करें, जैसे—

(क) हा धर्म धीर अजात शत्रो ! आर्य भीम हरे हरे !
हा हा सुभद्रे ! हाय कृष्णे ! उत्तरे। हा उत्तरे !!
गोविन्द ! हा केशव !! जनार्दन !!! अब अधम अर्जुन चला।
कृपया क्षमा करना मुझे, मुझ से हुआ रिपु का भला॥

(ख) गया हो बच्चा जब बीमार।
खड़ी माँ करती दुःख अपार॥
कभी लपटाती उसको गले।
लगाती कर कन्धों के तले॥

चूमती मुँह को बारम्बार।
बहाती नयनों से जल धार॥

कभी देती मन को तसकीन।
कभी फिर हो जाती ग़मगीन॥ (सरल)

४—रौद्ररस—क्रोध तथा क्रोध के भाव उत्पन्न करता है, जैसे—

(क) बालक बोलि बधौं नहि तोही।
केवल मुनि जड़ जानसि मोही॥ (तुलसी०)

(ख) जंग में अंग कठोर महामद नीर झरै झरना सरसे हैं।
झूलनि रंगघने मतिराम, महीरुह फूल प्रभा बिकसे हैं॥
सुन्दर सिन्दुर मंडित कुम्भनि गैरिक शृङ्ग उतंगलसे हैं।
भाऊ दिवान उदार अपार सजीव पहार करी बकसे हैं॥
(मतिराम)

(ग) इन पापियों ने हा हमें सन्ताप कितने हैं दिये।
है ज्ञात क्या न तुम्हें, इन्होंने पाप जितने हैं किये॥
इन को अगर मारे बिना, यह लोग जो जीवित रहें।
तो सोच लो संसार भर के, वीर हमसे क्या कहें॥
(मैथिलीशरण गुप्त)

५—वीररस—वीरता के भाव जागृत कर देता है, जैसे—

(क) इस युद्ध में जैसा पराक्रम पार्थ का देखा गया।
इतिहास के आलोक में वाह सर्वदा ही है नया॥
जाने उन्हों ने शत्रुगण कितने वहाँ मारे नहीं।
जाते किसी से हैं गिने, आकाश के तारे नहीं॥
(मैथिलीशरण गुप्त)

(ख) इन्द्र जिमी जंभ पर, बाड़व सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल-राज ।
पौन बारिबाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहसबाहु राम द्विजराज है ॥
दावा द्रुम-दंड पर, चीता मृग झुण्ड पर,
भूषन बितुण्ड पर जैसे मृगराज है ।
तेज तम-अंश पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलिच्छ-बंस पर सेर सिवराज है ॥
(भूषण कवि)

६—भयानक रस—भय उत्पन्न करता है, जैसे :—

(क) तनु कोप से कम्पित ज्यों प्रज्ज्वलित ज्वाला हुई ।
प्रलयाग्नि ज्यों खल सैन्य को जल अन्त विकराला हुई ॥

(ख) शिवहिं शम्भु गण करहिं शृङ्गारा ।
जटा मुकुट अहि मौर सँवारा ॥
कुण्डल कंकण पहिरे व्याला ।
तन बिभूति कटि केहरि छाला ॥
(तुलसीदास)

७—वीभत्सरस—घृणा के भाव उत्पन्न करता है । मरघट या हत्या आदि के वर्णनों में वीभत्स रस होता है । जैसे :—

(क) हाड़ मांस लाला रकत, बसा तुचा सब कोय ।
छिन्न-भिन्न दुर्गन्ध मय, मरे मनुस के होय ॥
(हरिश्चन्द्र)

(ख) आतें खैंचे गीध कहूँ, बक लोथ बिदारहिं ।
कहुँ अधजरो शरीर, चिता से मगर निकारहिं ॥

८—अद्भुत रस—जिससे आश्चर्य उत्पन्न होता है, जैसे :—

(क) देनहुतो सो दै चुके, विप्र न जानी गाथ ।
चलती बेर गुपाल जू, कछू न दीन्हों हाथ ॥
(नरोत्तमदास)

(ख) जिहि की रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥ —(तुलसी)

९—शान्तरस—जिससे मन में भक्ति और त्याग आदि के भाव जाग्रत हों। जैसे:—

(क) प्रभु आसन आसीन, भरि लोचन शोभा निरखि।
मुनिवर परम प्रवीन, जोरि पाणि असतुति करत॥
—(तुलसी)

(ख) हे गङ्ग तू नित स्वर्ग दैनी, पतन, पातक नासनी।
उठती सुभक्ति हिलोर हिय, लख तव हिलोर हुलासनी॥

इसके अतिरिक्त किसी-किसी के मतानुसार एक दसवाँ रस वात्सल्य भी है जिसमें पुत्रादिकों का प्रेम होता है। जैसे:—

बलिबलि जाउँ, मधुर सुर गावहु।
अबकी बार मेरे कुँवर कन्हैया, नंदहि नाचि देखावहु।
तारी देहु आपने कर की, परम प्रीति उपजावहु॥
बाँह उँचाइ कालिह की नाईं, धौरी धेनु बुलावहु।
नाचहु नैकु, जाउँ बलि तेरी, मेरी साध पुरावहु॥
कनक-खंभ प्रतिबिंबित सिसु इक, लवनी ताहि खवावहु।
'सूर' स्याम, मेरे उर तें कहुँ, टारे नेकु न भावहु॥
—(सूरदास)

भाव

रसों के साथ-साथ भाव भी कविता का एक प्रधान गुण है। जितने रस हैं, उतने ही भाव हैं। रस और भाव में केवल अन्तर यही है कि रस भाव उत्पन्न करते हैं और जो रस के द्वारा असर पड़ता है, वह भाव है। प्रत्येक रस कोई न कोई भाव जाग्रत करता है। वह उस रस का भाव है।

प्रेम शृङ्गार रस का; दया और शोक करुणा रस के; भक्ति और त्याग शान्त रस के; हँसी, विनोद और मनोरञ्जन हास्य रस के; वीरत्व, उत्साह और प्रयास वीर रस के; घृणा, उपेक्षा और क्षोभ वीभत्स रस के; भय और मालिन्य भयानक रस के; और क्रोध रौद्र रस का भाव है। वात्सल्य रस का भाव बड़ों का छोटों के प्रति श्रद्धा व प्यार है।

अलंकार

अलंकार का अर्थ आभूषण है। जैसे नवयौवना रमणी के सौन्दर्य को सुन्दर आभूषण सौगुना बढ़ा देते हैं। उसी प्रकार कविता की शोभा अलङ्कारों की समाविष्टि से बढ़ जाती है। इसलिए किसी रचना में गौरव उत्पन्न करने के लिए किसी बात को घुमा-फिराकर असाधारण ढङ्ग से वर्णन करना अलंकृत रचना कहलाती है।

अलङ्कार दो प्रकार के होते हैं—

(१) शब्दालङ्कार (२) अर्थालङ्कार।

(१) शब्दालङ्कार—वह अलङ्कार है जिसमें शब्दों की सुन्दर योजना से कविता में चमत्कार उत्पन्न हो जाय। जैसेः—हे चतुर चूड़ामणि चन्द्र।

(२) अर्थालङ्कार—वह अलङ्कार है जिसके होने से अर्थ में कोई चमत्कार या सुन्दरता उत्पन्न हो जाती है। जैसेः—आप विचार में वृहस्पति हैं।

शब्दालङ्कार

शब्दालङ्कार के कई भेद हैं। किन्तु चार प्रमुख हैं—

(१) अनुप्रास (२) यमक (३) श्लेष (४) वक्रोक्ति।

(१) अनुप्रास

व्यंजन सम अरु स्वर असम, अनुप्रास अलंकार।

छेक, वृत्ति, श्रुति, लाट अरु, अन्त्य पाँच विस्तार ॥

—(भगवानदीन)

(क) छेकानुप्रास

जहाँ एक वा अनेक अक्षरों की आवृत्ति केवल एक बार हो, वहाँ छेकानुप्रास होता है। जैसे:—

'मार-मार कर दुष्ट-दलों को भार भूमि का हरते हैं।'

इस चरण में (म), (द) तथा (भ) इन व्यंजनों की आवृत्ति केवल एक ही बार हुई है।

(ख) वृत्यानुप्रास

जहाँ एक वा अनेक व्यंजनों की कई बार आवृत्ति हो, वहाँ वृत्यानुप्रास होता है। जैसे:—

कासी परकासी पुनवासी चन्द्रिका-सी जाके,
वासी अविनासी अघनासी ऐसी कासी है।

—(हरिश्चन्द्र)

इसमें 'क' 'स' 'प' 'न' इन व्यंजनों की आवृत्ति कई बार हुई है।

(ग) लाटानुप्रास

जहाँ शब्द और अर्थ एक हो रहें, परन्तु अन्वय करने से भेद हो जाय, वहाँ लाटानुप्रास होता है। जैसे:—

(क) औरन के जाँचे कहा, जो जाँच्यो शिवराज।
औरन के जाँचे कहा, नहिं जाँच्यो शिवराज ॥

(ख) पराधीन जो जन नहीं, स्वर्ग, नरक ता हेतु।
पराधीन जो जन नहीं, स्वर्ग नरक ता हेतु ॥

(घ) श्रुत्यनुप्रास

जहाँ एक स्थान 'तालु-कण्ठ' से बोले जानेवाले वर्णों की समानता पाई जावे, वहाँ श्रुत्यनुप्रास होता है। जैसे:—

'सत्य सनेह शील सुखसागर।' —(तुलसी)

(ङ) अन्त्यानुप्रास

जहाँ चरण या पद के अन्त में स्वर वा व्यंजन एकसे आवें, वहाँ अन्त्यानुप्रास होता है। जैसेः—

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अमिय दृग दोष विभञ्जन॥ —(तुलसी)

(२) यमक

जहाँ एक शब्द कई बार आवे परन्तु अर्थ भिन्न-भिन्न रहे, वहाँ यमकालङ्कार होता है। जैसेः—

रहिमन या निज पेट ते, बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अनखाये रहे, काहे कोउ अनखाय॥ —(रहीम)

इसमें 'अनखाये' शब्द दो बार आया है। इसमें पहले अनखाये का अर्थ 'बिना खाये' और दूसरे 'अनखाये' का अर्थ 'अप्रसन्न' का है।

(३) श्लेष

जहाँ एक ही शब्द के कई अर्थ लिये जायँ, वहाँ श्लेषालंकार होता है। जैसेः—

'हितकारी ऋतुराज तुम साजत जग आराम।'

यहाँ 'ऋतुराज' तथा 'आराम' शब्द श्लिष्ट है।

(१) हे ऋतुराज ! (अर्थात् वसन्त-ऋतु) तुम बड़े उपकारी हो क्योंकि तुम सारे संसार रूपी आराम (अर्थात् उपवन) को सुसज्जित कर देते हो।

(२) हे ऋतुराज ! (समय) के अनुकूल आचरण करनेवाले, धर्मात्मा राजा, तुम सारे जगत् को आराम (अर्थात् सुख) देते हो।

(४) वक्रोक्ति

वक्रोक्ति वह अलङ्कार है जिसमें सुननेवाला कही हुई बात के और ही अर्थ निकाले। जैसेः—

(क) 'को तुम' ? 'हैं घनश्याम हम', तो 'बरसो कहिं जाय'।

(ख) 'तुम खोलौ जू किवाड़' ? 'तुम कोहो ऐती बार', 'हरि-नाम है हमार', 'बसो कानन पहार में' ।

अर्थालंकार

अर्थालङ्कार के सौ से भी अधिक भेद हैं, किन्तु हम यहाँ पर कुछ प्रधान अलङ्कारों का वर्णन करते हैं। अर्थालङ्कार का मुख्य अङ्ग उपमा है। इसी उपमालङ्कार में कुछ थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन करने मात्र से कई प्रकार के अलङ्कारों का जन्म होता है। इतना ही नहीं, बल्कि जहाँ देखो वहीं लोग उपमाएँ दिया करते हैं। मूर्ख से लेकर विद्वान् तक, छोटे से लेकर बड़े तक, सभी लोग उपमा का प्रयोग करते हैं। ये उपमाएँ जितनी ही स्पष्ट और मनोहर होती हैं, उतना ही काव्य में अधिक चमत्कार बढ़ जाता है।

(१) उपमा

उपमा का अर्थ तुलना करना है। जिसका वर्णन हो, उसे 'उपमेय' और जिससे उपमा दें, उसे 'उपमान' कहते हैं। जैसे- 'श्रीकृष्णचन्द्र जी बादल के समान काले थे'। यहाँ 'श्रीकृष्णचन्द्र' उपमेय और 'बादल' उपमान है। इन दोनों अङ्गों के अतिरिक्त उपमा के दो अङ्ग और होते हैं। धर्म और वाचक ऊपर के उदाहरण में 'काले' धर्म और 'समान' वाचक शब्द हैं। इन चारों अङ्गों-युक्त उपमा को पूर्णोपमा कहते हैं। यदि इन अङ्गों में से एक या एक से अधिक अङ्गों का लोप हो, उसे लुप्तोपमा कहते हैं।

जैसेः—

'शशि सों उज्ज्वल तिय वदन
पल्लव से मृदु पानि।' } पूर्णोपमा

'है रघुवर-मुखचन्द्र सौं' } लुप्तोपमा

उपमा के वाची शब्दः—सौं, लौं, सरिस, समान, सदृश, तुल्य, सी, से और तूल आदि हैं।

उपमा के तीन भेद हैं—(क) मालोपमा, (ख) उपमेयोपमा और (ग) अनन्वयोपमा।

(क) मालोपमा—में एक उपमेय की अनेक उपमानों से समता दी जाती है। जैसेः—'यह मुख चन्द्र के समान सुन्दर और कमल के समान कोमल है।'

(ख) उपमेयोपमा—में उपमेय और उपमान की परस्पर समता दी जाती है। जैसेः—'यह मुख चन्द्र के समान है और चन्द्र इस मुख के समान है।'

(ग) अनन्वयोपमा—में उपमेय की उपमा अन्य उपमान से न देकर उसी उपमेय से दी जाती है। जैसेः—'मुख' वास्तव में यही मुख है।

(२) रूपक

जहाँ उपमेय और उपमान में पूर्ण समानता बताई जाय, वहाँ रूपकालंकार होता है। जैसेः—

राम-नाम मनि-दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरौ, जो चाहत उजियार॥—(तुलसी)

यहाँ उपमेय (राम-नाम) का रूप उपमान (मनि-द्वीप) का-सा ही बना कर पूर्ण समता और अभेद के साथ दिखलाया गया है।

(३) उत्प्रेक्षा

यदि उपमेय की उपमान में बलपूर्वक समकल्पना की जाय, तो उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। यह अलंकार 'जनु', 'मानो', 'मनु', 'मनहु' आदि शब्दों द्वारा प्रकट किया जाता है। जैसेः—

'कटि निरखत केहरि डरि मानो, बन बिच रह्यो दुराय'।

—(सूरदास)

अथवा 'यह मुख मानो चन्द्रमा है'।

(४) प्रतीप

'प्रतीप' का अर्थ है उलटा। उपमा अलंकार में जिस तरह उपमेय को उपमान के समान कहते हैं, उसी के विपरीत इस अलंकार में उपमान को उपमेय के समान कहते अथवा उपमान से उपमेय का अनादर कराते हैं। जैसेः—

(क) 'यह मुख तो चन्द्र से भी अधिक सुन्दर है।'

(ख) पाहन जिमि जनि गर्व करु, हौंही कठिन अपार।
चित दुर्जन के देखिये, तोसे लाख हजार॥

(५) अपह्नुति

जहाँ उपमेय को झूठा कहकर उपमान को सच्चा ठहराया जाय, वहाँ अपह्नुति होती है। अपह्नुति के माने हैं छिपाना। जैसेः—

गरल गरल नहिं, खल वचन,
विष जे दाहहिं प्रान।

इसमें हेतु भी दिया हुआ है।

नोटः—कहीं-कहीं मिस (बहाना), ब्याज आदि पद रख कर भी किसी बात को अन्यथा किया जाता है। इसके सूचक पद प्रायः निषेधवाची शब्द हैं। जैसेः—न, नहीं और मिस, ब्याज आदि होते हैं।

(६) भ्रांति

इस अलंकार में किसी एक वस्तु को भ्रम के कारण कुछ और ही समझने का वर्णन रहता है। जैसेः—

री सखि मोहि बचाय, या मतवारे भ्रमर सों।
डस्यो चहत मुख आय, भरम भरो बारिज गुनै॥

(७) सन्देह

जहाँ सत्य, असत्य का निश्चय न होने के कारण उपमेय का एक वा अनेक उपमानों के रूप में वर्णन किया जाय और यह संशय बना ही रहे कि यह अमुक वस्तु है अथवा अमुक।
जैसे:—

(क) तरनि-तनूजा-तट-तमाल-तरुवर बहु छाये।

× × ×

किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज-निज सोभा।

× × ×

यहाँ यह संदेह है कि यह वस्तु (तरुवरों का झुकना) वास्तव में क्या है? जल का स्पर्श है या जल-दर्पण में मुख देखना है।

सन्देह के वाची पद धौं, किधौं, यातो, अथवा, की, कै आदि होते हैं।

(ख) नारी बीच सारी है कि सारी बीच नारी है,
नारी ही की सारी है कि सारी ही की नारी है॥

(८) दृष्टान्त

जहाँ उपमेय और उपमान के रूप में दो भिन्न-भिन्न वाक्य ऐसे रहते हैं जिनके धर्मों में विभिन्नता होती है, किंतु दोनों में एक प्रकार की समानता या एकता-सी दिखलायी जाती है।

नोट:—जहाँ किसी विशेष बात के वाक्य की सहायता ज्यों, त्यों, जैसे आदि पदों के द्वारा किसी साधारण बात के वाक्य से दिखलाई जाती है, वहाँ उदाहरण अलंकार होता है। दृष्टांत में जैसे, ज्यों आदि पद नहीं रहते, फिर भी दो वाक्यों में एकता प्रकट की जाती है। जैसे:—

कुलहिं प्रकासै एक सुत, नहिं अनेक सुत निंद।
चंद एक सब तम हरै, नहिं उडगन के वृन्द॥

यहाँ दो पृथक् वाक्यों में जिनके धर्म (भाव) भी पृथक् ही हैं, एकता एवं समता दिखाई गई है। एक में दूसरे का प्रतिबिंब-सा दीखता है।

(९) अर्थान्तरन्यास

जहाँ कोई सामान्य—अर्थात् व्यापक सिद्धान्त या कथन किसी विशेष—अर्थात् सीमित सिद्धान्त या कथन से पुष्ट किया जाय अथवा कोई विशेष सिद्धान्त किसी सामान्य सिद्धान्त से पुष्ट किया जाय। जैसेः—

बड़े न हूजे गुनन बिन, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक, गहनौ गढ़ो न जाय॥
—(बिहारीलाल)

यहाँ प्रथम काव्य में एक साधारण बात कही गयी है और उसका समर्थन द्वितीय वाक्य की विशेष बात से किया गया है।

(१०) अत्युक्ति

जहाँ वाक्य में रोचकता लाने के निमित्त किसी की शूरता, सुन्दरता अथवा उदारता आदि का बहुत अधिक बढ़ाकर मिथ्या वर्णन किया जाय, वहाँ अत्युक्ति अलंकार होता है। जैसेः—

'श्री विक्रम को दान लहि, याचक भये कुबेर।'

यहाँ विक्रमादित्य के दान के गुण का कथन अतिशय रूप में किया गया है। और भीः—

'रक्त के नद बह रहे थे शवों के पर्वत खड़े।'

(११) अतिशयोक्ति

जहाँ चित्त की तीव्र भावनाओं को व्यक्त करने के लिए अथवा किसी की अत्यन्त अधिक सराहना या प्रशंसा करने के

लिए कोई अद्भुत बात कही जाय, जो लोक-सीमा के बाहर हो और बहुत बढ़ा कर कही गई हो, वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है। जैसेः—

'हिमालय की चोटियाँ आकाश को भी चूमती हैं।'

(१२) विरोधाभास

जहाँ विरोधी पदार्थों का वर्णन किया जाय, वह विरोधाभास अलंकार होता है। जैसेः—

'तृण से कुलिश, कुलिश तृण करई।'
अथवा, 'उसने मर कर अपने मुरदा देश को जिला दिया।'

(१३) स्मरण

जहाँ उपमेय को देखकर उपमान की और उपमान को देखकर उपमेय की याद आती हो। जैसेः—

'उस सुन्दर मुख को देखकर चन्द्र की याद आती है या चन्द्र को देखकर उस मुख की याद आती है।'

पिंगल

१—जिस रचना में वर्णों के मान, लय और यति का विचार किया जाता है, उसे पद्य कहते हैं। पद्यात्मक रचना का दूसरा नाम छन्द है, क्योंकि पद्य किसी न किसी छन्द में होता है। छन्द को पद्य का साँचा समझना चाहिए।

पिंगलशास्त्र

२—कविता में संगीत—सौंदर्य उत्पन्न करने के निमित्त जिस शास्त्र में पद्य-रचना के नियमों तथा लक्षणों का उल्लेख हो तथा पद्य के अनेक भेदों का वर्णन हो, उसे छन्दशास्त्र कहते हैं। इस शास्त्र के आदि-आचार्य महर्षि पिंगल

माने जाते हैं। छन्दशास्त्र इन्हीं आचार्य के नाम से विख्यात है।

३—लघु तथा गुरु (स्वर)—छन्द के विचार से वर्णों—अर्थात् अक्षरों के दो भेद होते हैं:—

(क) लघु—जिस वर्ण के उच्चारण में सबसे कम समय लगता है, उसे लघु-वर्ण कहते हैं। लघु-वर्ण का मान एक मात्रा है और उसका चिह्न एक खड़ी पाई '।' है। अ, इ, उ, ऋ, ये ह्रस्व (लघु) माने जाते हैं।

(ख) गुरु—जिस वर्ण के उच्चारण में लघु-वर्ण से दूना समय लगता है, उसे गुरु-वर्ण कहते हैं। इसका मान दो मात्राएँ और चिह्न 'ऽ' है। आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, ये दीर्घ-स्वर गुरु माने जाते हैं।

४—लघु तथा गुरु (व्यंजन तथा स्वर)-(क) व्यंजनों तथा संयुक्त वर्णों का लघु अथवा गुरु होना उनके साथ मिले हुए स्वरों पर निर्भर है। जैसे:—क, कि, कु, क्ति ये ह्रस्व-स्वर से युक्त व्यंजन वा संयुक्ताक्षर लघु हैं और का, की, कू, को, क्ता ये दीर्घ-स्वर से युक्त व्यंजन या संयुक्ताक्षर गुरु हैं।

(ख) संयुक्ताक्षर के पूर्व का लघु-वर्ण गुरु माना जाता है। जैसे:—

आकृष्ट=ऽऽ। ; संदर्भ=ऽऽ।

(ग) अनुस्वार और विसर्ग-युक्त वर्ण गुरु होते हैं। जैसे:—कं, कः, अं, अः।

(घ) हलन्त के पूर्व का वर्ण दीर्घ माना जाता है और

हलन्त-वर्ण की मात्रा नहीं गिनी जाती। जैसेः—
पृथक् = ।ऽ

(ङ) चन्द्रविन्दुवाले लघु-वर्ण लघु ही रहते हैं। जैसेः—
अँदेसा = ।ऽऽ; करिया = ।।ऽ

अपवाद—वर्णों का लघु अथवा गुरु होना बहुत कुछ उनके उच्चारण पर निर्भर है।

अतः निम्नाङ्कित अपवादों पर छात्रों का ध्यान आकर्षित किया जाता है।

(क) संयुक्ताक्षर के पूर्व का लघु-वर्ण जब खींच कर पढ़ा जाता है, तब वह गुरु होता है, किन्तु यदि वह हलके से पढ़ा जाय, तो लघु ही माना जाता है। जैसेः—

उठ्यो = ।ऽ। एक्का = ।ऽ।

(ख) कभी-कभी उच्चारण की सुगमता के निमित्त गुरु वर्ण लघु और लघु वर्ण को गुरु पढ़ा जाता है। जैसेः—
देखेउ, लोभाई, परेखेहु।

'देखेउ' शब्द में 'खे' को गुरु होते हुए भी लघु ही पढ़ना पड़ेगा। इसी प्रकार 'लोभाई' शब्द में 'लो' को गुरु होते हुए भी लघु ही पढ़ना पड़ेगा। ऐसे ही 'परेखेहु' शब्द में 'खे' को ह्रस्व ही पढ़ेंगे।

(ग) हिन्दी के वर्णिक वृत्तों में संस्कृत छंदों के नियमानुसार चरण का अन्तिम अक्षर यदि लघु हो, तो भी गुरु माना जाता है।

(५) विराम—बहुत-से लम्बे छन्दों के एक ही चरण में पढ़ते समय एक ही जगह या कई जगह जिह्वा को रुकावट या अवरोध होता है। इस रुकने को विराम या

विश्राम अथवा यति कहते हैं। जैसे:—

'भे प्रकट कृपाला, दीन दयाला, कौशिल्या हितकारी।'

उपर्युक्त पद 'कृपाला' और 'दयाला' पर टूटता है, अर्थात् इस पद में आरम्भ से दस और आठ मात्राओं पर यति है।

(६) लय या गति—प्रत्येक छन्द में एक प्रकार का प्रवाह होता है। इसे 'गति' या 'लय' भी कहते हैं। इस से हीन होने पर रचना मधुर नहीं होती और छन्द दूषित हो जाता है। जैसे:—

"सुनु जननी बड़ भागी सोइ सुत, मातु वचन पितु अनुरागी जो"

यहाँ चौपाई के लक्षण के अनुसार प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होने पर भी 'लय' का अभाव है। पाठ धारावाहिक गति से नहीं चलता। अतः यह पाठ दूषित है। इसी पंक्ति को यदि यों रखदें—

"सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी, जो पितु-मातु वचन अनुरागी"

तो पाठ लय संयुक्त होने के कारण मधुर जान पड़ने लगता है। लय का ज्ञान अभ्यास पर ही निर्भर है। इसके लिये कोई विशेष नियम नहीं हैं।

छन्द—जो कविता मात्रा, वर्ण-रचना, विराम, गति और चरणान्त सम्बन्धी नियमों के अनुसार होती है, उसे छन्द कहते हैं।

गद्य—जिस रचना में कोई छन्द नहीं होता, उसे गद्य कहते हैं।

चम्पू—जिस रचना में गद्य और पद्य दोनों होते हैं, उसे चम्पू कहते हैं।

चरण या पाद—छन्द के प्रत्येक भाग को चरण या पाद कहते हैं।

नोटः—प्रत्येक छन्द में चार चरण होते हैं; द्वितीय और चतुर्थ चरण को सम-चरण कहते हैं। प्रथम और तृतीय को विषम चरण कहते हैं।

छन्दों के दो भेद

(१) जिस छन्द के चारों चरणों में मात्राओं की संख्या एक समान होती है और वर्णों का क्रम समान नहीं होता, उसे मात्रिक छन्द कहते हैं।

(२) जिस छन्द के चारों चरणों में वर्णों की संख्या और क्रम समान होते हैं, उसे वर्णिक छन्द कहते हैं।

मात्रिक छन्द के तीन उपभेद

(१) सम—जहाँ चारों चरणों में मात्राओं की संख्या समान हो। जैसेः—चौपाई।

(२) अर्द्धसम—जहाँ पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरणों में मात्राओं की संख्या समान हो। जैसेः—दोहा, सोरठा।

(३) विषम—जहाँ चारों चरणों में मात्राओं की संख्या बराबर न हो अथवा जिस छन्द में चार से अधिक चरण हों। जैसेः—कुण्डलिया।

सम-मात्रिक छन्द

(१) चौपाई—इस छन्द के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। चरण के अन्त में दो गुरु रखने से इसकी गति अच्छी हो जाती है। जैसेः—

१११११ १११ २१ ११ २२
'फरकत अधर कोप मन माहीं।'
सपदि चले कमलापति पाहीं॥

देहौं साप कि मरि हौं जाई।
जगत मोरि उपहास कराई॥

(२) रोला—इस छन्द के प्रत्येक चरण में ग्यारह और तेरह मात्राओं पर विराम देकर कुल २४ मात्राएँ होती हैं। चरण के अन्त के दो अक्षर गुरु होने चाहिये, किन्तु यह नियम सर्वत्र नहीं पाया जाता। एक कवि ने इसी छन्द में इसकी परिभाषा यों लिखी है—

'जाके प्रति पद माहिं, कला चौबिस गनि राखैं।
रोला अथवा काव्य छन्द ताकहुँ कवि भाखैं॥
नियम न लघु-गुरु केर, रखैं अंतै गुरु दोई।
ग्यारह पर विश्राम, किये अति उत्तम होई॥

जैसेः–इत सुरसरि की धाक, धमकि त्रिभुवन भय पागे।
सकल सुरासुर बिकल, बिलोकन आतुर लागे॥
दहलि दसौं दिग-पाल, बिकल-चित-इत-उत धावत।
दिग्गज दिग दंतनि, दबोचि दृग भभरि भ्रमावत॥

(३) गीतिका—प्रत्येक चरण में १४ और १२ मात्राओं के विश्राम से इस छन्द में २६ मात्राएँ होती हैं, अन्त में लघु गुरु होते हैं। जैसेः—

दीन दुखियों पर दया का भाव जो रखते सदा;
हर तरह से जो मिटाते भाइयों की आपदा।
सर कटा देते न हटते ध्येय से डरते नहीं;
दर हक़ीक़त वह कभी संसार में मरते नहीं।

(४) हरिगीतिका—प्रत्येक चरण में १६ और १२ मात्राओं के विश्राम से इस छन्द में २८ मात्राएँ होती हैं। जैसेः—

शुद्धाति शुद्ध विशुद्ध भगवन् शुद्ध ज्ञान भरेपुरे,
अन्याय शत्रु सदैव पोषक साधुओं के हैं हरे।

निज छत्रछाया में दुखी हम आर्यगण को लीजिये,
कल्याणकारी आत्म-बल की भीख माँगें दीजिये।

मात्रिक अर्द्ध-सम छन्द

(१) बरवै—इस छन्द में विषम चरणों में १२ मात्राएँ होती हैं। सम चरणों में ७ मात्राएँ होती हैं। अन्त में लघु-गुरु लघु (। ऽ ।) होना आवश्यक है। जैसे:—

कमठ पीठि धनु सजनी, कठिन अँदेश।
तमकि ताकि ये तुरि हैं, कह्यो महेश॥

(२) दोहा—१, ३ चरण में १३ और २, ४ चरण में ११ मात्राएँ होती हैं। जैसे:—

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परे, श्याम हरित दुति होय॥

(३) सोरठा—पहले और तीसरे चरण में ११ तथा दूसरे और चौथे चरण में १३ मात्राएँ होती हैं। जैसे:—

'संमन' मन की भूल, सेवा करी करील की।
उनते चाहत फूल, जिन डारन पत्ता नहीं॥

मात्रिक विषम छन्द

(१) कुण्डलिया:—इस छन्द के आदि में एक दोहा, उसके पश्चात् एक रोला छन्द जोड़ कर ६ पद का माना जाता है। दोहे का अंतिम, रोला का प्रथम चरणार्द्ध होता है, और रोले के अंतिम चरण के कुछ अंतिम अक्षर व शब्द वही होने चाहिए जो दोहे के आदि में हों। जैसे:—

नैया मोरी तनक सी, बोझी पाथर भार।
चहुँ दिशि अति भँवरैं उठत, केवट है मतवार॥
केवट है मतवार, नाव मझधारहिं आनी॥
आँधी उठत प्रचण्ड तेहु पर बरसत पानी॥

कह गिरधर कविराय नाथ हौ तुमहि खेवैया।
उठै दया को डाँड़ घाट पर आवै नैया॥

वर्णिक छन्द

वर्णिक—वृत्तों के भी ये ही भेद होते हैं। प्रायः वर्णिक सम-वृत्तों का ही प्रचार अधिक देखा जाता है।

वर्णिक—वृत्तों में गण-विधान अति आवश्यक होता है। अस्तु, गण-विधान का जानना भी उचित है।

तीन वर्णों के समूह को गण कहते हैं। इन तीनों वर्णों में लघु और दीर्घ के क्रम-विधान से आठ गण हो जाते हैं।

गुरु वर्ण के लिए "ऽ" और लघु के लिए "।" ऐसा चिह्न लिखा जाता है।

वर्ण की अपेक्षा से गण आठ हैं—

शुभ	मगण	ऽऽऽ	राजश्री	तीनों गुरु
	नगण	।।।	कमल	तीनों लघु
	भगण	ऽ।।	सावन	पहला गुरु शेष दो लघु
	यगण	।ऽऽ	कपाली	पहला लघु शेष दो गुरु
अशुभ	जगण	।ऽ।	महान	बीच का गुरु शेष दो लघु
	रगण	ऽ।ऽ	कामना	बीच का लघु शेष दो गुरु
	सगण	।।ऽ	धारिणी	अन्त का गुरु शेष दो लघु
	तगण	ऽऽ।	देवेश	अन्त का लघु शेष दो गुरु

मात्रा की अपेक्षा से गण ५ हैं—टगण में (ऽऽऽ) ६ मात्रा, ठगण में (ऽऽ।) ५ मात्रा, डगण में (ऽऽ) ४ मात्रा, ढगण में (ऽ।) ३ मात्रा और णगण में (ऽ) या (।।) २ मात्रा होती हैं।

वर्णिक समवृत्तों में से २६ वर्णवाले वृत्त तो साधारण और इससे अधिक वर्णों के वृत्त दंडक कहे जाते हैं।

(१) सवैया—२२ से २६ अक्षरों तक का होता है, इसके अनेक भेद हैं। उनमें से मुख्य भेद यहाँ दिये जाते हैं।

सवैयों में बहुधा गुरु-लघु का क्रम ठीक न मिलने से भ्रम

हो जाता है। स्मरण रखना चाहिए कि वर्णों का गुरुत्व-लघुत्व केवल उच्चारण पर निर्भर है, लिखावट पर नहीं।

(क) मदिरा—भगण और १ गुरु (२२ अक्षर)

जैसेः—

छत्रिन के प्रण युद्ध जुवा जुरि साजि चढ़ैं गज बाजिन ही।
वैश्य को बानिज और कृषोपन शूद्र के सेवन साज यही॥
विप्रन के प्रण है जु यही सुख सम्पति सूँ कछु काज नहीं।
कै पढ़िवौ कै तपोधन है कन माँगत विप्रन लाज नहीं॥

(ख) मत्तगयंद—७ भगण और २ गुरु (२३ अक्षर)

जैसेः—

पाँयन नूपुर मंजु बजैं कटि किंकिनि की धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसै पटपीत हिये हुलसै बनमाल सुहाई॥
माथे किरीट बड़े दृग चंचल मंद हँसी मुखचन्द्र जुन्हाई।
जैजग मन्दिर दीपक सुन्दर श्री ब्रज दूलह देव सुहाई॥

(ग) दुर्मिल—८ सगण (२४ अक्षर)

जैसेः—

सुनि कै धुनि चातक मोरनि की,
चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सों।
अनुराग भरे हरि बागन में,
सखि रागत राग अचूकनि सों॥
कवि 'देव' घटा उनई जुनई,
बनभूमि भई दल दूकनि सों।
रँगराती हरी हहराती लता,
झुकि जाती समीर के झूकनि सों॥

इस पद्य के अन्तिम चरण में 'ती' यद्यपि देखने में गुरु है परन्तु पढ़ने में लघु है, अतएव लघु ही समझना चाहिए। हिन्दी छन्दशास्त्र में वर्णों का लघु होना उच्चारण पर ही निर्भर है।

वर्णिक दंडक

(१) मनहरण कवित्त—इस वर्णिक वृत्त के प्रत्येक चरण में ३१ वर्ण होते हैं। १६ और १५ पर यति रखकर अन्त में कम से कम एक गुरु अवश्य रखते हैं। जैसेः—

सुनिये विटप प्रभु ! पुहुप तिहारे हम,
राखिहौ हमें तौ सोभा रावरी बढ़ाइ हैं।
तजिहौ हरिष कै तौ बिलग न मानैं कछू,
जहाँ-तहाँ जैहैं तहाँ दूनौ जस गाइ हैं॥
सुरन चढ़ैंगे, नर-सिरन मढ़ैंगे फेरि,
सुकवि 'अनीस' हाथ-हाथन बिकाइ हैं।
देस में रहैंगे, परदेस में रहैंगे, काहू—
भेस में रहैंगे, तऊ रावरै कहाइ हैं॥

नोटः—इन छन्दों के अतिरिक्त कुछ छन्द ऐसे और हैं जो पाठ्य-पुस्तकों में बहुधा आते रहते हैं। उनको भी हम यहाँ नीचे छात्रों की जानकारी के लिए लिखे देते हैं।

(१) मालिना—(न, न, म, य, य) इस क्रम से १५ अक्षर।

उदा०—जगकर कितनी ही, रात मैंने बिताई।
यदि तनिक कुमारों को, हुई बेकली थी॥
यह हृदय हमारा, भग्न कैसे न होगा।
यदि कुछ दुख होगा, बालकों को हमारे॥

—(अयोध्यासिंह उपाध्याय)

(२) भुजङ्गसंगता वृत्त—सगण, जगण, रगण का होता है। जैसेः—

सजुरी करै अवेर क्यों। चल श्याम बंसि टेर ज्यों॥
तट में भुजङ्ग सङ्गता। रच रास मोद संगता॥

(३) भुजङ्गप्रयात वृत्त—चार यगण का होता है और उर्दू के

इस बह्र यानी, "न छेड़ो हमें, हम सताए हुए हैं" से मिलता है। जैसेः—

बिना गोरसम् को रसो भोजनानाम्।
बिना गोरसम् को रसो भूपतीनाम्॥
बिना गोरसम् को रसो पण्डितानाम्।
बिना गोरसम् को रसः कामिनीनाम्।
नमामीशमीशान निर्वाण रूपम्।
विभुं व्यापकम् ब्रह्म वेद स्वरूपम्॥
अजम् निर्गुणम् निर्विकल्पम् निरीहम्।
चिदाकाशमाकाश वासम् भजेहम्॥

(४) मोहिनी वृत्त—स, भ, त, य, स का होता है और ७, ८ पर यति होती है। आदि में रगण होता है। जैसेः—

सुभ तो ये सखीरी, आदि हू चित्त धरी।
नर और नारि पढ़ैं, भारत के एक घरी॥
शुद्ध भाषा ब्रज की, जासु लिपि सोहनि है।
साँच हू नागरि है, आगरि है, मोहनि है॥

(५) किरीट सवैया—आठ भगण का होता है और चारों चरणों में गणों का क्रम एकसा रहता है। जैसेः—

मानुष हौं तो वही रसखान, बसौं नित गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बस मेरौ, चरौं नित नन्द की धेनु मझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो, कियो सिर छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग हौं तो बसेरौ करौं बहि, कालिंदी कूल कदम्ब की डारन॥

(६) देव घनाक्षरी—यह राम ३ × योग ८=२४+९=३३ वर्णों का वृत्त है। ८, ८, ८, ९ पर यति होती है। इसके अन्तिम तीनों वर्ण लघु होते हैं और ऐसे ही दुहरे प्रयोग रोचक होते हैं। जैसेः—

झिल्ली झनकारैं, पिक चातक पुकारैं,
वजमोरन गुहारैं, उठि जुगुनू चमकि चमकि ;
घोर घनघोर मोर, धुरवा धरारे धाम,
धूमनि मचावैं, नाचि दामिनी दमकि दमकि ॥
भूकनि बयार बहै, लूकनि लगावे अङ्क,
हूकन भभूकिन की, उर में खमकि खमकि ।
कैसे कर राखों प्राण प्यारे जशवन्त बिन,
नन्ही नन्ही बूँद, झरें मेघवा झमकि झमकि ॥

(७) तोमर—इसके प्रत्येक चरण में बारह मात्राएँ और चरणान्त में गुरु लघु रहता है । जैसेः—

तब चले बान कराल । फुंकरत जनु बहु व्याल ।
कोपेउ समर श्रीराम । चले विसिष निसित निकाम ॥

—(तुलसीदास)

(८) शृङ्गार—इसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं, चरण के आदि में तीन मात्राएँ इसके पश्चात् दो मात्राएँ अन्त में लघु गुरु या गुरु लघु रहता है । जैसेः—

देव वे कुंज उजड़ी पड़ी । और वह कोकिक उड़ ही गई ।
हटाई हमने लाखों बार । किंतु वे घड़ियाँ जुड़ ही गईं ॥

—(सुभद्राकुमारी चौहान)

(९) लावनी—इसके प्रत्येक चरण में १३ और ९ के विराम से २२ मात्राएँ होती हैं । जैसेः—

उन सीता को, निज मूर्ति मती माया को,
प्रणयप्राणा को और कान्तकाया को ।
यों देख रहे थे राम अटल अनुरागी,
योगी के आगे अलख ज्योति ज्यों जागी ।

—(मैथिलीशरण गुप्त)

(१०) वीर (आल्हा)—सोलह और पन्द्रह के विराम से इसके प्रत्येक चरण में ३१ मात्राएँ होती हैं; चरणान्त में गुरु लघु रहता है। जैसेः—

मानस की फेनिल लहरों पर किस छवि की किरणें अज्ञात।
स्वर्ण वर्ण में लिखतीं अविदित तारक लोकों की शुचि बात॥
अलि ! किन जन्मों की सिंचित-सुधि बजा सुप्त तंत्री के तार।
नयन-नलिन में बँधी मधुप-सी करती मर्म मधुर गुञ्जार॥

—(सुमित्रानन्दन पंत)

(११) मराल—इसका प्रत्येक चरण शृङ्गार छन्द के एक चरण का दूना होता है। जैसेः—

हिमालय के आँगन में उसे, प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया, और पहनाया हीरक-हार॥
जगे हम लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम तम-पुंज हुआ तब नाश, अखिल संसृति हो उठी अशोक॥

—(जयशंकर प्रसाद)

(१२) वंशस्थविलम्—इसके प्रत्येक चरण में 'जत जर' के क्रम से १२ वर्ण होते हैं। जैसेः—

मुकुन्द चाहे यदुवंश के बने।
रहें सदा वा वे गोपवंश के॥
न तो सकेंगे ब्रज-भूमि भूलि वे।
न भूलिने देगी ब्रज-मेदिनी उन्हें॥ —(हरिऔध)

अभ्यास

१—काव्य किसे कहते हैं ? गद्य और पद्य काव्य क्या हैं ? पद्य और कविता में क्या भेद है ?

२—गुरु, लघु और गणों से तुम क्या समझते हो ?

३—मात्रिक छन्द और वर्णिक छन्द में क्या अन्तर है ?

४—हरिगीतिका, सोरठा, भुजङ्गप्रयात, घनाक्षरी और दुर्मिल सवैया के विषय में तुम क्या जानते हो ?

५—सब रसों के नाम लिखो। वीर रस और शृङ्गार रस के उदाहरण दो।

६—भाव से तुम क्या समझते हो ? भाव और रस में क्या अन्तर है ?

७—शब्दालंकार और अर्थालंकार में क्या भेद है ?

८—उपमा को खूब समझा कर परिभाषा करो और उसके भेद भी बताओ।

९—उपमा और रूपक में क्या अन्तर है ?

१०—अनुप्रास क्या है ? उदाहरण देकर समझाओ।

११—यमक, वक्रोक्ति, श्लेष और अत्युक्ति से तुम क्या समझते हो ? प्रत्येक की सोदाहरण परिभाषा लिखो।

१२—नीचे लिखे अवतरणों में कौन-कौन अलंकार हैं ?

(क) ऊँचे घोर मन्दिर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मन्दिर के अन्दर रहाती हैं।

कन्द मूल भोग करें, कन्द मूल भोग करैं,
तीन बेर खाती ते वे तीन बेर खाती हैं॥

भूषण शिथिल अंग, भूषण शिथिल अंग,
नगन जड़ाती ते वे नगन जड़ाती हैं।

भूषन भनत शिवराज वीर तेरे त्रास,
बिजन डुलाती ते वे बिजन डुलाती हैं॥

(ख) पूत कपूत तो क्यों धन संचय।
पूत सपूत तो क्यों धन संचय॥

(ग) "मैं सुकुमारि ! नाथ बन जोगू !
तुमहि उचित तप मोकहँ भोगू !"
प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाषी ।
चले हृदय पद-पंकज राखी ॥

काव्य के गुण

रस की वृद्धि करनेवाले धर्म को 'गुण' कहते हैं। गुण के तीन भेद हैं:—

(१) माधुर्य्य, (२) ओज, (३) प्रसाद।

(१) माधुर्य्य—जिस काव्य को श्रवण कर चित्त द्रवीभूत हो जाय, वहाँ 'माधुर्य्य गुण' होता है।

(२) ओज—जिस काव्य को सुनकर चित्त में उत्तेजना, वीरता और साहस बढ़े, वहाँ 'ओज गुण' होता है।

(३) प्रसाद—जिस काव्य को सुनते ही उसके अर्थ का ज्ञान हो जाय, वहाँ 'प्रसाद गुण' होता है।

अभ्यास

१—काव्य के गुण कै हैं ? प्रत्येक के सम्बन्ध में क्या जानते हो ?

२—नीचे लिखे पद्यों में गुण बताओः—

(क) यहाँ कुम्हड़ बतियाँ कोउ नाहीं।
जो तर्जनी देखि मरि जाहीं ॥

(ख) रहिमन वे नर मर चुके, जो कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसति नाहिं ॥

समस्या की पूर्त्ति करना

समस्या-पूर्त्ति करना भी रचना के लिए एक आवश्यक अङ्ग है, क्योंकि विद्यार्थियों को प्रायः कवि-सम्मेलन आदि में भाग लेना पड़ता है। कभी उनकी रुचि स्वयं निर्मित्त कविता की ओर भी जाती है। ऐसी दशा में उनको समस्याएँ-पूर्त्ति करना अति आवश्यक है। उनके ज्ञान के लिए हम कतिपय उदाहरण समस्या-पूर्त्ति करके बतलाते हैं ताकि इनके परिज्ञान से समस्या पूर्त्ति करने का चाव उत्पन्न हो जाय।

उदाहरण १—

समस्या—"किहि कारण गारत भारत भा ?"

शूरनि की अरु वीरन की, सामन्थनि की कुन्डला बहुधा।
पृथीराज से नृप महीपति हैं, जिनिकौ तपतेज अकथ्य महा॥
इत धीर धनुर्धर पांडव के सुत बाण गहैं कर पुत्र सभा।
पुनि कृश्न सहाउ दोऊ दल के, जिहि कारण गारत भारत भा॥

उदाहरण २—"डरति डूबिवे ते याते पाछे ही पलटि जात।"

रैन अँधियारी घटा अति धुँधियारी छटा,
नभ में पसारी चहुँदिशा में चमकि जात।
जन्मे ब्रज बिहारी हर्ष भयौ अति भारी,
मात जाय वारी वारी बेड़ो हथकड़ी खिसक जात॥
कंस भय भारी द्वारी खोलिकें किवारी,
बहुरि पुत्र लै पधारे तट यमुना के पहुँच जात।
घर घरास नीर छुटौ धीर बसुदेव जी,
यों डरति डूबिवे ते याते पाछे ही पलटि जात॥

अभ्यास

१—'डरति डूबिवे ते याते पाछे ही पलटि जात।' इस समस्या की शृङ्गार-रस में पूर्त्ति कीजिए।

२—'कोऊ काऊ में मगन, कोऊ काऊ में मगन है'। समस्या की पूर्त्ति कीजिए।

३—'भजत जात चन्द्र और फणिन्द्र परौ पाछें ते।' समस्या की पूर्त्ति कीजिए।

परिशिष्ट

नवां अध्याय

(क) गद्य का आविर्भाव, विकास एवं प्रसार

हिन्दी में गद्य के चिह्न सं० १२०० तक खोज सकते हैं। अन्य भाषाओं के समान हिन्दी में भी गद्य का आविर्भाव पद्य के बाद ही हुआ। आरम्भ में हिन्दी गद्य भी बड़ी ही अव्यवस्थित तथा खिचड़ी रूप थी।

सर्वप्रथम हिन्दी का रूप हमें "दान-पत्रों" तथा वैष्णवों की वार्त्ताओं से मिलता है। गद्य के विकास में उसका क्रमिक रूप तथा आविर्भाव सं० १८०० के लगभग मिलते हैं। गद्य के विकास के अध्ययन तथा उसके क्रमिक रूप को अनेक भागों में विभाजित कर दिया है—

१—आविर्भाव-काल—१८०० से १९२५ तक।
२—भारतेन्दु-काल—१९२५ से १९५५ तक।
३—द्विवेदी-काल—१९५५ से १९८२ तक।
४—आधुनिक-काल—१९८२ से अब तक।

(१) आविर्भाव-काल

इस काल में हिन्दी-गद्य ने जन्म धारण किया तथा अपने स्वरूप को निश्चित किया। इस आविर्भाव के युग में राजा लक्ष्मणसिंह, राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द, लल्लूसिंह तथा इंशाअल्लाखाँ ने हिन्दी का श्रीगणेश किया।

इस समय में ग्रंथों की रचना अधिक न हो सकी, किन्तु फिर भी जो लिखा गया, उसका ऐतिहासिक महत्त्व है। हिन्दी

गद्य के जन्म में सदा सुखलाल, सदलमिश्र, लल्लूसिंह के नाम सदैव स्मरणीय रहेंगे।

हिन्दी गद्य का जन्म होगया। अब उसमें परिष्कार तथा सुधार का प्रश्न आया। स्वामी दयानन्द के प्रचार ने हिन्दी को देश-व्यापी गौरव प्रदान किया। आगे फिर उसका शुद्धीकरण भारतेन्दु जी ने अपने युग में किया।

(२) भारतेन्दु-काल

आविर्भाव-काल में गद्य के कई रूप होगए थे। शिवप्रसाद का उर्दू-बहुला, लक्ष्मणसिंह जी का संस्कृत-बहुला तथा लल्लू जी का प्रारम्भिक रूप। भारतेन्दु जी ने इन सब रूपों में संशोधन किया तथा उसे खड़ी बोली का रूप दिया। इस कार्य में भारतेन्दु के सहायकों ने अत्यधिक सहायता की। पंडित प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनाथ चौधरी, प्रेमघन, श्री निवास-दास, तोताराम बी० ए० आदि-आदि ने हिन्दी के विकास में सहायता की।

भारतेन्दु जी ने हिन्दी का बहुत उपकार किया, पत्र पत्रि-काओं का संपादन किया। अनेक नाटकों का अनुवाद कराया तथा किया, यहाँ तक कि उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति भी चल पड़ी थी। नाटक तो कई एक अनूदित हो चुके थे तथा खेले और लिखे भी जा चुके थे।

(३) द्विवेदी-काल

गद्य की प्रतिष्ठा इस युग में स्थापित हो चुकी थी। किन्तु शैली का निर्णय अभी तक नहीं हो पाया था। अनेक शैलियों के कारण अवस्था बड़ी अस्थिर एवं अव्यवस्थित थी। इसी समय श्रीयुत महावीरप्रसाद जी द्विवेदी का जन्म हुआ। उन्होंने

इस कार्य को निभाया। भाषा में व्याकरण संबंधी भूलें रहतीं थीं, वह दूर होने लगीं। यही नहीं, द्विवेदी जी ने सरस्वती के सम्पादन-काल में अपना सब समय हिन्दी-गद्य के सुधार में ही लगा दिया।

हिन्दी-गद्य अभी तक विवेचनात्मक तथा गम्भीर विषयों के योग्य नहीं बन पाया था। द्विवेदी जी ने उसे इस योग्य बनाया तथा गद्य की शक्ति में विकास होने लगा।

अनुवाद हुए मौलिक कहानियाँ, उपन्यास तथा नाटक-निबन्ध लिखे जाने लगे। पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से इस कार्य में और भी प्रगति हुई। इस काल के धुरन्धर लेखक द्विवेदी, माधवप्रसाद मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, श्यामसुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल तथा गोपालराय गहमरी आदि लेखकों ने हिन्दी-गद्य के उत्पादन में अभिन्न योग दिया।

आधुनिक-काल में हिन्दी को और भी दृढ़ तथा चतुर्मुखी बनाने का प्रयत्न हो रहा है। अनेक भाषाओं के शब्दों को मिलाया जा रहा है तथा उसका रूप संस्कृत-गर्भित किया जा रहा है। प्रेमचन्द्र, बदरीनाथ, वृन्दावनलाल, सुदर्शन, रायकृष्णदास, श्रीराम शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, गुलाबराय, भगवतीचरण वर्मा आदि इस काल में नये लेखकों ने हिन्दी में सहयोग दिया। आज हिन्दी देश की राष्ट्र भाषा है।

इस प्रकार हम क्रमिक रूप से देखते हैं कि प्रथम काल में गद्य का जन्म हुआ, द्वितीय काल में उसका स्वरूप स्थिर हुआ, उसके शरीर को गठन हुई और तृतीय काल में, उसमें शुद्धि हुई और चतुर्थ काल में उसके पुष्ट शरीर में जो कि जन्म से महत्त्वाकांक्षी था, सौन्दर्य की अभिवृद्धि हुई।

आज देश में राज-भाषा बनकर हिन्दी अपना महत्त्व

प्रदर्शित कर रही है; परंतु दुःख है कि हिन्दी के भक्त, हिन्दी-सेवी, भूखे ही सो जाया करते हैं।

हिन्दी भाषा का क्रमिक विकास

वर्तमान एवं प्राचीन हिंदी भाषा का सम्बन्ध संस्कृत और उसके वर्ग का भाषाओं से है। वैदिक काल में वैदिक भाषा का प्रयोग होता था, जिसमें ऋग्वेद आदि की ऋचायें लिखी गई हैं। वेदों की भाषा को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि इसके पूर्व भी भाषा का कोई रूप अवश्य रहा होगा, परन्तु वह भाषा मौखिक ही रही, क्योंकि उसका कोई लिखित प्रमाण हमारे सामने नहीं है। वैदिक काल के पूर्व भाषा के होने का अनुमान इसलिए करना पड़ता है कि वैदिक-काल की भाषा बहुत ही ठोस है। इसके पूर्व मौखिक रूप में वह भाषा अवश्य विस्तृत रूप में व्यवहृत होती रही होगी। इसके पश्चात् ऋषि-मुनियों ने वैदिक भाषा का परिष्कार किया और उसे व्याकरण के नियमों से जकड़ा। व्याकरण के कठोर नियंत्रण में पड़ कर उसका स्वाभाविक प्रवाह बन्द होगया और उसी परिष्कृत भाषा में विद्वान् लोग अपनी रचना करने लगे। यहाँ भाषा संस्कृत के नाम से प्रसिद्ध हुई, जो आज भी संसार के कोने-कोने में पहुँची हुई है। व्याकरण के नियमों में जकड़ जाने के पश्चात् वैदिक भाषा का स्वाभाविक प्रवाह एक दूसरी ओर से मुड़कर, साधारण जन-सम्पर्क में रहकर, बोल-चाल के रूप में आगे बढ़ता रहा। यह रूप प्राकृत के नाम से प्रसिद्ध है। इसके कई रूप हैं। इसका भी प्रचुर साहित्य है। संस्कृत के प्रसिद्ध नाटक 'मृच्छकटिक' में प्राकृत भाषा के कई नमूने मिलते हैं। प्राकृत के पश्चात् इसी का विकृत रूप 'पाली' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पाली भी प्राकृत का एक स्वरूप है। इसका भी

साहित्य बहुत विस्तृत है। समस्त बौद्ध एवं जैन-धर्म के ग्रन्थ प्रायः पाली भाषा ही में लिखे गये हैं। इसके बाद प्राकृत के अपभ्रंशों का युग आया और इन्हीं अपभ्रंशों से हमारी हिन्दी का साक्षात् सम्बन्ध है। शौरसेनी, मागधी तथा अर्द्ध-मागधी के अपभ्रंशों से ही हिंदी भाषा का सम्बन्ध है। अप-भ्रंश भाषाओं की परम्परा विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी तक चलती रही और पन्द्रहवीं शताब्दी में हिन्दी का स्वरूप स्पष्ट हो चला था। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि हिन्दी तथा अपभ्रंश का क्या सम्बन्ध है? अपभ्रंश भाषा बहुत काल तक साधारण बोल-चाल की भाषा रही है। बौद्ध एवं जैन-धर्म के बहुत-से उपदेश अपभ्रंश में मिलते हैं, क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि बौद्ध तथा जैन लोग अपने उपदेशों के लिए साधारण बोल-चाल की भाषा को अधिक उपयुक्त समझते थे। आगे चलकर विद्वानों ने अपभ्रंश को भी व्याकरण से नियंत्रित कर दिया। भाषा का विकास व्याकरण के नियमों में बँध जाने के कारण रुक जाता है। परन्तु अपभ्रंश का स्वाभाविक रूप बोल-चाल के रूप में आगे बढ़ता रहा। अपभ्रंश के नागर, उपनागर, ब्राचड तीन रूप हमारे सामने आते हैं। इस नागर अपभ्रंश से राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति हुई जिसमें १०९ बोलियाँ और भाषाएँ हैं। उसका साहित्य भी प्रचुर परिमाण में प्राप्त है। शौरसेनी प्राकृत के अपभ्रंश से ब्रज-भाषा तथा पश्चिमी हिन्दी खड़ी बोली का विकास हुआ। ब्रज-भाषा साहित्य से तो सभी परीचित ही हैं। खड़ी बोली अभी सामने ही है। अर्द्ध-मागधी प्राकृत के अपभ्रंश से पूर्वी हिन्दी, अवधी, भोजपुरी आदि का विकास हुआ। अवधी का साहित्य भी अपना विशेष स्थान रखता है। ऊपर खड़ी बोली का नाम आया है। साहित्य के आधुनिक युग में इसी भाषा की प्रधानता रही है और इस वर्त-

मान युग में तो इसी का एकछत्र राज्य है। अतः इसके विकास को भी संक्षेप में समझ लेना चाहिए।

यह खड़ी बोली दिल्ली और मेरठ के आस-पास की बोल-चाल की भाषा है। जब भारतवर्ष पर मुसलमानों के आक्रमण हुए उस समय इसी क्षेत्र में हिन्दुओं का मुसलमानों के साथ सम्पर्क हुआ। इस सम्पर्क के अवसर में यहीं की बोली का प्रभाव उनके ऊपर पड़ा। कालान्तर में वे यहाँ के शासक हुए। उतने अन्तराल में खड़ी बोली पर उनकी भाषा की शब्दावलियों का प्रभाव पड़ा और उसका एक रूप मुसलमानी जामा पहन कर नये आकार-प्रकार में खड़ा हुआ। उर्दू नाम से इसका नामकरण हुआ। भाषा विज्ञान की दृष्टि से यदि विचार किया जाय, तो उर्दू कोई दूसरी अलग भाषा नहीं है। वह खड़ी बोली का ही रूपान्तर है। किसी भाषा की पहचान उसके क्रिया पद, सर्वनाम तथा कारक-चिह्न से होती है। उर्दू में ये सभी बातें खड़ी बोली ही की हैं। प्रारम्भ में कुछ शब्दावलियों तथा वाक्य-विन्यास को छोड़ कर खड़ी बोली और उर्दू में कोई मौलिक भेद नहीं था। यह तो बाद में उर्दू को बिगाड़ कर उसके हिमायतियों ने उसे अपने असली रूप से अलग कर दिया। अरबी, फ़ारसी तथा तुर्की भाषा के शब्दों से उसे बोझिल कर दिया और धीरे-धीरे फ़ारसी व्याकरण का बनावटी रूप भी उसे दिया गया। आजकल की उर्दू से यदि सर्वनाम, क्रिया पद तथा कारक-चिह्न निकाल लें, तो शुद्ध फ़ारसी तथा अरबी की शब्दावलियाँ शेष रह जाती हैं। इसका भी साहित्य है, परन्तु अपने असली रूप में नहीं।

राजकीय प्रोत्साहन न मिलने के कारण खड़ी बोली असली रूप में वहीं पड़ी रही। जब मुसलमानों के आक्रमण

से पीड़ित होकर दिल्ली तथा मेरठ के आस-पास के अग्रवाले, खत्री तथा अन्य व्यापारिक जातियाँ भाग करके पूर्व की ओर आईं और प्रयाग, काशी, पटना, मुर्शिदाबाद आदि नगरों में बस गईं; तब उनके साथ खड़ी बोली भी लगी रही और धीरे-धीरे उनके घरों से निकलकर बाज़ारों और साधारण जनता में आने लगी। अपनी सरलता तथा सुबोधता के कारण बहुत जल्दी ही इसका प्रसार होने लगा और राजकीय प्रतिरोध के होते हुए भी साधारण जनता ने इसे अपनाया। आगे चलकर इस भाषा का पूर्ण विकास हुआ और इसका अपना साहित्य खड़ा हुआ। अब सन् १९४७ को भारत स्वतंत्र हो गया है। अब देश की राष्ट्र-भाषा हिन्दी है। आजकल जितने नवयुवक कवि-कवियित्री, लेखक-लेखिकाएँ हैं, वे सब खड़ी बोली को ही अपना रहे हैं। आजकल हिन्दी भाषा की पर्याप्त उन्नति हो रही है। राजकीय कारोबार भी हिन्दी में ही अधिकांश होने लगे हैं। आगे चलकर हिन्दी का भविष्य और भी उज्ज्वल हो जायगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि यही उपर्युक्त भाषाएँ राजस्थानी, ब्रज-भाषा, अवधी तथा खड़ी बोली प्रधान हैं, जिनका साहित्य हिन्दी भाषा का साहित्य है। अब हिन्दी के पुराने साहित्य का अध्ययन करने के लिए ब्रज-भाषा और अवधी का कुछ ज्ञान होना आवश्यक है। इसी दृष्टि से उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है।

ध्वनियाँ

ब्रज और अवधी बोलियों में श, ष के स्थान पर स का प्रयोग होता है। जहाँ ष मिलता भी है, तो वह ख का उच्चारण देता है; जैसे, लषण=लखन। ण का भी उच्चारण न होता

था। जहाँ हिन्दुस्तानी में ड़ और ल आते हैं, वहाँ ब्रज और अवधी में बहुधा र पाया जाता है; जैसे, किवाड़=अवधी केवारा, दुर्बल=अवधी दूबर। शब्द के आदि के य का उच्चारण सदा ज होता था और बहुधा ज लिखा भी जाता था; जैसे, खड़ी बोली हिन्दी यमुना=ब्रज जमुना।

संयुक्त व्यंजनों का इन बोलियों में बहुत कम प्रयोग मिलता है। ऐसे स्थानों पर बहुधा अकार या इकार आकर दोनों व्यंजनों को अलग कर देता है; जैसे, धर्म=धरम, यत्न=जतन। क्ष के स्थान पर छ या ख होता था; जैसे, रक्षा=रच्छा, अक्षि=आँख। ज्ञ का उच्चारण ग्या, ग्यँ होता था। कहीं-कहीं ग्य, ग्यँ लिखा भी मिलता है; जैसे, ज्ञान=ग्यान।

संज्ञा

ब्रज और अवधी में कारक-चिह्न के विषय में खड़ी बोली से बड़ा अन्तर है। कारक-चिह्नों का प्रयोग पुरानी भाषा में कम मिलता है।

कर्त्ता—'ने' यह चिह्न इन बोलियों में प्रायः नहीं पाया जाता। कर्त्ता सर्वत्र बिना चिह्न के रहता है।

कर्म—इस कारक का चिह्न ब्रज में 'कू' 'कौ' पाया जाता है और अवधी में 'क' 'कहँ'।

करण—इसका चिह्न इन बोलियों में 'से' के अलावा 'ते' 'सों' भी है।

सम्प्रदान—इसके चिह्न वे ही हैं जो कर्म के।

अपादान—वही चिह्न जो करण के।

सम्बन्ध—इस कारक के चिह्न अवधी में बहुधा 'का', 'की', 'के' के अतिरिक्त 'कर', 'करि', और 'केरा', 'केरी', 'केरे' भी हैं तथा ब्रज में 'कौ' (पु०), कै हैं।

अधिकरण—अवधी में 'में' के स्थान पर 'माँ', 'माँहि' और 'महँ' और 'माँझ' पाए जाते हैं; ब्रज में 'मैं' मिलता है। संज्ञा में एकवचन के लिए बहुधा कारक-चिह्नों के लिए कुछ विकार नहीं होता; जैसे, खड़ी बोली घोड़े का, अवधी घोड़ा केर। पर एक प्रत्यय हि (हिं) बहुधा संज्ञा के साथ लगाया जाता है और विशेषकर कर्म-सम्प्रदानकारक का अर्थ बतलाता है, तथा अन्य कारकों के अर्थ में भी यह आता है; जैसे, रामहि, भरतहि आदि। इसके साथ कारक-चिह्न नहीं लगता। बहुवचन में खड़ी बोली—ओं (घोड़ों, लड़कों) के स्थान पर ब्रज और अवधी में न (घोड़न, लरिकन), न्ह (घोड़न्ह, लरिकन्ह) नि (घोड़नि, लरिकनि), न्हि (घोड़न्हि, लड़िकन्हि) मिलते हैं।

खड़ी बोली व अवधी आकारांत संज्ञाओं के स्थान पर ब्रज में ओकारांत रूप मिलते हैं (खड़ी बोली सारा, ब्रज सारो)।

सर्वनाम

सर्वनाम में भी खड़ी बोली से बहुत अंशों में इन दोनों बोलियों में विभिन्नता है।

उत्तम पुरुष में 'मैं' के स्थान पर 'हौं' भी प्रयोग में आता है और 'मुझ' के स्थान पर 'मो' या 'मोहिं' ही मिलता है। 'मेरा' के स्थान पर 'मोरा' (अवधी) में और 'मेरो' ब्रज में। 'हमारा' के स्थान पर 'हमार' (अवधी) में और 'हमारो' (ब्रज) में। मध्यम पुरुष में 'तू' के स्थान पर 'तैं', 'तुझ' के स्थान पर 'तो', 'तोहि' और 'तेरो', 'तिहारो' (ब्रज) पाए जाते हैं। इसी प्रकार 'तेरा' के स्थान पर 'तोर' (अवधी) 'तेरो' (ब्रज)और 'तुम्हारा' के स्थान पर 'तुम्हार' (अवधी) और 'तुम्हारो' (ब्रज) है।

'यह' के स्थान पर 'एहु', 'यहु' और 'इस' के स्थान पर 'या' तथा 'वह' के स्थान पर 'वो', 'ओ', 'सो', और उस के स्थान

पर 'वा', 'वाहि' पाए जाते हैं। बहुवचन में 'ते' और 'तिन' होते हैं।

'आप' (निजवाचक) के स्थान पर कर्त्ता में 'आपु', कर्म में 'आपुहि' और सम्बन्ध में 'आपुन', तथा 'आप' (आदरार्थक) के स्थान पर (अवधी) सम्बन्धकारक में 'राउर, रावरा' (खड़ी बोली) 'आपका' का प्रयोग करती है।

'जो' का बहुवचन 'जे', तथा 'जिस' के स्थान पर 'जेहि', 'जा', और सम्बन्ध में 'जासु', 'जिसु' (बिना कारक-चिह्न के) दोनों बोलियों में आते हैं।

'कौन' के स्थान पर दोनो बोलियों में 'को,' और 'किस' के स्थान पर 'का' या 'केहि' का प्रयोग होता है।

'कोई' की जगह 'कोउ' और 'किसी' की जगह 'काहू' दोनों बोलियों में मिलता है। 'कुछ' के स्थान पर 'किछु' और 'कछु' रूप भी पाए जाते हैं।

क्रिया

क्रिया में भी काफ़ी अन्तर है।

सामान्य वर्त्तमान का प्रयोग वर्त्तमान की तरह होता है, सम्भाव्य भविष्य की तरह नहीं। प्रत्ययों में भी अन्तर है। मध्यम एक० में—सि (देखसि), मध्यम बहु० में अउ, अहु (देखउ, देखहु), अन्य पु० एक० में—अहि, अइ (देखहि, देखइ) और बहु० में अहिं, अइँ (देखहिं, देखइँ) प्रत्यय होते हैं। सामान्यभूत में ब्रज में—ओ, (पुल्लिङ्ग, एकवचन), ई (स्त्रीलिंङ्ग, एकवचन) और—ए (पुल्लिङ्ग बहुवचन), ई (स्त्री० बहु०) और अवधी में—आ, ई,—ए—ईं प्रत्यय होते हैं। इसके अतिरिक्त उत्तम एक० में—एउँ,—इउँ, बहु० में एन्ह,—इन्ह, मध्यम बहु० में—एहु,—इहु प्रत्यय पुल्लिङ्ग व स्त्रीलिंग में क्रम से लगते हैं।

सामान्य भविष्यत् में व्रज में—

उत्तम पु०	इहौं	इहैं
मध्यम पु०	इहै	इहौ
अन्य पु०	इहै	इहैं

प्रत्यय होते हैं, इनमें लिंग का भेद नहीं होता। अवधी में भी ये रूप पाये जाते हैं तथा पुल्लिग में—अब (देखब) और स्त्रीलिङ्ग में—अबि (देखबि) रूप खूब प्रयोग में आते हैं। इनमें पुरुष का भेद नहीं होता।

गा, गी, गे वाले रूप अवधी में बहुत कम मिलते हैं। व्रज में कभी-कभी मिलते हैं पर गा के स्थान पर गो प्रत्यय होता है।

वर्त्तमान-कालिक कृदन्त अवधी में—त—तु (पु०)—वि (स्त्री०) और व्रज में भी ये ही हैं। भूतकालिक कृदन्त अवधी में—अ, और व्रज में—यौ (देख्यौ) होता है। अवधी में आकारान्त धातुओं का भूतकालिक रूप—वा (आवा, खावा) आदि एकवचन पुल्लिङ्ग में होता है। पूर्वकालिक क्रिया दोनों में—इ, कइ (देखिकइ) होती है। क्रियार्थक संज्ञा का कर्त्ता में—न (देखन) और—व (देखव) और कारक-चिह्नों के साथ—अइ (देखइ) होता है। कर्तृवाचक संज्ञा—न वाली क्रियार्थक संज्ञा के साथ—हार जोड़ कर बनती है (देखनहार)।

मुख्य सहायक क्रिया के रूप अहउँ, अहइँ, अहइ, अहउ, अहँइ, अहइँ वर्त्तमान में अवधी में पाए जाते हैं। इसके अलावा हइ आदि रूप भी मिलते हैं। व्रज के रूप खड़ी बोली से मिलते-जुलते हैं।

भूतकाल में व्रज में हुतो, हतो (पु० एक०), हुती, हती (स्त्री० एक०), हुते, हते (पु० बहु०), हुती, हती (स्त्री० बहु०) ये रूप होते हैं। अवधी में (उत्तम० एक०) रहेउँ, रहिउँ, (उत्तम० बहु०) रहेन, रहिन, (मध्यम० एक०) रहइ, (मध्यम बहु०) रहेउ,

रहिउ, (अन्य० एक०), रहइ, (अन्य० बहु०), रहँइ रूप पुल्लिंग में क्रम से होते हैं।

भविष्यत् में व्रज में हो—में प्रत्यय जोड़कर (हुइहौं आदि) और अवधी में रह—में प्रत्यय जोड़कर (रहिहउँ, रहब आदि) रूप बनते हैं।

संयुक्त क्रियाएँ उन्हीं नियमों से बनती हैं जो ऊपर हिन्दी के लिए दिए गए हैं। पुराने साहित्य में, विशेषकर अवधी में, सकर्मक क्रिया बहुधा लिंग व वचन में कर्म के अनुकूल होती है; जैसे, सीता मैं देखी, सहिउँ मैं पीरा आदि।

अव्यय

अव्ययों में भी इन दोनों बोलियों में बहुत भेद रहता है; जैसे, हिन्दी यहाँ, अवधी इहाँ; हिन्दी कहाँ अवधी कहाँ, कहवाँ आदि।

(ख) कुछ प्रमुख कवियों की भाषा-शैली

१—कबीर की भाषा-शैली

कबीर में सत्कवि होने की प्रतिभा तो थी, किन्तु उस प्रतिभा को साहित्य-अध्ययन से परिष्कृत होने का अवसर नहीं मिला था। इसलिए वह अपने स्वाभाविक रूप में जितना भी कार्य कर सकती थी, करती रही। यही कारण है कि उनकी रचना में अध्ययन आदि से उत्पन्न होनेवाला सत्काव्य-गुण यथेष्ट मात्रा में नहीं मिलता। इनकी भाषा तत्कालीन विविध बोलियों से युक्त जड़, असम्बद्ध और रूखी है।

रचना-शैली भी साहित्यिक क्षमता नहीं रखती। उन्होंने ग्रामीण छन्दों और रागों का जैसे—साखी, रमैनी, चाँचर, हिन्डोला का उपयोग किया है। भाषा में सधुक्कड़ी प्रभाव है। छन्द भी बहुत कुछ नियमानुकूल नहीं हैं। इसमें सन्देह नहीं

कि इनकी रचना में काव्योचित व्यंजकता, गूढ़ता और वास्तविकता है।

२—जायसी

अवधी भाषा के तत्कालीन ठेठ रूप का प्रयोग प्रथम जायसी ने किया और उसे काव्य के क्षेत्र में लाने का प्रयत्न किया। तत्पश्चात् तुलसीदास ने इसी अवधी भाषा को परिष्कृत और परिमार्जित कर काव्योचित सौष्ठव देते हुए साहित्यिक भाषा बना दिया। जायसी की भाषा में ग्रामीणता का पूरा प्रभाव है, साथ ही फ़ारसी और अ़रबी के शब्द भी आए हैं। रचना-शैली पर फ़ारसी की मसनवी-शैली का प्रभाव है। समस्त रचना चौपाई और दोहों में है। छन्दशास्त्र की दृष्टि से इनमें स्थान-स्थान पर दोष मिलते हैं। इनके वाक्यों में अन्योक्ति, उपमा और रूपक अलङ्कारों की विशेष प्रधानता है। उत्प्रेक्षाएँ भी सुन्दर हैं। यत्र-तत्र दृष्टान्त और उदाहरण भी अच्छे हैं। भाव-व्यंजना और रस-परिपाक भी सराहनीय है, यद्यपि कहीं-कहीं शृङ्गार में फ़ारसी-प्रभाव से कुछ वीभत्स की-सी झलक है।

३—सूरदास

सूर की भाषा ब्रज-भाषा है, जिसमें माधुर्य, मार्दव, प्रसाद और लालित्य के गुण कूट-कूट कर भरे हैं। भाषा संयत और परिष्कृत है; जिसमें व्यंजकता भी बहुत है। वर्णन में स्वाभावोक्ति का ही प्राधान्य है। शैली आपकी गीत-काव्य सम्बन्धी पद-शैली है।

४—तुलसी

तुलसी की भाषा साहित्यिक अवधी है, इन्होंने अवधी को परिष्कृत और परिमार्जित कर ब्रज-भाषा के ही समान उच्च

कोटि की काव्य-भाषा के रूप में कर दिया। इनकी भाषा में प्रसाद और माधुर्य गुणों के साथ ही लालित्य और अर्थ-गौरव भी बहुत अधिक और सराहनीय है। भाषा भाव-भावना व्यंजक और रुचि-रसरंजक है। तुलसीदास ने अपने समय की प्रायः सभी प्रमुख रचना-शैलियों में सरल और सुन्दर रचनाएँ की हैं। भाषा में काव्य-कला-कौशल के प्रायः सभी साज समान हैं।

५—केशवदास

केशवदास की भाषा संस्कृत-गर्भित है। उनकी ज्ञान-मंडित ब्रज-भाषा में बुन्देलखंडी का पुट है। लेकिन कहीं-कहीं केशव ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का ही प्रयोग किया है। शब्दों के तोड़ने-मरोड़ने की स्वतंत्रता केशव ने बहुत कम ली है। केशव ने संस्कृत काव्य-शैली का अनुकरण किया है। उन्होंने प्रायः संस्कृत के सभी प्रचलित छन्दों का प्रयोग किया है। कवित्त, सवैया तथा दोहा-वृत्तों में भी उन्होंने कविता लिखी है।

६—बिहारीलाल

बिहारी की भाषा ब्रज है, परन्तु कहीं-कहीं उसमें बुन्देल-खंडी और उर्दू, फ़ारसी आदि शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। शब्दों के तोड़-मरोड़ की परिपाटी से बिहारी भी मुक्त नहीं हैं। उनकी काव्य-शैली दोहों की है। दो-चार सोरठे भी आगए हैं।

शब्दों की गढ़न, भाषा का गठन, भावों की सूक्ष्मता जैसी बिहारी के दोहों में है, वैसी अन्यत्र नहीं पाई जाती। बिहारी मुख्यतः शृङ्गारी कवि हैं, पर आपने शांत-रस और नीति के दोहे भी लिखे हैं।

७—सेनापति

सेनापति की भाषा ब्रज-भाषा ही है। हाँ, यत्र-तत्र संस्कृत तथा कुछ अन्य भाषा के शब्द एवं पद आ गये हैं। इसी से काव्य में माधुर्य और प्रसादगुण प्रधान होगये हैं। इन्होंने केवल घनाक्षरी या कवित्त में ही अपनी सारी रचना की है।

८—देव

देव ने प्रायः सभी प्रधान शैलियों के आधार पर रचनाएँ की हैं। संगीत और पिंगलशास्त्र का भी इनको अच्छा ज्ञान था। ये कवि और आचार्य दोनों थे। नीति-काव्य भी देव ने लिखा है और दोहात्मक सतसई-शैली में भी रचना की है। इनकी भाषा परिपक्व, प्रौढ़ और सुव्यवस्थित ब्रज-भाषा है।

९—भूषण

भूषण की भाषा ब्रज-भाषा तो है, किन्तु उस पर बुन्देली और उर्दू का भी प्रभाव है। पात्र-भेद से भूषण ने भाषा-भेद भी अपनी रचनाओं में खूब किया है। बेगमों और मुसलमानों के मुख से उन्होंने तत्कालीन उर्दू-प्रभावित हिन्दी बुलवाई है। भाषा में ओजगुण अच्छी मात्रा में है। वह संयत और भाव-पूर्ण भी है।

भूषण ने विशेषतया कवित्तों में ही रचना की है, क्योंकि कवित्त छंद वीरादि रसों के लिए अधिक उपयुक्त हैं। केवल मुक्तक, कुछ सवैया, दो एक छप्पय मिलते हैं। अलंकारों की परिभाषाओं में अवश्यमेव दोहों का उपयोग किया गया है।

रचनाएँ इनकी सर्वथा समलंकृत हैं। विशेष महत्त्व अर्थालंकारों को ही दिया गया है। शब्दालंकारों का भी अच्छा प्रयोग पाया जाता है।

१०—रसखान

इनकी भाषा चलती तथा सरस है। वह मौलिकता लिये है। इनकी-सी शुद्ध ब्रज-भाषा की सफ़ाई और चलतापन घनानन्द को छोड़ कर अन्यत्र दुर्लभ है। इन्होंने अधिकतर कवित्त और सवैया लिखे हैं। कुछ दोहे भी लिखे हैं। ब्रज-भाषा की रचना सरस तथा प्रभावोत्पादक है।

११—नरोत्तमदास

इनकी भाषा अवधी तथा ब्रज-भाषा है। भाषा परिमार्जित तथा व्यवस्थित है। इनकी रचना में भरती के शब्द और वाक्य नहीं हैं। दोहे, कवित्त तथा सवैयों में रचना की है। इनके भाव सरल हैं। इनकी रचना सरस तथा हृदयग्राही है। इन्होंने अपने भावों को बड़े मार्मिक ढङ्ग से व्यक्त किया है। इनके संवाद केशवदास के समान बड़े सुन्दर बन पड़े हैं। रचना में प्रसाद-गुण है। इन्होंने अलङ्कार-योजना बड़ी निपुणता से की है। अनावश्यक अलंकार नहीं हैं तथा अलङ्कारों से कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आई है।

१२—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

इनकी रचना की भाषा खड़ी बोली और ब्रज-भाषा है। उन्होंने एक नवीन शैली को अपनाया। अप्रचलित शब्दों का वहिष्कार किया। भारतेन्दुजी ने विदेशी शब्दों को देशी बनाया। कर्ण-कटु शब्दों को हिन्दी में लाने के लिए मधुर बनाया। ब्रज-भाषा की दुरूहता को दूर किया और प्रचलित शब्दों द्वारा सुन्दर भाषा बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया। जो शब्द जिस रूप में प्रचलित था, उसी रूप में उसे रखा है। इनकी भाषा में फ़ारसी, अरबी शब्दों के प्रयोग भी हुए हैं। इनकी भाषा में मिठास और स्वाभाविकता है। भरती के शब्द

नहीं हैं। इनकी भाषा सरल, सरस, प्रसादगुण-युक्त तथा सुबोध होती है। मुहावरे और लोकोक्तियों का भी खूब प्रयोग हुआ है।

इनकी शैली परिचयात्मक, भावात्मक, गवेषणात्मक तथा व्यंगात्मक है। वह भाषानुकूल, माधुर्य और ओजगुण-युक्त तथा विषयानुकूल है। व्यक्तित्व की छाया भी इनकी शैली में है।

इन्होंने करुण, वीर, रौद्र, वात्सल्य, वीभत्स, शान्त, शृङ्गार और भयानक रसों का खूब प्रयोग किया है और इनके निर्वाह में पूर्ण सफल भी हुए हैं। इन्होंने अनुप्रास, उपमा, रूपक, श्लेष, यमक, प्रतीप, विभावना आदि अलंकार खूब लिखे हैं।

छन्द-रचना में मनहरण, सवैया, मत्तगयंद, कवित्त, रोला, दोहा, छप्पय आदि छन्दों का प्रचुर प्रयोग किया है। इन्होंने विषयानुकूल छन्दों का प्रयोग किया है।

विशेषता—ये आशुकवि थे। उनकी रचनायें भक्ति-काल, रीति-काल तथा आधुनिक पद्धति की विचारधारा से परिपूर्ण हैं। इनकी रचनाएँ भक्ति प्रधान, शृङ्गार प्रधान, देश-प्रेम प्रधान तथा सामाजिक समस्या प्रधान हैं। इन्होंने प्रकृति-चित्रण पर भी लेखनी उठाई है, परन्तु उस चित्रण में सफल नहीं हुए हैं। हाँ, मानव-प्रकृति-चित्रण में सफलता पाई है। वे राष्ट्रीय परिस्थितियों से भी प्रभावित हुए थे। यही कारण है कि वे अपने देश को किसी भी परिस्थिति में याद रखते हैं। इनकी रचना में नवीनता और प्राचीनता का मिश्रण मिलता है। उन्होंने साहित्य-सेवा में अपना जीवन दे दिया था। भारतेन्दु-युग हिन्दी साहित्य में एक जागरण का युग था। इनकी रचना में शृङ्गार, प्रेम, विरह आदि विषय ही अधिक भरे पड़े हैं। इन्होंने नाटक, इतिहास, काव्य तथा अन्यान्य अंगों की पूर्ति की है।

(ग) कुछ गद्य लेखकों की भाषा-शैली

२—पण्डित माधवप्रसाद मिश्र

आपकी भाषा में तत्सम शब्दों का बाहुल्य है जिसे हम हिन्दी का अत्यन्त परिमार्जित, प्राञ्जल और पुष्ट रूप कह सकते हैं। आपके अधिकांश निबन्ध धार्मिक विचारों से ओत-प्रोत हैं, जिनमें धर्म का वैज्ञानिक रीति से विवेचन किया गया है और साथ ही भारतियों के लिए उद्बोधन भी है। आपकी शैली पाण्डित्य-पूर्ण होते हुए भी सरल और सुबोध है।

२—पं० प्रतापनारायण मिश्र

आपकी भाषा बहुत प्रवाहयुक्त, मुहावरेदार, मनोरंजक और सुबोध है। उसमें ग्रामीणता की भी बहार है। शब्दों का चुनाव बहुत विचित्र है। आपने फ़ारसी और संस्कृत दोनों के ही तत्सम रूपों का प्रयोग किया है। विषय के अनुकूल इनकी शैली भी चलती है।

३—पं० बालकृष्ण भट्ट

इनकी भाषा और शैली दोनों ही निराली थीं। जिस पर इनकी अपनी छाप-सी है। एक ही निबन्ध में संस्कृत-गर्भित, बोल-चाल की सहज उर्दू-मिश्रित तथा मुहावरेदार भाषा का ही प्रायः प्रयोग किया गया है। इनके निबन्धों को प्रायः अँग्रेज़ी लेखों से अनुभूति मिली है। इनकी शैली में ओज, गठन और सुव्यवस्था है। मिश्र जी की शैली के ठीक विपरीतगामिनी इनकी नागरिक शैली है। उसमें पण्डिताऊपन भी है। छोटे-छोटे विषयों पर छोटे-बड़े और मार्मिक लेख इन्होंने अधिक लिखे हैं। भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए यत्र-तत्र अँग्रेज़ी आदि विभाषाओं के शब्द भी ये प्रयोग करते थे, पर भाषा

का चटकीलापन बनाये रखते थे। संस्कृत और हिन्दी के प्राचीन पद्यांशों का उद्धरण भी इनके लेखों की एक विशेषता है। व्यङ्ग्य और विनोद का भी इनके लेखों में अभाव नहीं।

४—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

आपकी भाषा सरल, सुसंगठित, टकसाली और परिमार्जित है। आपकी शैली गम्भीर है, पर दुरूह नहीं। आपकी आलोचना बड़ी खरी और निर्भीक होती थी। द्विवेदी की गद्य-शैली अत्यन्त सु-स्पष्ट है। वे अपने विचार को पाठकों के हृदय में बैठा देना चाहते हैं। वे अपनी भाषा में छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करते हैं, जटिल तथा चक्करदार वाक्यों का नहीं। फिर भी यदि कोई वाक्य उनके भाव को व्यक्त करने में असमर्थ रह जाता है, तो वे उसको कई बार अन्य प्रकार से लिखते हैं, जिससे वह पाठक पर ठीक-ठीक प्रभाव डाल सके। यदि किसी बात पर जोर डालना होता है, तो वे अपने वाक्यों में कई वाक्यांश भी जोड़ देते हैं।

उनकी भाषा प्रांजल तथा सु-स्पष्ट होती है। उनसे पहले भाषा में अनेक त्रुटियाँ मौजूद थीं। द्विवेदी ने व्याकरण के नियमों के पालन करने पर विशेष जोर दिया और उच्छृङ्खल लेखकों की तीव्र आलोचना की। परिणाम यह हुआ कि सब लेखक उनके आदेशानुसार व्याकरण-सम्मत भाषा लिखने लगे। द्विवेदी जी अपनी भाषा में विशेषरूप से सरल शब्दों का प्रयोग करते हैं, परन्तु आवश्यतानुसार वे संस्कृत के शब्दों को भी ले आते हैं। उनकी भाषा उनके भावों के व्यक्त करने में पूर्णतः सफल होती है।

५—श्री प्रेमचन्द्र

आपकी शैली में मुहावरों के कारण स्फूर्त्ति छलकती रहती है। आपकी भाषा प्रायः बोल-चाल की भाषा है, जिसमें

प्रचलित ग्रामीण शब्दों का भी यथेष्ट प्रयोग किया गया है। आपकी भाषा में सभी भाषाओं के प्रचलित शब्दों का मेल है। आपकी शैली पर उर्दू का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। पात्रों के अनुरूप आपकी भाषा बदलती रहती है। आपके उपन्यासों का विषय प्रायः गाँवों में बसा हुआ हिन्दुस्तान और उसके सुख-दुःख हैं। आपकी कहानियों से प्रायः समाज-सुधार की ध्वनि निकलती है।

६—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी

इनकी भाषा अत्यन्त प्राञ्जल, मृदुल, भाव-प्रवण औ साथ ही सुबोध होती है। बँगला के अध्ययन के स्वाभाविक परिणामवश उसमें कुछ संस्कृत की कोमलकान्त समस्त पदावली का भी सन्निवेश हुआ है। संस्कृत के केवल उन्हीं तत्सम शब्दों को द्विवेदी जी ने अपनाया है जो टकसाली हैं। अलङ्कारों की भी प्रचुरता है। भावाभिव्यञ्जन के लिए तद्भव शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। इन सब बातों से शैली अत्यन्त मनोमोहक बन गई है।

७—आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल

शुक्ल जी की भाषा इतनी परिपक्व थी कि उसमें से एक शब्द भी निकाल दिया जाय, तो अर्थ ही पूर्णता भङ्ग हो जायेगा। इसलिए उनकी शैली ठोस और संक्षिप्त है। साथ ही साथ अभिव्यक्ति इतनी सुन्दर है कि समझने में क्लेश भी नहीं होता। आपका व्यंग्य बहुत ही शिष्ट और गूढ़, पर मर्मस्पर्शी होता था। आपकी शैली गम्भीर से गम्भीर शैली के समान क्रोध, उत्साह, करुणा प्रभृति मनोवैज्ञानिक विषयों के बीच में सरिता के सहज प्रवाह के साथ बहती रहती है।

८—सन्त पूर्णसिंह

आपकी भाषा बोल-चाल की खड़ी बोली है । वाक्य छोटे-छोटे किन्तु अत्यन्त ओजपूर्ण हैं । आप बड़े भावुक थे। अतएव आपकी शैली भाव प्रधान है । आपके निबन्ध इतने सरस एवम् भावुकता-पूर्ण हैं कि पाठकों के हृदय पर उनका सीधे प्रभाव पड़ता है । आपके निबन्ध गम्भीर होने पर भी दुरूह नहीं हैं ।

९—श्री गणेशशङ्कर विद्यार्थी

आपकी भाषा शुद्ध हिन्दी है । आपका विषय जीवन-चरित, राजनीति और स्वतन्त्रता ही प्रायः रहा है । उनकी स्वतन्त्र मनोवृत्ति उनकी भाषा में अच्छी तरह व्यक्त हुई है क्योंकि उसमें एक विचित्र अल्हड़पन और प्रौढ़ता है । उनके विचार जिस तरह सुलझे हुए थे उसी तरह उनकी शैली भी सुबोध परन्तु अत्यन्त सबल है । यद्यपि उन्होंने अन्य भाषाओं से भी उधार लेने में संकोच नहीं किया है, तथापि कभी भी अपना व्यक्तित्व नहीं खोया है । उनकी शैली अत्यन्त सजीव है । पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि कोई भाषण दे रहा हो ।

१०—पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

आपकी कहानियों में वार्त्तालाप बहुत सजीव और स्वाभाविक हुआ करता है और आपकी कहानियाँ प्रायः मानव-हृदय के कोमल भावों का स्पर्श करती हैं । आपकी भाषा बहुत चलती हुई है । आपका हास्य अत्यन्त शिष्ट तथा गम्भीर होता है तथा उससे मनोरंजन के अतिरिक्त कुछ और भी प्राप्त होता है ।

११—बाबू जयशंकर प्रसाद

आपकी भाषा संस्कृत बाहुल्य, ओजस्विनी तथा मनोरम अलङ्कारों से जड़ी हुई रहती है । आपका कवित्व नाटकों और

कहानियों में भी प्रतिच्छायित है। अतएव आपके मुख्य नाटकीय पात्र प्रायः दार्शनिक साहित्यिकता के रंग में सराबोर दीख पड़ते हैं। आपकी रङ्गीली कल्पना से आपकी शैली बहुत ही उदात्त होगई है। आपके नाटकों में बहुत सुन्दर उत्तर-प्रत्युत्तर मिलते हैं। आपकी कहानियों के अन्त में प्रायः एक छोटा-सा मार्मिक वाक्य रहता है जो पढ़ने के बहुत देर बाद तक मस्तिष्क में झङ्कार किया करता है। आपने प्रकृत-चित्रण भी बहुत सुन्दर किया है।

(घ)—कुछ पौराणिक कथा-प्रसंग

१—'कहा विष्णु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात' पुराणों में लिखा है कि एक बार देवताओं ने यह जानना चाहा कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश (महादेव) इन तीनों में सब से बड़ा कौन है ? भृगुजी तीनों की परीक्षा के लिए नियुक्त किए गये। सबसे प्रथम भृगुजी ब्रह्माजी के पास पहुँचे और उन्हें अण्ड-बण्ड कह कर सुनाने लगे। ब्रह्माजी को भृगुजी की ऐसी बेढंगी बातों से बड़ा क्रोध आया। यहाँ तक कि वह उन्हें शाप देने के लिए तय्यार हो गये। परन्तु भृगुजी ने 'येन-केन प्रकारेण' ब्रह्माजी को सन्तुष्ट कर लिया। इसके बाद वह महादेव जो के पास पहुँचे और लगे उनकी निन्दा करने। भृगु की बातें सुनकर महादेवजी को भी बड़ा गुस्सा आया, उन्होंने तो उन्हें मारने के लिए डण्डा तक उठा लिया ! अस्तु; भृगुजी यहाँ से भी पीछा छुड़ा कर विष्णु के दरबार में पहुँचे। विष्णुजी लेट रहे थे, पहले तो भृगुजी ने उन्हें गालियाँ दीं, फिर उनके हृदय पर जोर से एक लात मारी। लात खाकर विष्णु भगवान् उठ खड़े हुए और भृगुजी से बड़े विनयपूर्वक पूछने लगे—

'भगवन्! मेरे कठोर हृदय पर प्रहार करने के कारण आपके कोमल चरण में चोट तो नहीं लगी!' विष्णु भगवान् की ऐसी सहन-शीलता देख समस्त देवगण दंग रह गये और उन्हें ही सर्वश्रेष्ठ समझने लगे।

२—'नीच हाथ हरिचन्द बिकाने.........' राजा हरिश्चन्द्र ने अपने अटल सत्य के कारण प्रथम तो रानी और राजकुमार को बेचा फिर स्वयं भंगी के हाथ बिके। यह सब तो मंजूर किया परन्तु सत्य से कदापि विचलित न हुए।

३—'बलि पाताल धरो' राजा बलि ९९ यज्ञ कर चुकने के बाद जब १०० वाँ यज्ञ करने लगा, तो विष्णु भगवान् ने बावन अंगुल का ब्राह्मण-शरीर धारण कर उससे तीन 'पैंड़' ज़मीन दान में माँगी। बलि ने यह दान देना मंजूर कर लिया। विष्णु भगवान् ने तीन 'पैंड़' में तीनों लोक ले-लिए और बलि को पाताल भेज दिया।

४—'कोटि गाय नित पुन्न करत नृग.........' राजा नृग बड़ा दानी तथा ब्राह्मण-भक्त था। वह ब्राह्मणों को करोड़ों गौएँ दान दे चुका था। दान में व्यतिक्रम होने के कारण उसे ब्रह्मा ने शाप दिया जिसके कारण नृग जी को 'गिरगिट' की योनि मिली और अन्धकूप में रहना पड़ा।

५—'राहु-केतु' और भानु-चन्द्रमा विधि संयोग परी पुराण में लिखा है कि देवताओं के मंथन करने पर जब समुद्र से अमृत निकला और वह देवताओं में बाँटा गया, तो उसे राहु-राक्षस भी देवता का स्वरूप धारण कर पी गया। जब सूर्य और चन्द्रमा द्वारा यह बात भगवान् को मालूम हुई, तो उन्होंने अपने चक्र से राहु के दो टुकड़े कर दिये,

जो राहु और केतु कहलाये। तब से राहु चन्द्रमा के पीछे पड़ा और केतु ने सूर्य के विरुद्ध युद्ध किया।

६—'तज्यो पिता प्रह्लाद.........' भगवद्भक्त प्रह्लाद ने अपने पिता हिरण्यकशिपु का इसीलिए वहिष्कार कर दिया था कि देवताओं को मारनेवाला दुष्ट था। प्रह्लाद सदैव 'राम-राम' जपता रहता था। भला यह बात उसके पिता को कब पसन्द आ सकती थी? पिता-पुत्र की इस घोर अनबन का कारण पारस्परिक दो विपरीत भावों की विद्यमानता थी। पुत्र हरि-भक्त और पिता हरि-द्रोही!

७—'बलि गुरु तज्यो......' जिस समय विष्णु भगवान् बावन का रूप धारण कर राजा बलि से तीन पैंड़ जमीन माँगने गये उस समय गुरु शुक्राचार्य ने उनका वास्तविक रहस्य समझ कर, अपने शिष्य बलि से कहा कि 'तू इस ब्राह्मण को दान मत दे, नहीं तो पीछे पछतायगा,' परन्तु राजा बलि ने अपने गुरु का यह आदेश स्वीकार न किया।

८—'जिहि रज मुनि पतनी तरी...............' इन्द्र के साथ व्यभिचार करने के कारण अहल्या अपने पति गौतम जी के शाप से जंगल में पाषाण हुई पड़ी थी। जनकपुर जाते समय राम ने इस पाषाण-मूर्ति से कौतुकवश अपनी लात लगादी, जिससे वह जीती-जागती फिर ज्यों की त्यों अहल्या बन गई और अपने पति गौतम के पास चली गई। रहीम जी कहते हैं कि जिस रज के स्पर्श से वह पाषाण-प्रतिमा तर गई थी उसी को 'गजराज' भी तलाश करता फिरता है।

९—'हरि हाथी सों कब हती...............' किसी समय एक हाथी समुद्र में किलोल कर रहा था कि इतने ही में उसे एक

भयङ्कर मगर ने आ दबाया। अब मृत्युन्मुख हाथी ने सर्वथा असहाय होकर भगवान् का स्मरण किया! भगवान् उसी समय वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने उस ग्राह से गज का उद्धार किया। रहीम जी पूछते हैं कि क्या कभी हरि और हाथी का पूर्व परिचय था? नहीं, भगवान् तो स्वभावतः ही अपने भक्तों का कष्ट-मोचन किया करते हैं।

१०—'पाहन हौं तो वही गिरि को..............' पुराणों में लिखा है कि पहले समय में ब्रज में वर्षा-ऋतु की समाप्ति और शरद् के प्रारम्भ में इन्द्र की पूजा हुआ करती थी; परन्तु श्रीकृष्ण ने इस पूजा को व्यर्थ कह कर बन्द करा दिया और गोपियों तथा ग्वालों से कहा कि गोवर्द्धन पर्वत की पूजा किया करो। सबने ऐसा ही किया। इससे इन्द्र बड़े अप्रसन्न हुए और ब्रज पर मूसलाधार वृष्टि करने लगे। तब श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत अपने हाथ से उठा कर ब्रज पर उसे छतरी की तरह तान लिया, जिससे इन्द्र की मूसलाधार वृष्टि से रक्षा हो सकी। इस पंक्ति में रसखान ने इसी गोवर्द्धन पर्वत को 'पाहन' बनने की ओर संकेत किया है।

११—द्रौपदी

युधिष्ठिर ने जुए में राजपाट हार कर द्रौपदी को भी दाव पर लगा दिया। दुर्योधन ने द्रौपदी को भी जीत लिया और सभा में बुलाकर उसे नंगा करना चाहा। दुष्ट दुःशासन जब द्रौपदी की साड़ी खींचने लगा और पाँचों पाण्डव देखते रहे तब द्रौपदी ने श्रीकृष्ण को पुकारा। फिर क्या था, श्रीकृष्ण के प्रताप से साड़ी इतनी बढ़ गई कि दुःशासन उसे खींचते-खींचते थक गया, परन्तु उसका अन्त न आया।

१२—गनिका

काशी में एक वेश्या रहती थी, वह अपने पालतू तोते को 'राम-राम' रटाया करती थी। जब वह मरी, तो उसे यमदूत और स्वर्गदूत दोनों लेने आये। स्वर्गदूतों ने कहा कि यह वेश्या जन्मभर 'राम-राम' रटती रही है, अतएव स्वर्ग जानी चाहिये। बस यह 'राम-राम' के प्रभाव से स्वर्गवासिनी हुई।

१३—अजामिल

अजामिल नामक एक दुष्ट ब्राह्मण था। उसने अपने जीवन में कभी कोई अच्छा काम नहीं किया। अजामिल का नारायण नामक एक लड़का भी था। मरते समय अजामिल की सारी वासना अपने पुत्र में ही रही और वह अन्तिम श्वास तक 'नारायण-नारायण' पुकारता रहा। परिणाम यह हुआ कि अन्त समय में नारायण का नाम लेने के कारण उसे नारायण-लोक में स्थान मिला।

१४—प्रह्लाद

हिरण्यकशिपु का भगवद्भक्त पुत्र था। रात-दिन राम की रटना लगाये रहता था। हिरण्यकशिपु को राम का नाम बहुत बुरा लगता था। उसने अपने बेटे को बहुतेरा समझाया-बुझाया परन्तु वह न माना और बराबर राम का जाप करता रहा। एक दिन हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को खम्भे से बाँध दिया और नंगी तलवार दिखा कर कहा—'ले, अब तेरा काम तमाम करता हूँ!! कहाँ है तेरा राम? बुलाले उसे रक्षा के लिए!!!' प्रह्लाद के स्मरण करते ही नृसिंहावतार के रूप में भगवान् प्रकट हुए और उन्होंने हिरण्यकशिपु का पेट फाड़कर उसका काम तमाम किया।

Printed by M. Rama Narayana
at the [illegible] Printing Works, Aligarh